विसर्जन

(उच्चकोटि का मौलिक उपन्यास)

लेखक

पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी'

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग।

प्रथम संस्करण] १६४४ [मू० १

प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक
सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद
नागरी प्रेस, दारागंज,
प्रयाग।

स्नेह भेंट

कुमार प्रताप सिंह जी को

जो

मेरे भाई हैं, मित्र हैं, अपने हैं
और सबसे अधिक कुछ भी
नहीं हैं।

—वियोगी

अपनी ओर से

इस उपन्यास में मैंने जिन परस्पर विरोधी तत्वों का वर्णन किया है और अन्त मे उन्हें एक ही केन्द्र मे एकाकार होते दिखलाने का प्रयत्न किया है, उन तत्वों का विश्लेषण तो पाठक करेंगे, पर अपनी ओर से मैं इतना ही कहूँगा कि प्रत्यक्ष में परस्पर विरोधी दिखलाई पड़नेवाली विविधता के भीतर मैं एकता का अनुभव करता हूँ। इसी विराट् एकता के द्वारा किसी अनिर्वचनीय संयोजक-परा-शक्ति का बोध हमे ज्ञान-मंथन की अवस्था मे होता है।

दूसरी बात जो मै कहना चाहूँगा, वह यह है कि जब मैं लिखने बैठता हूँ तो यह कभी भी नहीं सोचता कि जो कुछ मेरे द्वारा लिखा जा रहा है, वह आदर्शवाद के दृष्टिकोण से ऊँचे दर्जे का है या नहीं। मैं तो सदा यही सोचा करता हूँ कि जो कुछ मै लिख रहा हूँ, वह जैसा मैं चाहता हूँ, वैसा हो रहा है या नहीं। मै जानता हूँ कि इस उपन्यास के बहुत से स्थल ऐसे हैं जिन्हें पढ़कर पाठक यही कहेंगे— "लेखक लिखते-लिखते बहक गया है।"

ठीक है—मै लेखनी के साथ चलता हूँ, वह यदि बहकती है

तो मैं अपने को रोक नहीं सकता । मैं धारा नहीं हूँ, मैं तो उसमें बहनेवाला एक तिनका मात्र हूँ। मैं अपने को उन पुण्यवान लेखकों में नहीं गिनता जिनकी कमनीय कल्पना किसी लज्जावती नववधू की तरह बन्द किवाड़ के छोटे से छेद से साँस रोककर, निर्जन दोपहरी को चुपचाप झाँका करती है। खुलकर खेलना ही मेरे जीवन का वेगवान आग्रह रहा है। कबीर के कथनानुसार—

"खुल खेलो संसार में, बाँध न सक्कै कोय ।
घाट-जगाती क्या करे, जब सिर बोझ न होय ॥

मै कलम लेकर झखमारना क्यों पसन्द करूँ जबकि मेरे अन्तर, बाहर चारों ओर जगति हिलोरें ले रही हैं। मैं समाज के सिंहपौर पर डरता, झिझकता किसी अनाहूत भिखारी की तरह तो नहीं आया—आया उसका निर्माता बनकर, भाग्य-विधाता के रूप में पूर्ण गौरव के साथ। मैंने अधिकारपूर्वक समाज के "चक्रव्यूह" का कोना-कोना आँखें खोलकर देखा है—मैं सन्देहरहित हूँ, क्योंकि मैंने धोखा नहीं खाया।

अब, इस समय बाहर बैठकर, दिगन्त व्यापी मैदान के उस पार संध्या की नीरवता में, डूबने-उतरानेवाले सूर्य को आशा-हीन दृष्टि से देख रहा हूँ। मैं जानता हूँ, अब ताराओं से भरी रात आयेगी और इसके पहले ही दामन झाड़कर मुझे अपनी राह लगना पड़ेगा। क्या एक बार भी लौटकर अपने छोड़े हुए स्थान को देखना उचित होगा—मैं इसकी क्यों चिन्ता करूँ कि

जहाँ पर मैं बैठा था, वहाँ पर बैठकर कोई रो रहा है या घी के दिये जला रहा है।

•

इन बातों पर भी जरा खुले दिल से विचार कीजिये। मानव तभी तक मानव है, जब तक वह मानव है—वह न देवता है और न पिशाच। मैं यह जानता हूँ कि मानव अपने तईं महान है, यह बात दूसरी है कि उसने अपने ही रक्त से अपने विनाश की जड़ भी सींची है। जो हो, पर उसके लिए—मानव के लिए—यह आवश्यक नहीं है कि वह और कुछ बनने का प्रयत्न करे। असलियत को तुच्छ कहकर जब हम "कुछ" बनने का प्रयत्न करते हैं तो अपनी मूर्खता के फेर मे फँसकर और बिगड़ ही जाते हैं—यह ध्रुव सत्य है। अपनी स्वाभाविक दुर्बलताओं को बाद देकर मैं अपने अस्तित्व का अनुभव नहीं कर पाता। मैं मानता हूँ कि यह भी मेरी एक दुर्बलता ही है, जिसे जब-जब मैं शुद्ध हृदय से स्वीकार करता हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि एक दुर्वह भार से अपने को छुटकारा दिला रहा हूँ।

मै अपनी अच्छाइयों और बुराइयों से लिपटा हुआ. अपनी अपूर्णता को मद्दे नजर रखकर, जब लिखने बैठता हूँ तो किसी ऐसे "अति-मानवीय चरित्र" की कल्पना भी नहीं पाता जो 'मनुस्मृति' के दृष्टिकोण से पवित्र हो, सही हो, स्तुत्य हो और आदर्शवाद का प्रतीक हो। यह बात जरूर है कि हम स्वभावतः अन्धकार से लड़ते-झगड़ते रहते हैं अपने छोटे से प्रदीप का सहारा लेकर। यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि हमारा उद्देश्य स्वयम्भू अन्धकार का

समूल नाश कर देना नहीं होता। हम तो अपने काम भर की जगह को ही प्रकाश से भरना चाहते हैं, सारी दुनिया को नहीं। अपने हाथ में लाठी लेकर जो अति-मानव भूगोल और खगोल के उस पार तक चिर सत्य अन्धकार को गदेड़कर अपनी महानता का परिचय देना चाहते हैं, उनके पवित्र चरणों पर सिर झुकाकर मै अपने इस वक्तव्य को समाप्त करता हूँ।

गया
भादो, गणेश चतुर्थी
२००१

वियोगी

विसर्जन

(१)

किशोर बोला—'अरे यह देखो पहाड़ हाथी बन गया।'

बेला ने कहा—'हाथी नहीं, सघन वृक्ष।'

किशोर ने फिर कहा—'ठीक कहा तुमने—जी चाहता है कि इस वृक्ष के नीचे चलकर बैठूँ।'

बेला मुस्करा कर बोली—'अकेले या किसी के साथ?'

'नही अकेले'—दीर्घ श्वास त्याग कर किशोर कहने लगा—'अब दुनिया से जी ऊब उठा, बेला! फूल और फलोंवाली इस वसुधा को मानवों ने अपनी राक्षस-बुद्धि से नरक बना दिया। अब यहाँ जी नहीं लगता। आँखों से देखकर मक्खी नही निगली जायगी, बेलारानी।'

बेला का सुन्दर मुखड़ा उदास हो गया। वह बोली—'ऐसी बाते मुझे पसन्द नहीं आती। चलो चले यहाँ से।'

"मै यहीं बैठूँगा, तुम्हारा मन ऊबता हो तो तुम जा सकती हो"—किशोर बोला—"मै अभी और बैठूँगा।"

बेला झुँझला कर बोली—"यहीं बैठोगे, इस निर्जन पुराने घाट पर। यह नहीं होगा—तुम्हें भी मेरे साथ ही चलना पड़ेगा। मैं अकेली नही जा सकती। देखते नहीं, सध्या हो गई—उठो, चलो।"

किशोर स्थिर स्वर में बोला—"देखो बेला, मैं तुम्हारी कोठी से घबराता हूँ, तुम्हारे मित्रों की शकल देख कर झुँझलाहट पैदा होती है। मैं गाँव-गँवई का गँवार ठहरा—ये नवोदित सभ्य लाड़ले मुझे नहीं रुचते। दूसरी बात यह भी है कि मैं अपने विषय में नये सिरे से सोचना चाहता हूँ और

एकान्त के दामन में मुँह छिपाकर, दुनिया की भीड़भाड़ से बचकर निकल जाना चाहता हूँ, मुझे क्षमा करो।"

बेला रसभरी अँगड़ाई लेकर बोली—"तुम्हें हो क्या गया है, किशोर? सुसाइटी में रहकर ही तो कोई सभ्य बन सकता है। वह मध्यकालीन सभ्यता अब कहाँ रही जिसकी पुनरावृत्ति तुम अपने जीवन में करना चाहते हो? चलो कोठी पर, दो घड़ी हँस खेलकर जी बहलावें—बाबू जी भी नहीं हैं और भादों की यह भयावनी रात सिर पर घहरा रही है।"

इतना बोलकर बेला ने फिर हल्की-सी अँगड़ाई ली—वह उठ खड़ी हुई अलसाई-सी।

बेला, नवयौवनोन्मत्ता, रसविह्वलाक्षी बेला खड़ी होकर मचलती हुई बोली—"किशोर, चलो न! हठ मत करो।"

किशोर अनमना-सा उठ खड़ा हुआ! भादों की सध्या और गङ्गा का निर्जन टूटा-फूटा पुराना घाट। दोनों टूटी हुई सीढियों से ऊपर चढने लगे। बेला ने जान बूझकर किशोर के कन्धे का सहारा लिया - यद्यपि वह बिना सहारा के ही उन थोड़ी-सी सीढ़ियों को पार कर सकती थी। बेला को उस समय दुःख हुआ जब वह घाट के ऊपर आ गई, क्योंकि उसे किशोर के स्पर्श-सुख से वंचित होना पड़ा।

बेला बोली—"किशोर, चलो—मुझे ऐसा लगता है कि फिर वर्षा होगी। हवा बन्द है, घटायें उमड़ती हुई चली आ रही हैं। सोच क्या रहे हो?"

चिन्ता में डूबता उतराता-सा किशोर बोला—"बेला, मैं अपने को समझ नहीं पाता। एकाएक मेरे अन्तर का धरातल बदल गया। मैं स्वयम् हैरान हूँ—मुझे ऐसा लगता है कि मैं पागल हो जाऊँगा। पता नहीं जीवन-नैया किसी घाट लगेगी भी या मँझधार में ही डूब जायगी।"

किशोर के चौड़े कन्धे पर मेंहदी से लाल अपने हाथ रख कर बेला बोली—"पागल की तरह मत बोलो। मैं डरती हूँ—चलो कोई देख लेगा तो क्या कहेगा किशोर? घटाओं के कारण समय के कुछ पहले ही रात आना चाहती है।"

किशोर दीर्घ श्वास त्याग कर बोला—"चलो, तुम्हें कोठी तक पहुँचा

दूँ। किसी के देखने और न देखने की चिन्ता तुम्हें हो सकती है। मै तो इन झगड़ों से पिंड छुड़ा चुका—दुनिया के मतामत की मै क्यों परवा करूँ?"

भग्नमनोरथा वेला हठात् खिजला उठी। उसने अपने भावान्तर को समझा, पर झुँझलाहट इतनी तीव्र थी कि वह अपने को सँभाल न सकी और बोली—"किशोर, मैं तुम्हारी उपेक्षा का आदर करती हूँ। तुम आराम से वैठकर मेघ-चित्रों को देखो—मै चली।"

किशोर मुस्कराकर चुप लगा गया। वेला अपने प्रहार को व्यर्थ होते देखकर चिढ़ उठा। उसे विश्वास था कि इस अमोघ बाण से छिद कर यह जङ्गली मृग उसके चरणों के निकट लोटने लगेगा, पर परिणाम उलटा हुआ। उसने कठोर चमड़ीवाले गैंडे को हरिण समझ कर अपना एक अव्यर्थ बाण नष्ट कर दिया। वेला वाणी मे थोड़ा-सा विष मिला कर बोली—"मै तुम्हें मनुष्य समझती थी, सभ्य और विकसित सस्कारों वाला मनुष्य, पर देहातीपन का गन्दा भार लादे तुम दूसरे ही रूप मे मेरे सामने स्पष्ट हुए। मैंने भूल की जो तुम्हें अपना समझा।"

इतना वोलते-वोलते असफलता-जन्य झुँझलाहट, अपमान, मलाल और क्षोभ से वेला का गला भर आया। कुमार फिर मुस्करा उठा और बोला—"वेला, तुमने ठीक ही मुझे समझा। मै स्वयम् अपने आपसे तङ्ग आ गया हूँ। जिसे तुम सभ्यता कहती हो, याने तुम्हारी सभ्यता का जो मापदण्ड है वह एक घृणित चाज है। मैं नहीं चाहता कि पृथ्वी को नरक बनाने में तुम जैसों की सहायता करूँ। जीवन की सच्चाई जब पूर्णवेग से स्पष्ट होती है तब कृत्रिम सभ्यता के छोटे-छोटे प्रदीप तेजहीन होकर व्यर्थ हो जाते हैं।"

वेला ने कहा—'मै तुम्हारी बाते नहीं समझ पाती। हमारे सोचने के तरीके में मौलिक प्रभेद हैं। मैने आज यह अनुभव किया कि········।"

किशोर वोला—"हाँ, हाँ वोलते-वोलते रुक क्यो गई। क्या अनुभव किया, कैसे अनुभव किया ! मैं सुनने को उत्सुक हूँ, वेला रानी!"

वेला पगडडी की ओर मुड़ती हुई बोली—"मैं चली····अब क्षमा कर दो।"

पुराने वृक्षों के नीचे से घूमती हुई जो पगडडी गई थी वह बेला की सजी सजाई कोठी तक जाती थी। आकाश घटाओं से भरा हुआ था—ऐसा जान पड़ता था कि अब खुलकर वर्षा होने ही वाली है। हवा बन्द थी और प्रकृति पूरी तरह नीरव-निस्पद हो रही थी। बेला क्षोभ में भरी हुई अपने छोटे-छोटे कदमों से बन के धुँधले प्रकाश में चली और किशोर चला छाया की तरह पीछे-पीछे। दोनो चुपचाप खुली सड़क पर आ गये तो तेजी से बेला हठात् पीछे मुड़कर खड़ी हो गई और बोली--"नमस्ते! मै पहुँच गई। धन्यवाद।"

किशोर को इस निष्ठुर और रसहीन विदाई की आशा न थी। सामने सुन्दर बाग के बीच मे बिजली की बत्तियो से जगमगाती हुई बेला की कोठी थी और बाग के लता-मण्डित फाटक पर पहुँच कर ही बेला ने किशोर को विदा दिया। एक बार किशोर ने कोठी की ओर देखा और फिर बेला की ओर, जिसके यौवन से गदराये हुए चेहरे पर सड़क पर जलने वाली बिजली का प्रकाश मानो अबीर बन कर बरस रहा था। एक बार किशोर का हृदय धड़क उठा, उसका शरीर झनझना उठा। बेला घातक कटाक्ष से किशोर को बुरी तरह पराजित करके फाटक के भीतर चली गई। किशोर आँधी से घिरे हुए अभागे पक्षी की तरह खुली सड़क पर खड़ा रह गया। सड़क साफ थी पर एक दो व्यक्ति अपनी तेज़ चाल से इधर से उधर आ गये। एक मोटर सरसराती हुई आई और चली गई। टेनिस खेलकर लौटनेवालों का एक झुड साइकिलों पर किशोर की बगल से निकल गया, जिनमे कुछ नवयुवतियाँ थीं, जिनके बाल लड़कों की तरह कटे हुए थे—सब नव्य सभ्य समाज की थीं।

(२)

ससार में स्थिरता नही है—हानि, लाभ, जीवन, मरण सभी परिवर्तनशील, सभी चंचल। यदि ससार की प्रत्येक चीज अचल होती तो किशोर के पिता

का वह मनस्ताप भी अचल हो जाता जो दारोगा की नौकरी छोड़ने पर उन्हे प्राप्त हुआ था। बेशर्मी के साथ उनकी घृणित नौकरी का श्रीगणेश हुआ, जब तक वे अपनी कुर्सी पर रहे बेशर्मी की ही कमाई खाते रहे और बेशर्मी के दामन से मुँह छिपाकर उन्हें अपनी खाकी वर्दी से पिंड छुड़ाना पड़ा। यद्यपि हरिहर सिंह (किशोर के पिता) अब प्रत्यक्ष देखने मे दारोगा नही रहे, पर दारोगावृत्ति उनके रग-रग मे घर कर गई थी। वे दारोगा न रहते हुए भी दारोगा की ही तरह सोचते थे और दारोगा की ही तरह उठते, बैठते, खाते, सोते थे। उनकी जीवन सहचरी कमला कभी-कभी पति की इस कठोर साधना को देखकर सिर पीट लेती, पर नक्कारखाने मे तूती की आवाज सुनता ही कौन है। हरिहर सिंह यह प्रयत्न करते थे कि वह अपने मृत दारोगापन को भूल जायँ पर जब-जब उनके भीतर की उच्छृङ्खलता जोर मारती, उनका ध्यान दारोगा की कुर्सी की ओर आप से आप चला जाता और एक ठंढी आह उनके मुँह से निकल पड़ती। वह कर्म से दारोगा नही रहे पर संस्कार से दारोगा क्या उससे भी कुछ अधिक ही अमानव बने रहे। अगर शेर दाँत खिसोड़ कर मर जाय तो उसके खिसोड़े हुए लम्बे-लम्बे पैने दाँतों को देखकर निश्चय ही कमजोर हृदय के दर्शक काँप उठेंगे। हरिहर सिंह का दारोगापन मर गया, पर उनके खिसोड़े हुए दाँत देखने वालों में घबराहट पैदा कर देने के लिए काफी थे यद्यपि उन दाँतों से किसी को हानि पहुँचने की अब कोई संभावना न थी।

किशोर की उम्र उन दिनों १५। १६ साल की थी जब उसके 'कुख्यात पिता को अपनी घृणित कुर्सी से, इच्छा न रहते हुए भी, कानून की लात खाकर, उठकर भागना पड़ा था। किशोर ने अपने पिता का गर्जन-तर्जन सुना था, अन्याय अत्याचार देखा था और दुखियों के आँसुओं से भीगे हुए पैसों का आनन्दोपभोग किया था। वह अपने पिता को प्यार भी नहीं कर सका और न उन्हें मनुष्योत्तर प्राणी समझ कर अपने मन की परिधि से बाहर ही खदेड़ सका—वह अपने पिता को केवल पिता समझता था, इससे न कम न अधिक !

जिन दिनों हरिहर सिंह दारोगा थे और अपने नृशस कर्मो से यत्र-तत्र-

सर्वत्र पर्याप्त कुख्याति प्राप्त कर रहे थे, किशोर बचपन के स्वप्न-लोक से निकल कर थाने के उस आँगन मे चहलकदमी करने लग गया था जिस-मे हरिहर सिंह ने अभिनय नरक की सृष्टि की थी। किशोर नित्य देखता था कि किसी न किसी हतभागे के शरीर से दो चार बूँद खून और आँखो के आँसू उस आँगन मे अवश्य गिरते थे। इन दृश्यों ने किशोर को पत्थर नहीं बनाया बल्कि वह अधिकाधिक कोमल होता गया। उसकी कोमलता मक्खन की कोमलता नही थी, बल्कि ज्वालामुखी के मुँह से बहने वाले लावे की कोमलता थी। पीड़ितों के प्रति उसका हृदय पसीजता गया और पीड़कों के प्रतिकूल कठोर होकर भी वह नवयुवक अनन्योपाय था। रात रात भर जागकर वह सोचता और पुलिस-थाना की स्थापना करने वाले के प्रति कुढ़ा करता। दारोगा शब्द से उसके मन म जो आग भड़कती वह आग धीरे-धीरे फैलने लगी और उस नवयुवक को समस्त भावनाओं को घेर कर एक दिन बुरी तरह भड़क उठी। उसका चिरसचित धैर्य स्वाहा हो गया।

एक दिन थाने की एक कोठरी में एक ऐसी 'वस्तु' पाई गई जिसका पता हारहर सिंह को भी न था। परिणाम यह हुआ कि हरिहर सिंह पर मुकदमा चल गया। सजा होते-होते बची पर नौकरी चली गई—किशोर इसलिए मन ही मन प्रसन्न था कि उसने अपने पिता को नरक से साफ बचा लिया। कमला ने सिर पीट कर अपने पुत्र को समझाया कि वह अपने पिता का गला न काटे पर पुत्र ने यह कह कर माता का मुँह बन्द कर दिया कि—"तो मैं ही जज के सामने यह स्वीकार कर लूँ कि वह चीज मेरी है। मैने ही उसे छिपाकर······।"

माता का दिल दहल गया। पति की रक्षा करने के लिए पुत्र का बलि-दान देना उसे स्वीकार न था। वह कभी पति की ओर देखती तो कभी पुत्र की ओर। अन्त में कमला ने भगवान की दया पर अपने पति के भविष्य को छोड़ दिया। परिणाम अच्छा ही हुआ—नौकरी गई पर जेल की रोटियाँ तोड़ने का सौभाग्य हरिहर सिंह को प्राप्त नहीं हुआ जिसकी सभावना बहुत ही पुष्ट थी। हरिहर सिंह अपने गाँव में लौट आये—उन्होने अपनी लज्जा

को छिपाने के लिए जिस बेशर्मी को गाँव में अपनाया उसकी विशेष चर्चा व्यर्थ है, क्योंकि जिसे हम बेशर्मी कहकर घृणा से जमीन पर थूक देते हैं उसे एकसिद्धहस्त दारोगा के लिए भी बेशर्मी कहना पक्की नादानी है, अनुभव-हीनता है।

किशोर को स्कूली शिक्षा समाप्त करते ही कालेज में जाना पड़ा। हरिहर सिंह यह सोचकर प्रायः पुलकित हो उठते थे कि—किशोर पुलिस विभाग में पर्याप्त कीर्ति अर्जन करेगा। पुलिस की भाषा मे कीर्ति अर्जन के मानी हैं किसी उपाय से भी काफी पैसे संग्रह करना। हरिहर की दृष्टि में सफलता की चरम सीमा थी 'अर्थ संग्रह मे पटुता।' वे लक्ष्य को ही प्रधानता देते थे, लक्ष्य-प्राप्ति के साधनों की रूपरेखा की ओर ध्यान देना उनकी दारोगा-बुद्धि स्वीकार नहीं करती थी। जैसे भी लक्ष्य-सिद्धि हो, जिस उपाय से हो—लक्ष्य-सिद्धि ही हरिरहर सिंह का प्रधान धर्म था।

X X X

दशहरे की छुट्टी मे किशोर घर लौटा। वह यों भी शहर और देहात के बीचोबीच रहता था। उसका जी न तो शहर की रङ्ग-रलियों मे लगता था और न देहात की उजाड़ शोभा मे। हरिहर सिंह ने जलती हुई आँखों से अपने पुत्र को देखा—वह खादी का ढीला पाजामा, खादी का ही लम्बा कुर्ता पहने हुए था। उसके सुनहले घुँघराले बाल विखरे हुए थे, पैरों मे चप्पल और कन्धे पर विस्तर, हाथ मे चमड़े का सूटकेस। अपने एकलौते का यह रूप हरिहर सिंह को अखरा—स्टेशन से गाँव तीन मील की दूरी पर था और गाँव की दरिद्रता के रहते स्टेशन पर कुली मिल सकते थे, पर उनके पुत्र ने स्वयम् अपना सामान ढोना पसन्द किया, यह हरिहर सिंह के मान-सम्मान पर आघात पहुँचाने के लिए काफी था। एक गम्भीर हुङ्कार के साथ भूतपूर्व दारोगा जी ने पुत्र का स्वागत किया और पूछा—"बाबू साहब, क्या स्टेशन के कुलियों ने हड़ताल कर दी है या आपका सामान छूना ही उन्होंने अपना अपमान समझा ?"

किशोर के चेहरे पर रूखी और कठोर हँसी खेलकर विलीन हो गई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया तो हरिहर सिंह चश्मे को ललाट पर खिसकाते

हुए, हुक्के को दूर हटाकर पूछा—"और यह पोशाक! मैं नहीं चाहता कि मेरा पुत्र आवारों की तरह कपड़े पहने।"

किशोर ने अपनी कोमल हथेली से ललाट का पसीना पोंछते हुए कहा—"आपके प्रश्नों का मैं क्या उत्तर दूँ। मै कुली को क्यों कष्ट दूँ? जब कि मैं स्वयम् एक कुली हूँ और मेरा बिस्तर भी इतना भारी नहीं है कि मै उसे उठा न सकूँ। अब रही कपड़ों की बात सो मैं यह समझ ही नही सका कि आप कपड़ों की बनावट पर नाराज हैं या इसकी जाति पर। अच्छा होता यदि आप इस तरह के प्रश्नों को अधिक महत्व ही न देते।"

"अच्छी बात है"—फूत्कार छोड़कर हरिहर सिह बोले। किशोर अन्तः-पुर की ओर मुड़ा तो वे फिर बोले—"मैं ऐसी बातों को पसन्द नही करता, मैं एक दारोगा हूँ, मैं ·····मैं ·····इतना कहकर हरिहर सिह ने बड़े जोर से तम्बाकू का कश लेना और खाँसना शुरू किया। किशोर ने रुक कर पिता का वक्तव्य सुन लिया और वह अपनी मा के दर्शन करने अन्तःपुर में चला गया। किशोर के बिस्तर और सूटकेस को लक्ष्य करके क्रुद्ध हरिहर सिह ने कहा—"एक गधे का बोझ—! हुँ, आखिर गाँव वाले क्या कहते होंगे। शहर में जाकर लड़का तीन कौड़ी का हो गया—यह एक दिन अपने साथ मुझे भी ले डूबेगा। जूते पहिने ही घर के भीतर चला गया—बिल्कुल नालायक।"

बड़बड़ाते हुए हरिहर सिह उठे और अपनी कोठरी मे चले गये। सजी हुई कोठरी मे एक तस्वीर थी जिसका शीशा धुँधला पड़ गया था। तस्वीर स्वयम् हरिहर सिह की थी, जिसमे वे दारोगा की वर्दी डाटे अपने उन कई नालायक सहकर्मियों के साथ थे जिनकी अपकीर्ति का प्रसार पुलिस-विभाग को कलङ्कित करता हुआ जनता की शान्ति को निगलता जा रहा था।

---

(३)

उल्लू को यदि दिन के प्रकाश में भी दिखलाई पड़ने लगे तो इस दुर्घटना का एक ही परिणाम हो और वह यह कि या तो ससार से उल्लू का नाम लोप हो जाय या कौवां का। यह तो ईश्वर की दया ही है कि रात को कौवे अन्धे हो जाते हैं और दिन को उल्लू छिपे रहते हैं—दोनो की मुठभेड़ यदा-कदा होती है।

बेला के पिता मिस्टर चटर्जी! बैरिस्टर थे और केवल बैरिस्टर ही थे। विलायत की जो हवा वे अपने फेफड़े मे भरकर तीस साल पहले इस अभागे देश मे आये थे वह उनके फेफड़ों से निकलकर उनके घर के भीतर आँधी बन गई थी। इस आँधी मे उनकी भद्रता, सभ्यता और सहृदयता तीनों का लत्ता-लत्ता उड़ गया, पर साथ ही चटर्जी साहब ने कालो के इस देश मे विलायत का जो बाग लगाया था वह फलने फूलने लगा तो उनके विलायती दिमाग को भी मानो लकवा मार गया। वे दिन भर हाईकोर्ट के जजों के आगे खड़े-खड़े बैल दूहा करते और आधी-आधी रात क्लबों की गद्दे दार कुर्सियो पर बैठकर विलायत का "महिम्न पाठ" किया करते या शराब पीकर किसी "अभूतपूर्व सुन्दरी के साथ थिरका करते। कोठी या अपने छोटे से परिवार की ओर से उदासीन रह कर चटर्जी साहब ने अपने आपको उन कौवों से अपनी रक्षा कर ली थी जो उनकी कोठी को घेर कर दिनरात काँव-काँव किया करते थे। बेला उनकी नवयौवनोन्मत्ता दुहिता थी और कालेज मे पढती थी। कालेज के रङ्गीन प्रोफेसरों से लेकर छंटे हुए विद्यार्थी तक चटर्जी साहब के कमरे की शोभा बढाया करते थे और नवोदित सभ्य समाज मे बेला एक दुर्जेय 'टैंक' की तरह इधर से उधर घूमा करती थी। किसका साहस था जो उस रेंगने वाले लौह निर्मित किले की ओर आँख उठाकर देखने की भी मूर्खता करे। बेला के कटाक्षों से जर्जर होने के कारण कई विद्यार्थी कान पकड़कर कालेज से निकाले गये और सुना जाता है कि प्रोफेसर समीम ने तो घबराकर आत्महत्या ही कर ली।

किशोर भी बेला के श्लाघ्य कृपापात्रों मे से एक था यह बात तो एकदम सत्य नहीं है, पर हाँ, जब वेला के सभ्य मित्र एकत्र होते तो गम्भीर किशोर, जिसके चेहरे मे सभ्यों के विचार से "गॅवारूपन" टपकता था, उनकी निशानेबाजी का आधार बनाया जाता था। शान्तभाव मे बैठकर प्रहार पर प्रहार सहना किशोर की और और विशेषताओं मे से एक थी। कभी-कभी बेला किशोर को निरीह बनकर बिंधते देखकर कराह उठती और अपने मित्रों को खरीखोटी सुनाकर किशोर की रक्षा भी करती।

बेला और किशोर एक ही कालेज में पढते थे। किशोर एक कठोर सयमी और अध्ययनशील विद्यार्थी था। वह हॅसना और खेलना पसन्द नहीं करता था। प्रोफेसरो मे किशोर का आदर था और विद्यार्थी उसे पक्का खूसट समझते थे!

जिस स्थिति को नवोदित सभ्य समाज जीवन की रंगीनियाँ कहता है, उसे किशोर जीवन की सबसे बड़ी घृणित विडम्बना समझता था। यह एक मौलिक प्रभेद था नव्य सभ्य समाज और किशोर मे। बेला तथाकथित सभ्य समाज की पुतली थी और किशोर था अपनी ही भावनाओं मे लिप्त रहने वाला एक जिद्दी नवयुवक, जिसकी सारी मनोवृत्तियाँ अपने ही भीतर काम किया करती थी। छुट्टी समाप्त होने के बाद किशोर जब फिर लौटा तो एक दिन वह बेला की कोठी पर गया। बेला अन्यमनस्क भाव से किशोर का स्वागत करती हुई बोली—"किशोर, उस दिन तुम मेघा के चित्र देखकर चुपके से चले गये। मेरे आग्रह करने पर भी कोठी तक नहीं आये—क्या मैं यह पूछ सकती हूँ कि . .."

किशोर शान्त स्वर में बोला—"मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे सामने कभी झूठ न बोलूॅ। मुझे विश्वास है कि तुम मेरे इस निश्चय को कायम रखने की दिशा मे ही मुझे सदा प्रेरित करोगी।"

बेला प्याली में चाय उड़ेलती हुई बोली—"तो क्या मैं तुम्हें झूठ बोलने के लिए उकसाती हूँ?"

कुर्सी पर अच्छी तरह बैठता हुआ किशोर कहने लगा—"मैंने ऐसी कोई बात तो नही कही, पर मुझे भय है कि अगर मैं सत्य बोलूॅ तो तुम्हें कष्ट

होगा और झूठ बोलूँ तो अपने निश्चय से गिर जाने का मुझे मनस्ताप भोगना पड़ेगा। मैं सत्य और मिथ्या दोनों के बीच मे रहना भी नही चाहूँगा।"

बेला मुस्कराकर बोली—"मै सच-झूठ के इस पचड़े मे पड़ना नहीं चाहती। मेरे प्रश्न का जो साफ सीधा उत्तर हो वही तुम दे सकते हो। किसी को कोई चुप रहने को वाध्य कर सकता है, पर किसी के मन की सच्ची बात मुँह से कहलवाने की कला आज तक प्रकाश मे नहीं आई। अपने मन की बात मन की स्वीकृति से ही कोई व्यक्त कर सकता है—वाध्य करने से नहीं। वाध्य करने पर तो प्रायः झूठी बात ही सुनने को मिलती है। मैं इतना समझती हूँ किशोर।"

किशोर ने कहा—"हाँ, मेरा मन अपनी मजूरी देता है। मै कहूँगा, यदि तुम सुनना पसन्द करो। मै परपीड़क स्वभाव का व्यक्ति नहीं हूँ—आत्म-पीड़न ही मै पसन्द करता हूँ।"

यह कह कर किशोर उदास दृष्टि से बेला के हास्योत्फुल्ल चेहरे की ओर देखने लगा। बेला के चेहरे पर शरारत-भरी मुस्कान खेल रही थी। दिन का अस्त हो रहा था और खुली खिड़कियो से शरत काल की सध्या के अस्तप्राय दिनकर की लाली बेला के कपोलों पर गुलाल छिड़क रही थी। कमरे के दरवाजे का भारी पर्दा हवा से धीरे धीरे हिल रहा था, सर्वत्र निर्म-लता थी, शान्ति थी। छोटी-सी मेज के आमने-सामने दोनो बैठे थे। किशोर के पैर जब कभी अनजानते बेला के पैर में छू जाते तो किशोर सिहर उठता, बेला के गाल भी पुलकावलि से भर जाते, दोनो चुप थे।

इस युवक और युवती के बीच मे जो अस्वाभाविक नीरवता बिखरी हुई थी वह मानो स्वयम् अपनी अरसिकता पर लज्जित थी। उस चुप्पी का समर्थन न तो समय करता था और न स्थान—फिर भी दोनों चुप थे। बेला को पहले चेत हुआ। वह अपने भावान्तर पर लज्जित होकर चाय की भरी प्याली किशोर की ओर बढ़ाती हुई बोली—चाय ठंढी हो गई।'

किशोर भी मानो नींद मे चौंककर कुछ-कुछ लज्जित-सा हो गया। चाय की प्याली देते समय बेला की उँगलियाँ किशोर की उँगलियों से छू गईं, वह

कॉप उठी, मानो बिजली का तार छू गया हो। गरम चाय छलककर वेला के हाथ पर गिरी। किशोर ने मुस्कराकर कहा—'वेला रानी !'

वेला धीरे से बोली—'क्या है किशोर !'

'कुछ नही वेला रानी,' किशोर ने अपने को सँभालकर कहा—'किसी जादू के जोर से अगर हम इसी तरह पत्थर के हो जाते तो दुनिया देखकर क्या अनुमान लगाती, यही सोच रहा हूँ।'

हठात् उत्तेजित-सी हो कर वेला बोली—'दुनिया ! दुनिया की चिन्ता तुम्हें हो सकती है किशोर, क्योंकि दुनिया का कर्ज खाकर तुम दुनिया में आये हो पर दुनिया तो मेरी ऋणी है—मैं उससे क्यों डरने लगी।'

किशोर सहसा गम्भीर होकर बोला—'तुम न सही मैंने सचमुच दुनिया का उधार खाया है। तुम, हवा, प्रकाश, मीठाजल, फल-फूल यह सब इसी दुनिया की देन है। मुझ पर ऋण का भार बढता ही जा रहा है—ऋणी को मानसिक शान्ति नसीब नहीं होती, बेला रानी ! मैं ऋणग्रस्त हूँ और अब अपने साथ आँखमिचौनी खेलना नही चाहता। सत्य को उसके असली रूप में देखना चाहता हूँ—वह चाहे कितना भी कठोर क्यों न हो, कितना भी भयानक क्या न हो।"

वेला कुछ क्षण सोचकर बोली—'तो क्या मैं स्वप्न का व्यापार कर रही हूँ, किशोर ! सपने लेना और सपने ही बेचना। यह बात मेरी समझ में जिस दिन आजायगी उसी दिन मेरा हृदय सौ-सौ टुकड़ों में विभक्त होकर बिखर जायगा। मै अपने आपमे चिपट कर ही जीवन के दिन व्यतीत करना चाहती हूँ जब कि तुम 'स्व' को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहता हो।"

किशोर ने अत्यधिक गम्भीर होकर कहा—"जिसे तुम मेरा 'स्व' समझ रही हो वह तो कभी का समाप्त हो चुका, या यों कहो कि उसका अस्तित्व कभी था ही नही। मानव हजार-हजार टुकड़ों में बँटा होता है—वह एक तत्व नही है जो अपने 'स्व' का अभिमान करे। मानव का प्रत्येक अंश अपने दायरे मे अकेला और अपूर्ण है। हम सब को एक मे मिलाकर पूर्णता प्राप्त करने के लिए ही तो प्रेम, योग, तप, आत्मत्याग और न जाने क्या-क्या करते रहते हैं, बेला रानी।"

वेला कुछ बोलना ही चाहती थी कि उसके पिता संध्या की पोशाक पहने कमरे के दरवाजे पर आये। वर्मा चुरुट और विलायती सेंट की गन्ध हवा के एक झोंके के साथ कमरे मे आयी। भद्दे और भर्राये हुए स्वर मे मि० चटर्जी बोले—"वेला, मै आ सकता हूँ? एक सज्जन तुमसे परिचय प्राप्त करना चाहते हैं।'

वेला ने घबराकर अपने आँचल को ठीक किया और नरम स्वर मे कहा—"बाबू जी, आइये—किशोर बाबू हैं।"

पर्दा हटाकर एक सर्वाकार काला व्यक्ति भीतर आया, जिसके सिर के बाल झड़ गये थे। अपने मोटे और काले होंठों मे मोटा चुरुट दबाये वेला के पिता भीतर आये। मि० चटर्जी के पीछे-पीछे एक अकालपक्व नवयुवक था, जिसकी सूखी हुई लम्बी नाक पर ऐनक चमक रहा था और दुबले पीले शरीर पर कोट, पैंट। उस युवक का चेहरा कुछ ऐसा था जिसे देखते ही मन मे झुँझलाहट का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। हिटलर की तरह मूछें और सिर पर यत्न से सँभाले हुए मोटे रूखे बाल। नवयुवक लम्बा-सा था और उसकी पीली आँखो के नीचे गहरी काली धारियाँ दूर से ही दिखलाई पड़ती थी। वह युवक अपने रूप से तुष्ट था, भले ही दूसरों को वह न रुचे। वेला और किशोर एक साथ ही खड़े हो गये तो मि० चटर्जी अपनी पुत्री से बोले—"आप हैं मिस्टर सेन, कई कम्पनियो के डायरेक्टर और खुलना के सेन-चौधुरी इस्टेट के मालिक। आप मेरे अन्तरङ्ग मित्रो में श्रेष्ठ स्थान रखते हैं।"

अपनी वाक्पटुता पर स्वयम् ही प्रसन्न होकर चटर्जी अकेले ही मुस्कराने लगे। वेला ने मि० सेन को हाथ जोड़ कर नमस्कार किया जब कि वे हाथ मिलाने के लिए अपना सूखा हुआ पंजा फैलाने का उपक्रम कर रहे थे, जिसमे मास खाने और अत्यधिक सिगरेट पीते रहने के कारण उसकी दुर्गन्धि और लाली अधिक थी। स्त्रियो से हाथ मिलाना सेन को अत्यधिक प्रिय था। इस बहाने वह भिन्न-भिन्न कोमल उत्तेजक हथेलियों का स्पर्श-सुख प्राप्त कर लिया करते थे। वेला ने भी बाध्य होकर हाथ मिलाया। इस कर्मठ से तृप्त

होकर मि० सेन ने चटर्जी साहब से पूछा—' इन महाशय का परिचय तो आपने दिया ही नही।"

चटर्जी साहब के भद्दे चेहरे पर लज्जा-मिश्रित परेशानी स्पष्ट हो गई, जो किशोर और बेला की आंखा से भी छिपी न रह सकी। ठीक अवसर पर उनकी कानूनी बुद्धि ने सहारा दिया। चटर्जी बोले—"भाई, मैं तो चला। कल एक गम्भीर मुकदमे म बहस करनी है। अब बेला आपको अपने इन मित्र महोदय का परिचय देगी।"

यह किशोर की ओर इशारा था। चटर्जी बेला के अगणित मित्रो को जानते भी नहीं थे, जिनमे एक किशोर भी था। चुरुट की राख चाय की एक खाली प्याली म झाड़ते हुए चटर्जी साहब चले गये तो मि० सेन ने आसन ग्रहण करके तृषित आँखो से बेला की ओर देखकर कहा—"क्या आप इनका परिचय देकर मुझे सुखी करेंगी?"

इतना बोलकर सेन ने फिर दरिद्र आँखो की जीभ से बेला के रूप को जी भर कर चाटना आरभ कर दिया। बेला को ऐसी आँखों से देखा जाना पसन्द था, उसे अभ्यास हो गया था शरारत भरी नजरों से घूरे जाने का। वह धीरे से कुर्सी पर बैठकर बोली—"आप मेरे एक जमीन्दार मित्र हैं। कालेज मे पढ़ते हैं। मेरे सहपाठी भी हैं·····।" बेला इतना कहकर शर्मिली आँखो से किशोर की ओर देखने लगी।

किशोर को ऐसा लगा कि उसके आगे का सारा भूभाग सहसा घूम गया।" "जमीन्दार"—वह तो जमीन्दार नहीं है। इतना बड़ा असत्य वह कैसे पचा सकेगा, यह प्रश्न उसके मन को मथने लगा। वह चाहता था कि सत्य को प्रकट करदे, 'वह कहदे कि—"उसके पिता कभी एक बदनाम दारोगा थे जिनकी नौकरी थाने मे से एक भयानक वस्तु बरामद होने के कारण गई, वह एक सड़ी हुई डाल का फूल नही "कुकुरमुत्ता" मात्र है। सड़ी हुई डाल में फूल नहीं कुकुरमुत्ता ही होते भी हैं। पर न जाने क्यो वह प्रयत्न करके भी सच्चाई को प्रकट नहीं कर सका। उसने इस घोर मिथ्या सम्मान को चुप रह कर स्वीकार कर लिया, जिसके लिए वह तैयार न था। उसकी आत्मा तैयार न थी। दूसरी बात जो किशोर के मन को खरोंचने लगी वह यह थी कि बेला

एक साधारण व्यक्ति को मित्र रूप मे स्वीकार करना अपना अपमान समझती है। अतएव उसे कहना पडा कि, "आप मेरे एक जमीन्दार मित्र हैं।" मित्र शब्द के साथ जो जमीन्दार विशेषण जोड़ा गया वह किशोर के लिए सम्मान-जनक न बन कर अपमान का आधार बन गया। इतना सोचकर भी किशोर चुप लगा गया, उसने झूठमूठ जमीदार बनना स्वीकार कर लिया! उसने यह अनुभव किया वह "कालीन का शेर" बनाया गया। जंगल का शेर तो वह हो भी नहीं सकता। यदि कोई कहे कि "घोड़ा गाता है" तो व्याकरण से शुद्ध कहे जाने पर भी यह वाक्य महाभ्रष्ट माना जायगा।

किशोर भावोन्मत्त-सा धीरे से उठा और डगमगाते हुए पैरों से कमरे के बाहर हो गया। वह न तो बेला से कुछ बोला और न मि० सेन को ही अभिवादन कर सका। किशोर के जाने के बाद मि० सेन ने तृप्ति की साँस ली और कहा—"बिल्कुल असभ्य! क्या उसकी तबीअत कुछ खराब है?"

बेला का चेहरा किशोर के व्यवहार से लज्जा के मारे लाल हो रहा था। वह मर्माहत होकर धीरे से बोली—"जी हाँ, वे कुछ इसी तरह के हैं—शायद तबीअत भी खराब हो।"

मि० सेन बेला के प्रति बिलकुल अपनापन दिखला कर बोले—"गँवार-पन है। यह तो आपका अपमान है—मैं ऐसी बातों को कभी सहन नही कर सकता—मुझे बड़ा दुःख हुआ।"

———

(४)

दुनियाँ में कुछ व्यक्ति बगले की तरह होते हैं। बगले जिस डाल पर बैठते हैं उसे गन्दा कर देते हैं। मि० सेन भी इसी कोटि के मानवों में थे। उनका पूरा नाम था अनिल सेन और तीन चार बार मैट्रिक फेल हो लेने के बाद आपने पिता की विशाल सम्पत्ति की व्यवस्था में मन लगाना उचित समझा था। जब तक उन्होंने स्कूल से सम्बन्ध रक्खा वे स्कूल को गन्दी बद-

नामी का अभिशाप जनता से दिलवाते रहे और जब अपनी सम्पत्ति की ओर ध्यान दिया तो व्यवस्था की सुरुचि को भी घिनौना बना डाला। क्वाँरे और सम्पत्तिशाली होने के कारण सभ्य समाज और उसकी कुमारियों के झुंड मे आपको विशेष स्थान मिला—आदत के अनुसार सेन महोदय इस शाखा को भी बगले की तरह गन्दा करने में संलग्न हो गये। बेला के पिता ऐसे ही अपाहिजों की टोह मे लगे रहते थे और प्रथम दर्शन के साथ ही धनवानों को आप अपना अन्तरङ्ग मित्र स्वीकार कर लेते थे। वे रुपयेवालों के बीच में रहना पसन्द करते थे क्योंकि उन्हें रुपये बहुत ही प्यारे थे। जैसा कि उनके सहकारियों मे स्पष्टरूप से देखा जाता है, मि० चटर्जी भी रुपयों को अपने जीवन में प्रथम स्थान देते थे। उन्हें जब एक क्वाँरा और धनवान व्यक्ति मिल गया तो उनके मन को बड़ा तोष हुआ। अपनी कन्यारत्न की व्यवहारिक बुद्धि पर चटर्जी साहब को बेहद विश्वास था। फिर उन्होंने एक दिन बेला से कहा—"बेटी, सेन भला आदमी है—उसका परिवार भी उच्च है।"

वे शाप यह भी कहने जा रहे थे कि उसके पास रुपयों की बहुलता है, पर बेला ने बीच ही मे बात काटकर कहा—"पप्पा, मि० सेन की जैसी गाड़ी है वैसी ही गाड़ी मै भी खरीदूँगी।"

उत्साह से विह्वल होकर मि० चटर्जी यह कहते-कहते रुक गये कि—"थोडा सा धैर्य धारण करो बेटी, मि० सेन की गाड़ी को ही अपनी गाडी स्वीकार कर लेने का अवसर आ जायगा।' पर विलायत से लौटने के बाद भी अभागी लज्जा का जो थोड़ा सा अंश उनके अनजानते हृदय के किसी कोने मे कही छिपा हुआ था उसने उनकी बेहया जीभ को मानो सहसा पकड़ लिया। मि० चटर्जी मुस्कराकर बोले—"बेटी, वैसी गाड़ी की कीमत है बीस हजार—देखती नहीं, सड़क पर ठीक उसी तरह फिसलती है जैसे पानी पर नाव। खैर, अवसर आने दो—अभी घबराने से काम नही चलेगा।"

रुकते-रुकते भी मि० चटर्जी कुछ न कुछ बोल ही गये। बेला अपने पिता के इशारे को नहीं समझ सकी। वह मि० सेन की गाड़ी के चारों ओर मन ही मन भाँवरे भर रही थी। मि० सेन से अधिक उनकी गाड़ी ने बेला को फुसला लिया था।

सच्ची बात तो यह थी कि अभागे सेन को उसकी सुन्दर गाड़ी ने ही ढोकर बेला के मन-मन्दिर तक पहुँचाया। भ्रमवश सेन अपनी आंशिक सफलता का श्रेय अपने उकठा काठ जैसे ऐंठे हुए शरीर को, मासहीन नुकीली नाक को, सड़े हुए दाँतों को जो मुस्कराते ही झलककर आस-पास के वातावरण को घृणित बना देते थे, पीली पर शरारत भरी आँखों को और लच्छेदार बातों को देते थे। सत्य यदि स्वयं बोलने लग जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि दुनिया के बहुत से मि० सेनों और मि० चटर्जियों को किसी नजदीक के तालाब, नदी या कुएँ में डूब मरना पड़े। सेन के लिए यही तोष था कि सच्चाई को अपनी स्मृति से दूर रखने में उन्हें प्रायः सदा सफलता मिलती रही। वे सदा इसी प्रयत्न में रहते थे कि उनका भयावना अतीत कभी उनके मन-मुकुर पर अपना प्रतिबिम्ब न डाले क्योंकि वे जानते थे कि मानव के लिए महा भय का कारण यही है। मातृहीन बेला को केवल पिता का साथ प्राप्त था, अतएव उसके सोचने का तरीका लड़कियों जैसा नहीं, लड़कों—नवयुवकों-जैसा ही था। वह सखियों को पसन्द नहीं करती थी, बल्कि सखाओं में रहना ही उसको प्रिय था। कालेज के वातावरण ने उसके मन को और भी ठीक उसी तरह मथ डाला था जिस तरह पगला हाथी छोटी-सी गड़हिया को मथ डालता है। जब पानी के नीचेवाला कीचड़ विद्रोही बनकर ऊपर चला आता है, तब जल अपेय स्थिति में पहुँच जाने के कारण अपनी सार्थकता गँवा बैठता है। बेला के मन का समस्त कीचड़ एक बारगी ऊपर आ गया था, अतएव वह व्यर्थ-सा ही हो गया था। किसी का भी प्रतिबिम्ब उस जल पर तब तक नहीं झलकता, जब तक उसका कीचड़ नीचे बैठकर उसे स्वच्छ होने का सौभाग्य नहीं प्रदान करता। बेला के मन की भी यही दशा थी—उसके अनगिनत मित्रों में से किसी का भी प्रतिबिम्ब उसके मथे हुए मन पर नहीं प्रतिबिम्बित होता। जब नारी-सुलभ कोमलता जागती, तब बेला अपने आप पर झुँझला उठती, पर उसकी झुँझलाहट भी एक अज्ञात झुँझलाहट के रूप में परिणत होकर व्यर्थ हो जाती—वह समझ ही नहीं पाती कि आखिर उसकी इस झुँझलाहट का रहस्य क्या है, वह क्यों झुँझला उठी। बेला सत्य से आँखे चुराना पसन्द

करती थी। वह जानती थी कि सत्य का परिणाम सुन्दर होता है, पर स्वयं सत्य का रूप बहुत ही रुक्ष, कठोर और डरावना है। जिनके हृदय में इतना बल नहीं होता कि इस भयङ्कर रूप से आँखें चार कर सकें, वे प्रायः अपने आपको जीती बाजी के पक्ष में ही रखते हैं। बेला ने भी यही किया और वह अपनी चारों ओर भ्रम का जाल बुनकर निश्चिंत हो गयी।

शरत् की चाँदनी निखर रही थी। बेला के कमरे में स्वच्छ बिजली की रोशनी चाँदनी से होड़कर के जो प्रकाश फैला रही थी वह मिथ्या होने पर भी बेला के लिए उपयोगी थी। बेला बन-ठनकर अपनी कुर्सी पर बैठी, किसी की आहट के पथ पर कान लगाये, उत्सुक आँखों से कमरे के दरवाजे की ओर देख रही थी। इसी समय पर्दा हटाकर किशोर धीरे-धीरे कमरे में आया। उसके सुगठित शरीर और सुन्दर भोले-भाले चेहरे पर बिजली की रोशनी प्रेमोन्मत्ता-सी, भाव विभोर-सी खिल उठी। बेला का हृदय धक्-से करके रह गया। वह मि० सेन की प्रतीक्षा कर रही थी। उसने घड़ी की ओर छिपी नजर डालकर अपने को अत्यधिक मर्माहत कर डाला, क्योंकि उसके प्रतीक्ष्य के आने का भी यही समय था। वह जानती थी कि अपने को सोलहो आने सभ्य प्रमाणित करनेवाले सेन कभी भी समय से पहले या बाद में नही आते। यह किशोर—अनाहूत किशोर कहाँ से टपक पड़ा, यह बेला को समझ मे नही आया। किशोर कुर्सी पर बैठता हुआ दीर्घ निस्वास त्याग कर बोला—"उफ्! मर गया! क्यों बेला रानी, तुम तैयार हो?"

किशोर का प्रस्ताव सुनते ही बेला चौंकी। बात यह थी कि परसों किशोर कह गया था कि एक ब्रह्मचारी महोदय पधारे हैं। आप महा विद्वान और पक्के त्यागी हैं। अंग्रेजी और संस्कृत के पारगत विद्वान होने के साथ ही ब्रह्मचारी जी ने कई बार सारे संसार की प्रदक्षिणा की है। किशोर के आग्रह पर बेला ने ब्रह्मचारी बाबा के प्रवचन सुनने का वचन दिया था। किशोर के आने का उद्देश्य था बेला को वहाँ ले चलना जहाँ ब्रह्मचारी जी का प्रवचन होनेवाला था। भूल जाने के कारण बेला ने सेन को भी सिनेमा मे जाने का वही समय दे रक्खा था जो समय प्रवचन सुनने के लिए उसने

किशोर को दिया था। बेला हक्की-बक्की सी होकर किशोर का मुँह देखने लगी। वह मन ही मन दैव से मनाने लगी कि थोड़ी देर सेन न आवे तो अच्छा। न जाने क्यों बेला सेन के सामने किशोर से मिलना जुलना अपने लिए भय का कारण समझती थी! किशोर बोला—"क्या सोच रही हो बेला?"

"कुछ नहीं"—बेला डरी-सी बोली—"मैं अनुभव कर रही हूँ कि मेरी तबीयत कुछ खराब है। क्या प्रवचन आज ही तक के लिए है? हम कल भी तो चल सकते हैं।"

किशोर गम्भीर और उदास स्वर में बोला—"समय दे दिया है। ब्रह्मचारी देव ने तुमसे मुलाकात करने की विशेष उत्सुकता दिखलाई। उन्होंने कहा कि देश को ऐसी लड़कियों की आवश्यकता है।"

बेला ने कुछ सोचकर कहा—"मैं ····क्या कहूँ किशोर, सिर दर्द कर रहा है और डरती हूँ कि सर्दी में बाहर घूमने से शायद खाट पड़ना न पड़े।"

झूठ की आड़ में अपने को छिपाना क्या है मकड़ी के जाले के पीछे बैठकर मेढ़े के टक्करों से अपने को बचाने का प्रयत्न करना है। बेला ने कमजोर और तुनुक मिथ्या का आश्रय ग्रहण किया तो सहज विश्वासी किशोर बोला—"ऐसी अवस्था में मैं भी तुम्हें जाने की राय कैसे दे सकता हूँ! सोच लो, जैसा उचित समझो करो। अभी तो प्रवचन आरंभ होने में विलम्ब भी है।"

'प्रवचन आरंभ होने में विलम्ब है, यह जानकर बेला प्रसन्न नहीं हुई। अगर तुरत प्रवचन आरंभ होने ही वाला होता तो किशोर चला जाता; पर अब वह तब तक बैठेगा जब तक प्रवचन का समय न हो जाय। बेला बोली—"मैं क्या सोचूँ। जो बात थी वह कहकर तुम्हारी इच्छा पर अपने को छोड़ती हूँ। मुझे बार-बार यही अनुभव हुआ है कि मुझसे अधिक तुम मेरे हिता-हित का ध्यान रखते हो। क्या मेरी यह धारणा अब गलत सिद्ध होगी किशोर?"

किशोर उदास स्वर में बोला—"शायद अब मैं इस दायित्व से मुक्त हो

गया या मुक्त कर दिया गया बेला। हटाओ इन बातों में कोई रस नहीं रहा। अतीत को अच्छी तरह दफना देना ही उचित है। मरे हुए मुर्दे से कोई हित तो सधता ही नहीं, केवल उसकी याद रुलाने के काम में आ सकती है और रोना किसे प्रिय होता है बेला रानी ?"

बेला सहमकर चुप लगा गयी। इतनी बड़ी बात का कोई समुचित उत्तर उसके पास न था, हाँ बहस करने के लिए उबा डालनेवाले शब्दों का टोटा नहीं पड़ सकता था, पर फेन मथने से तो कुछ भी हाथ नहीं आता। इसी समय पर्दा हटाकर मि० सेन ने कमरे में प्रवेश किया। सेन किशोर को देखकर जब दरवाजे पर ही भौचक्के-से खड़े हो गये, तब किशोर कुर्सी से उठता हुआ बोला—"आइये, मैं चला।"

अभद्र की तरह सेन ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो बेला बोली—"तो कल दर्शन दीजियेगा किशोर बाबू।"

इस अप्रत्याशित बिदाई के लिए किशोर तैयार न था, पर उसका सहज गम्भीर चेहरा ज्यों का त्यों बना रहा। किशोर बेला को लक्ष्य करके बोला—"आज की बात तो मैं जानता हूँ, पर कल की बात राम जाने। बेला रानी, मुझे विश्वास है कि सुबह का भूला सध्या को घर पहुँच जायगा।" इस व्यग्य की चोट से न केवल बेला ही कराह उठी, बल्कि मि० सेन का चेहरा भी विवर्ण हो गया। किशोर जब कमरे से जाने लगा, तब दरवाजा छोड़कर सेन बोले—"आप तैयार हैं ? सिनेमा का समय हो गया। गाड़ी पर मेरे परिवार की स्त्रियाँ आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।" किशोर ने लौटकर बेला की ओर देखा और मुस्करा दिया। बेला मूर्छित-सी हो रही थी।

---

(५)

आनन्दस्वरूप ब्रह्मचारी सचमुच प्रकाड विद्वान थे। कालेज के विद्यार्थियों में ब्रह्मचारी जी का वही स्थान था जो स्थान शरीर में हृदय का होता है। ब्रह्मचारी जी का इतिहास तो किसी को भी मालूम न था, पर इतना तो सभी

जानते थे कि वे जिस देश मे गये वहीं से बलपूर्वक निकाले गये—अमेरिका, जापान चीन आदि सभी देशों की यात्रा करके ब्रह्मचारी जी ने यही अनुभव प्राप्त किया कि "मनुष्य सदा के लिए ससार से विदा हो गया।" वे इसी विषय को सिद्ध करने के लिए भारत के कोने-कोने की यात्रा कर रहे थे।

ब्रह्मचारी जी की उम्र पचास के लगभग होगी। गौर वर्ण और दमकता हुआ सुन्दर, पर गम्भीर चेहरा। गूँजते हुए स्वर में आप जब बोलने लगते थे तो ऐसा बोध होता था कि संसार के सभी ज्ञान-विज्ञान उनकी जीभ पर बैठकर स्वयं अपनी-अपनी बात कह रहे हों। बड़े-बड़े अहम्मन्य विद्वान उनका प्रवचन सुनकर घुटने टेक देते थे। इतना होते हुए भी जहाँ ब्रह्मचारी जी का डेरा होता था वहाँ नाना रूप में पुलिसवालों का विशेष उत्साह से आना-जाना आरंभ हो जाता था और नोट बुक लिए कुछ सी० आई० डी० के उत्साही सदस्य तो सदा साथ ही लगे रहते थे, पर ब्रह्मचारी जी का ध्यान इन संभव उपद्रवों से जरा भी विचलित नहीं होता था। वे पौर्वात्य और पाश्चात्य विचार-समूह के संगठित रूप-से जान पड़ते थे—वे एक सार्वदेशिक कोटि के साधु थे जिनकी स्पर्धा करना इतरजन के लिए विडम्बना-मात्र था। किशोर विशेष रूप से ब्रह्मचारी जी के प्रभाव और सम्पर्क में आया। वह अपनी पढाई से पूर्णतः उदासीन होकर मन-प्राण के योग से ब्रह्मचारी जी के साथ लग गया।

एक दिन ब्रह्मचारी जी ने किशोर से कहा—"क्यों भाई, क्या अपनी ही तरह एक दर्जन नवयुवक तुम मुझे दे सकते हो? यदि इतना कर सको तो मेरा संकल्प पूरा हो जाय।"

किशोर अकचकाया-सा सोचने लगा कि यह कैसी फर्मायश है। वह चुपचाप बैठा रह गया तो फिर ब्रह्मचारी जी बोले—"देखो दुनिया के पढ़े-लिखे व्यक्ति एक बात नहीं जानते कि वे अज्ञानी भी हैं। सत्य को न जानना ही अज्ञान है और इस अर्थ में वे विद्वान भी अज्ञानी कहे जा सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि मुझे कुछ ऐसे नवयुवक मिल जायँ जो दूसरों के सामने उनका अज्ञान भली-भाँति प्रकट कर सकें! मैं जहाँ भी गया मुझे वहाँ से इसीलिए खदेड़ा गया कि मैंने वहाँ की जनता को यह बतलाने का प्रयत्न किया कि

जिसे वह छोटी का व्यक्ति समझती है वह अज्ञानी भी है। ससार सभी प्रहार सहन कर सकता है, पर उसे यदि मूर्ख—अज्ञानी कहा जाय तो—वह बिगड़ बैठता है। यह स्वीकार करना किसी को भी सह्य नहीं है कि वह अज्ञानी है, यद्यपि वह है। समझे ?"

किशोर ने विनय से कहा—"यह कैसे सम्भव हो सकता है कि······।"

ब्रह्मचारी जी इधर-उधर देखकर बोले—"सब सम्भव है किशोर ! एक बार जी लगाकर सोचो तो सही।"

इतना कहकर ब्रह्मचारी जी ने किशोर के सामने दो तीन पुस्तकें धर दीं और फिर कहा—"अब तुम जा सकते हो। इन पुस्तकों को पढ़कर ही मेरे पास आना—बीच में यदि कुछ पूछना हो तो आ सकते हो। मैं इतनी छूट देता हूँ—अधिक नहीं।"

किशोर उन मोटी पुस्तकों की ओर देखकर सिहर उठा और बोला—"क्या मैं इन्हें पढ़कर समझ सकूँगा गुरुदेव ! इन्हें तो शायद मेरे अध्यापक भी नहीं समझ सकते।"

ब्रह्मचारी जी मुस्कराकर प्यार से बोले—"यही तुम्हारा अज्ञान है जो तुम अपनी क्षमता के प्रति पूर्ण विश्वास नहीं रखते। पढ़ो—समझोगे क्यों नहीं। विलम्ब मत करो—उठो !"

किशोर पुस्तक उठाकर चलता बना। किशोर इस अवस्था में ही जीवन के उतार-चढ़ाव का जो क्रम देख चुका था उसके प्रभाव से उसकी भावनाएँ धीरे-धीरे पथराती जा रही थीं। उसने अपने पिता के उस जीवन को भी देखा था जिस तरह का जीवन व्यतीत करना दुर्दैव का अभिशाप ही समझना चाहिए। उसने देखा था थाने में बन्द करके निरपराधों को पिटते-पिटते मूर्छित होते; उसने देखा था अपमान और बर्बरता के उस तूफान को जिसमें पड़कर बच्चे, स्त्रियाँ और लाचार बृद्धा तक को नरक-यन्त्रणा भोगने को वाध्य होना पड़ता है, उसने देखा था अपने पिता के उस रूप को जिस रूप को देखकर शायद पिशाच भी भय से काँपने लगे और मानवता के घिग्घी बँध जाय। किशोर का जाग्रत दिमाग इन दृश्यों को देख लेने के बाद तन्दूर की तरह गरम हो उठा था। वह सोचता था कि यह सब क्यों होता

है—मानव ने मानव के प्रतिकूल पिशाच का रूप क्यों धारण कर रक्खा है, इस प्रश्न को किशोर अपने तरीके से सोचता था। स्कूल से कालेज में आकर उसने यह अनुभव किया कि उसके सोचने-समझने का धरातल बहुत ही तेजी से बदल रहा है। ब्रह्मचारी के सामने उसने यही प्रश्न रक्खा और उसके प्रश्नों का उत्तर दिया ब्रह्मचारी ने उन मोटी-मोटी पुस्तकों के रूप में। किशोर ज्यों-ज्यों पुस्तकों के पृष्ठ उलटता जाता उसकी पढ़ने की भूख उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती—यह उसके लिए एक नयी परेशानी थी जिसका कोई हल उसके पास न था।

ज्यों-ज्यों किशोर पुस्तक पर पुस्तक पढ़ता गया, उसे ऐसा लगा कि एक-एक करके उसके दिमाग की पॅखुडी खुलती गयी। जीवन की नयी-नयी 'पहल' उसके सामने स्पष्ट होती गयी। उसे नये सिरे से अपने और दूसरों के प्रति सोचने की प्रेरणा मिली। एक दिन जब वह ब्रह्मचारी जी की सेवा में उपस्थित हुआ, तब उसे ऐसा लगा कि वह ऐसी जगह आया है जहाँ पहले कभी भी नहीं आया था। बदलते हुए दृष्टिकोण ने ब्रह्मचारी जी को भी उसके सामने नये रूप में उपस्थित किया। भक्तों को विदा करके ब्रह्मचारी जी ने अत्यन्त स्नेह से पूछा—"किशोर, तुमने पुस्तकों से कुछ प्राप्त किया या भाण्डार में केवल खाली घड़े ही तुम्हें मिले?"

किशोर बोला—"नहीं प्रभो, मुझे तो ऐसा लगता है मैं बड़ी तेजी से बदलता जा रहा हूँ—मैं अपने भीतर प्रगति पाता हूँ। यहाँ तक कि अब मैं आपको भी मानव-रूप में ही देखने लगा हूँ—पहले तो देवता के रूप में देखता था।"

मन ही मन तृप्त होकर ब्रह्मचारी जी ने फिर प्रश्न किया—"तुमने कुछ पूछा नहीं—क्या एक भी प्रश्न तुम्हारे मन में उदय नहीं हुआ?"

"नहीं गुरुदेव!"—किशोर शान्त स्वर में कहने लगा—"मैं इस स्थिति में नहीं हूँ कि आपसे कुछ प्रश्न करूँ। मुझे ऐसा लगता है कि मैं प्रत्येक दिशा से उदासीन होता जा रहा हूँ—एक-एक करके प्रत्येक मानसिक बन्धन आपसे आप खुलता जा रहा है।"

ब्रह्मचारी के प्रज्वलित ललाट पर चिन्ता की रेखाएँ झलकने लगीं। वे बोले—भाई, यह तो बुरी बात है। भीतर की उत्सुकता जब मर जाती है तब मनुष्य की मानसिक बाढ़ वहीं रुककर मृतप्राय हो जाती है। यह तो शुभ लक्षण नहीं है किशोर! हमें बच्चों की तरह उत्सुक रहना चाहिए। मानसिक जड़ता हमें प्रतिक्षण मृत्यु की ओर खींचती है। यदि उन पुस्तकों ने तुम्हें अपनी ओर खींचा है, तो तुम्हारे मन में उनके अनुकूल और प्रतिकूल प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मैं चाहूँगा कि तुम्हारे भीतर जिज्ञासा उत्पन्न हो न कि उदासीनता।

किशोर ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। उसने पहली बार यह अनुभव किया कि भीतर-भीतर वह मरता जा रहा है। घनीभूत उदासीनता की घटाएँ धीरे-धीरे उसके समस्त जीवन को घेरकर जो ऊमस पैदा कर रही हैं, उस ऊमस में उसके वर्तमान और भविष्य के प्राण नहीं बच सकेंगे। किशोर को चुप देखकर ब्रह्मचारी जी ने फिर कहा—"क्या सोचते हो किशोर?"

"कुछ भी नहीं प्रभो"—किशोर ने बहुत धीरे से उत्तर दिया।

ब्रह्मचारी जी बोले—"इसे 'कुछ भी नहीं' को 'बहुत कुछ' बनाना ही मेरा उद्देश्य रहा है। ससार की जो गति आज होने जा रही है उसका एक मात्र कारण है हमारे नवयुवक 'कुछ भी नहीं' की भावना लेकर उदासीन हो गये हैं—यह जड़ता दूर करनी होगी। आओ इस पुण्य अनुष्ठान की पूर्ति मे, जिसकी सफलता निश्चित है, हम मन-प्राण से लग जायँ।

---

(६)

किशोर को बेला का एक पत्र मिला। पत्र में 'दर्शन देने' का आग्रह किया था और नाना प्रकार के उलहने लिख लेने के बाद बेला ने लिखा था कि उसके प्रति अन्याय किया गया है, उसे गलत समझा गया है, आदि-आदि। किशोर पत्र पढ़कर एक बार झुँझला उठा, पर अभ्यास न रहने के कारण झुँझलाहट टिक न सकी। उसका मन तुरन्त स्वस्थ हो गया। जबसे

ब्रह्मचारी जी पधारे थे किशोर ने कालेज जाना भी बन्द कर दिया था। वह १५-१५ दिन की भी छुट्टियाँ ले चुका था। बेला के पत्र ने उसे पहले तो झुँझला दिया, पर फिर ऐसा लगा कि उसके मन के किसी कोने में छिपकर कोई 'बेला', 'बेला' पुकार उठता है। इस पुकार से किशोर तङ्ग आ गया। पर वह पुकारनेवाले का मुँह नहीं बन्द कर सका। किशोर जानता था कि पुकारनेवाला उसका उपेक्षित, पर सजीव संस्कार है जिसे वह प्रायः भूल चुका था। जिस तरह दबे हुए रोग अनुकूलता पाकर सिर उठाते हैं उसी तरह दबे हुए अच्छे-बुरे संस्कार भी अनुकूल अवसर पाकर मानव को अपने प्रभाव से प्रभावित करते रहते हैं। ब्रह्मचारी जी के प्रभाव से किशोर धीरे-धीरे अपनी धुरी से हटकर नयी धुरी कायम कर रहा था—यह परिवर्तन उसके अनजानते हो रहा था पर बेला के पत्र ने उसके प्रिय गीत के उस स्वर को स्पष्ट कर दिया जिस स्वर को वह बहुत ही प्यार करता था, पर उसे भूल चुका था। किशोर चौंक उठा। वह अपने आपसे लड़ने की तैयारी करने लगा। वह अपनी इस इच्छा को दबाना चाहता था। उसके सामने जो बड़े-बड़े प्रश्न सिर उठा रहे थे उनके सामने बेला का अस्तित्व अत्यन्त नगण्य था। जीवन के जिस स्तर पर बेला थी उससे वह ऊपर उठ चुका था।

सन्ध्या हो चुकी थी। किशोर ने अपने आगे की खुली हुई पुस्तक पर अपने मन को केन्द्रित करना चाहा, पर बेला का जो पत्र सामने पड़ा था और गाढे नीले रङ्ग के कागज पर उसके जो काले-काले गोल-गोल अक्षर मानो उभरे हुए थे उन अक्षरों ने किशोर के मन को उद्विग्न करना शुरू कर दिया। वह झल्लाया और पत्र को फाड़कर—अच्छी तरह उसके टुकड़े बनाकर खिड़की के बाहर फेंक आया। वह फिर पुस्तक की ओर आकर्षित होने के लिए अपने मन के साथ हाथा-पाई करने लगा। एक जिद्दी लड़के की तरह उसका मन लोटने-छटपटाने लगा। प्रायः एक घण्टे तक इस प्रकार हठयोग करके किशोर ने अचानक घड़ी की ओर ध्यान दिया। आठ बजने में कुछ ही मिनट बाकी थे—यही समय था जब बेला ने बुलाया था। किसी यन्त्राकर्षित-सा वह उठा और अपना मोटा लम्बा कोट कन्धे पर डालकर कमरे से बाहर निकल गया। खुली सड़क पर पहुँचकर वह बिना सोचे-

समझे बेला की कोठी की ओर मुड़ा जो वहाँ से पौन. मील पर ही थी। सड़क प्रायः सूनी थी और बिजली की बत्तियाँ चुपचाप आने-जानेवालों की प्रतीक्षा करती हुई जल रही थीं, पर उसकी प्रतीक्षा का आदर करनेवालों में उस समय किशोर के अतिरिक्त शायद और कोई न था। किशोर सीधे बेला की कोठी की ओर चला। सर्दी खूब पड़ रही थी। पूस की हवा तीर की तरह चल रही थी, पर अन्यमनस्क किशोर का ध्यान अपने कोट की ओर न था, वह अपने विचारों में डूबता उतराता तेजी से चला जा रहा था। उसी के जूते की आवाज सूनी सड़क पर गूँजकर उसके कानों में प्रतिध्वनि उत्पन्न कर रही थी।

किशोर जब बेला के कमरे के दरवाजे पर पहुँचा, तब उसे ऐसा लगा कि वह एक गलती कर बैठा। दो बार पर्दा हटाने के लिए हाथ उठाकर भी वह सोच-विचार में डूब गया। कमरे के भीतर से आवाज आई—"बेला रानी, सुन्दर चीज किसे नहीं अच्छी लगती।" किशोर चौंका, वह सुनने लगा जो एक अभद्र काम था। बेला कह रही थी—"मैंने कब कहा कि सुन्दर चीज किसी को पसन्द नहीं आतो, पर आपने अपनी राय कायम करने में जल्दबाजी की है, यह मैं साहस-पूर्वक कह सकती हूँ।"

पुरुष स्वर में कोई बोला—"राय कायम करने में जल्दबाजी हो सकती है, पर मेरी राय को आप गलत नहीं सिद्ध कर सकतीं। यह राय मेरी ही नही है, युगयुगान्तर से कोटि-कोटि कवियों और पण्डितों ने इस राय पर अपनी मुहर लगानी शुरू कर दी है जो आज तक जारी है।"

बेला बोली—"पर किसी विशेष सौन्दर्य को ही सुन्दर कहना भूल है। सौन्दर्य की कोई स्थिर परिभाषा आज तक सुनने मे नहीं आई—पसन्द करने वाले की रुचि ही सौन्दर्य-विशेष का आधार है। आप खिले हुए गुलाब को सुन्दर कह सकते हैं तो एक विदग्ध हृदय व्यक्ति किसी मुरझाई हुई कली को सुन्दर कहकर कराह सकता है। किसी को प्रभात की लाली मोहक जान पड़ती है तो किसी को सन्ध्या की उतरती हुई धूप—अतएव सुन्दरता की निश्चित परिधि कायम करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है।"

पुरुष बोला—"तुम्हारा कथन सही हो सकता है, पर मेरा मतलब तो स्त्री सौन्दर्य से है बेला रानी !"

अब बहस का रूप संकुचित हो रहा था। किशोर खड़ा-खड़ा सुन रहा था और पसीने से भीगा जा रहा था। वह चाहता था कि अपने कानों में उँगलियाँ डालकर इस मनस्ताप से अपने को बचा ले, पर सुनने की कठोर उत्सुकता ने उसे ऐसा करने भी नहीं दिया। वह सुनता रहा।

बेला बोली—"स्त्री-सौन्दर्य कोई खास वस्तु नही है। सौन्दर्य का जो विराट रूप ससार मे अनादि काल से है उसी के अन्तर्गत स्त्री-सौन्दर्य भी है—हम एक अश पर बहस न करके सम्पूर्ण को ही ग्रहण करने की चेष्टा करें तो अच्छा।"

पुरुष बोला—"बेला रानी, क्या ही अच्छा होता यदि तुम मेरी बातें समझ पातीं। मै तो यह कह सकता हूँ कि तुमने समझकर प्रश्न को टालने का प्रयत्न किया है।"

बेला कुछ लज्जित-सी, अप्रतिभ-सी होकर बोली—"यदि मैं भी यह कहूँ कि आपने सोचने में गलती की है तो आपको दुःख तो नहीं होगा ?"

पुरुष बोला—"दुःख ? तुम कुछ भी कहो मुझे दुःख नहीं होगा। तुम्हारे सामने पहुँचकर सुख की जो बाढ़ आती है उसमें छोटा-मोटा दुःख ठहर नही सकता।"

बेला बोली—"मैं कृतज्ञ हुई—हाँ, कलकत्ता जाने की बात तो जहाँ की तहाँ रह गयी। बड़े दिनों को क्या इसी मेज-कुरसी से सिर टकराकर समाप्त किया जायगा—दुर्लभ अवसर की उपेक्षा करना मैं पसन्द नहीं करती।"

पुरुष उत्साह भरे स्वर में बोला—"मैं तो आज्ञा की ही प्रतीक्षा में था। आज स्पष्ट आज्ञा मिल गयी। जिसे तुम 'दुर्लभ अवसर' कह रही हो वह मेरे जीवन का सबसे मूल्यवान और चिर प्रतीक्षित अवसर है।"

बेला खिलखिलाकर हँस पड़ी। किशोर को ऐसा लगा कि वह पागल हो जायगा। उसके दिमाग के भीतर मानों गरम तेल खौल रहा हो। वह अपने आपको भूलकर बोला—"क्या मैं आ सकता हूँ ?"

कमरे के भीतर से कुछ खड़खड़ाहट और कुर्सियाँ हटाने की भी आवाज

आयी, साड़ी की सरसराहट भी सुन पड़ी। फिर बेला प्रयत्न करके बोले हुए नरम स्वर में बोली—"किशोर बाबू! आइये।"

किशोर ने कमरे में शराबी की तरह भरमता हुआ प्रवेश किया। उसकी साँस जोर-जोर से चल रही थी और आँखे लाल हो गयी थीं जवा-पुष्प की तरह। कमरे में मि० सेन बैठे थे और पूरी तरह शृङ्गार करके बेला। किशोर ने जलती आँखों से दोनों को देखा और कहा—"मैं दुःखी हूँ, मेरे कारण आपलोगों की बातों में विघ्न तो नहीं पैदा हुआ।"

बेला का चेहरा सहसा फक् पड़ गया और घृणा तथा उपेक्षा से मि० सेन दूसरी ओर मुँह फेरकर आलमारी में रखी हुई पुस्तकों को देखने लगे।

बेला बोली—"यह कैसी बात है किशोर बाबू! आप···आप···कैसी बात कह रहे हैं।"

किशोर कुर्सी पर बैठता हुआ बोला—"कहिये क्या आज्ञा है—क्यों मुझे··· ।" पत्र भेजकर बुलवाने की बात कहता-कहता किशोर सहसा रुक गया। मि० सेन के मुँह पर ही ऐसी बात वह कहना पसन्द नही कर सका जिसे सुनकर बेला को लज्जित होना पड़े। वह जानता था कि बेला मि० सेन से यह छिपाना चाहेगी कि किशोर से भी उसकी मैत्री है। अपनापन न दिखलाने के ख्याल से ही बेला किशोर को 'तुम' न कहकर मि० सेन के सामने 'आप' कहा करती थी।

परीशान-सी होकर बेला बोली—"आप जल्दी में तो नहीं हैं। अभी आये हैं—बैठिये भी, फिर बातें होंगी।"

छिपे रूप में मि० सेन की विदाई की ओर यह इशारा था। मन ही मन कुढकर मि० सेन कुर्सी से इच्छा न रहते हुए भी उठे और बोले—"अच्छा मिस चटर्जी, अब मैं चला। फिर आऊँगा। शायद मेरी उपस्थिति से आपलोगों की बातों में व्याघात उत्पन्न हो।"

यह न कही जाने योग्य बात भी सेन के मुँह से क्रोधवश निकल ही पड़ी, पर बेला ने मुस्कराकर कहा—"आप बहुत जल्दी नाराज हो जाते हैं। बात-बात में बाल की खाल निकालना वहाँ उचित नहीं होता जहाँ रोज का आना-जाना हो- खैर, आपका स्वास्थ्य भी अच्छा नही है और सर्दी भयानक रूप

से पड़ रही है, रात भी अधिक व्यतीत हो गयी। आप यदि इन कारणों को लेकर जाना चाहते हैं तो मैं खुशी-खुशी आपके जाने का समर्थन करूँगी, पर जो कारण जतलाकर आपने जाने का प्रस्ताव रक्खा है वह दुःख पैदा करनेवाला है और सत्य नहीं कल्पना-सगुत भी है।"

सेन का उठा हुआ फन नरम पड़ गया। वे भी मन्द मुस्कान विदीर्ण करते हुए बोले—"नहीं, नहीं वैसी कोई बात नहीं है। अगर आपके मित्र न भी पधारते तो भी मैं जाने ही वाला था। आप दूसरा खयाल न करें—मैं हृदय का साफ व्यक्ति हूँ। मन की बातों को छिपाना पसन्द नहीं करता।"

इतनी बड़ी झूठ बात कहकर सेन स्वयं लज्जित हो गये।

बातों के सिलसिले को तुरन्त समाप्त कर देने की गरज से बेला कुर्सी से उठती हुई बोली—"तो फिर दर्शन दीजियेगा। वन्दे! गाड़ी तो होगी ही या अपने ड्राइवर को बुलाऊँ!"

"नहीं, धन्यवाद"—कहकर मि० सेन कमरे के बाहर हो गये और चलते-चलते अपनी ज्वालामयी आँखों से किशोर को भी दग्ध करते गये जो दरवाजे की ओर पीठ किये चुपचाप, शान्तभाव से बैठा था। सेन को विदा करके किशोर की कुर्सी के पीछे खड़ी होकर बेला बोली—"किशोर!"

किशोर बिना मुड़कर देखे ही धीरे से बोला—"क्या है बेला!"

बेला घूमकर किशोर की कुर्सी की एक बाँह पर बैठ गयी और बोली—"किशोर, मैं देखती हूँ कि आजकल तुमने नाराज होने का खूब अभ्यास किया है।"

किशोर उपेक्षा से बोला—"तुम मेरी ही मौत के परवाने पर मुझसे ही हस्ताक्षर करनवाना चाहती हो—कृपया अपनी अत्याचार-प्रवृत्ति को इतना उत्तेजित मत करो बेला! मैं चाहता हूँ कि मुझे दुनिया भूल जाय।"

बेला सिहर उठी। वह किशोर के कन्धे का सहारा लेकर उठ खड़ी हुई और रुआसी-सी होकर बोली—"किशोर, चुमकारकर शिकार को निकट बुला लेने के बाद वधिक भी उसपर तीर नहीं चलाता, पर तुम इस निष्ठुर कर्म करने से भी बाज नहीं आये—।"

किशोर ने कोई उत्तर नहीं दिया। बेला का स्पर्श उसके लिए एक भार

था। ज्यों-ज्यों बेला अपनापन की बातें करती किशोर का हृदय घृणा और क्षोभ से भरता जाता।

शान्त वातावरण। कमरे में बेला और किशोर विचारों की दो परस्पर विरोधी धाराओं में डूबने उतारने लगे।

कुछ सोचकर बेला—भग्न-मनोरथा बेला बोली—"किशोर मैं नहीं समझती कि हमारे बीच में यह दीवार कैसे खड़ी हो गयी, किसने खड़ी कर दी?"

किशोर अत्यधिक ऊब ऊठा। वह बोला--"बेला मै पसन्द करूँगा कि अब हम उद्वेग पैदा करानेवाली बातें न तो कहा करें और न सुना करें। जीवन को उद्वेग-रहित स्थिति में रखना ही पूर्ण शान्ति है। मैं शान्ति चाहता हूँ और चाहता हूँ कि तुम मेरे इस निश्चय की साधक बनो, बाधक नहीं।"

बेला का चेहरा उतर गया। उसे उसका शृंगार भारवान जान पड़ने लगा। वह हारी-थकी-सी कुर्सी पर बैठती हुई कहने लगी—"किशोर! विचारों के चरम विकास को ही वैराग्य या विराग कहा जा सकता है। हो सकता है कि परिभाषा गढनेवाले ने कहीं फांक छोड़ दी हो, पर मैं इसी परिभाषा को मानती हूँ। तुम्हारे भीतर जो वैराग्य उत्पन्न हुआ है वह शायद अपने लिए एक नयी परिभाषा का निर्माण करेगा।"

किशोर रूखी हँसी हँसकर बोला—"क्या दुनिया परिभाषाओं को आधार मानकर चलती है? परिभाषाएँ बनती और गलत सिद्ध होती रहती हैं पर दुनिया की गति अपनी राह से हट जाय या परिभाषाओं की प्रतीक्षा में खड़ी रहे ऐसा होते तो आजतक किसी ने भी देखा-सुना नहीं।"

बेला ने कहा—"किशोर, मैं तुम्हें पुकार रही हूँ, तुम क्षण भर रुककर भी मेरी पुकार का आदर नहीं कर सकते--सम्भव है मेरी पुकार में अब वह बल नहीं रहा जो तुम्हारे पैरों में लिपटकर तुम्हें रोक सके।"

"अपने प्रश्न का स्वय तुमने ही सुन्दर उत्तर दिया बेला"—किशोर कल्पना-विभोर-सा बोला—"तुम जानती हो पथ पर हजार-हजार व्यक्ति जा रहे हैं—तुम बिना किसी का नाम लिए पुकार रही हो। तुम्हारी पुकार स्वयं हजारों व्यक्तियों के बीच में छटपटाती फिरती है। वह यह भी नहीं समझ पाती कि वह किसके लिए है। बेला, यदि मैं यह कह दूँ कि तुमने किसी व्यक्ति-

विशेष को लक्ष्य करके पुकारना पसन्द नहीं किया, बल्कि तुम तो सारी दुनिया को एक साथ ही पुकार रही हो, फिर केवल मुझ पर ही यह दोषारोपण कैसे हो सकता है कि मै तुम्हारी पुकार की उपेक्षा करके बढ़ता ही चला गया ?"

वेला का हृदय धक् से करके रह गया। वह घबराकर बोली—"यदि मैं यह कहूँ कि तुम्हरा नाम ले-लेकर ही मैं पुकारा करती हूँ ?"

किशोर बोला—"तो मै यह कहूँगा कि या तो तुम्हारी आवाज निर्बल है जो मेरे कानों तक नहीं पहुँचती या मै ही इतनी दूर चला गया हूँ कि जहाँ तक तुम्हारी आवाज पहुँच ही नहीं सकती।"

---

(७)

किशोर अपने आपसे तङ्ग आ गया। क्रमशः वह बड़े वेग से मानसिक मंथन की स्थिति में पहुँचता गया। विचारोत्तेजक पुस्तकों का गम्भीर अध्ययन और ब्रह्मचारी के प्राणमय उपदेशों ने किशोर को उस मानसिक अवस्था में पहुँचा दिया जहाँ पहुँचकर मनुष्य की भावनाएँ चिल्ला उठती हैं। उसने यह अनुभव किया कि उसके पुराने संस्कार, जिनसे वह भयानक रूप से ऊब उठा था, अपनी जगह पर स्थिर हैं और ब्रह्मचारी के उपदेश तथा पुस्तकों के नये संस्कार भी घटा की तरह उसके मन को घेर रहे हैं। वह अपने पुराने सस्कारों से छुटकारा पाना चाहता था पर वैसा नहीं हो सका। उसके भीतर घोर क्रान्ति मच रही थी जिसकी कल्पना भी उसने नहीं की थी। किसी भयानक पीड़ा के समय नशे की चीज खा लेने से पीड़ा तो रहती है पर अनुभव करने की सारी शक्तियाँ मूर्छित हो जाती हैं—यह दशा किशोर की हुई। वह ब्रह्मचारी से बोला—"गुरुदेव, मैं तो दुहरे मंथम मे पड़ गया हूँ। मेरे पुराने सस्कार अभी तक जीवित हैं और आपके उपदेशों से उनका अनवरत युद्ध-सा हो रहा है। मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे भीतर ज्वालामुखी फूट पड़ा है, भयानक भूकम्प-सा आ गया है। पता नहीं चलता मैं क्या करूँ।"

ब्रह्मचारी जी बोले—"बेटा, यही तो मैं चाहता था। मेरा उद्देश्य है कि हमारा नवयुवक-समाज मानसिक जड़ता से छुटकारा पा जाय। विष से ही विष का अन्त करने के सिद्धान्त को मैं मानता हूँ। अच्छे-बुरे संस्कार अन-जानते ही हम लगातार ग्रहण करते हैं और हमारे अनजानते ही समय-समय पर वे संस्कार अपना प्रभाव भी दिखलाया करते हैं।"

किशोर ने कहा—"आपका कथन ठीक है, पर यदि मृगीवाले रोगी को बिच्छू डक मार दे, तो मृगी का दौरा तो रुकेगा नहीं, उल्टे बिच्छू का विष रोगी को अधिकाधिक विकल कर डालेगा। आप मुझे साफ़-साफ़ कहें कि मैं क्या करूँ।"

इस प्रश्न ने ब्रह्मचारी जी को आकुल कर दिया। उनके सहज प्रसन्न मुख पर विषाद की काली काली घटाएँ घिर आयीं। कुछ क्षण शान्त रहकर जीवनमुक्त ब्रह्मचारी रोने लगे। उपस्थित युवकों में भी मूक बेचैनी फैल गयी। सभी घबराकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। किशोर मर्माहत-सा होकर बोला—"गुरुदेव, यह क्या! क्या मैंने कुछ अपराध किया?"

अपने को स्वस्थ करके ब्रह्मचारी जी ने कहा—"बेटा, मैं कितना सुखी होता यदि मैं अपने बहादुर पुत्रों को यह कह सकता कि तुम्हारा क्या कर्तव्य है, तुम किस पथ का अवलम्बन करो। मैं समझता हूँ कि मुझे क्या कहना चाहिए, पर दुःख तो यही है कि कह नहीं सकता।"

एक दूसरा नवयुवक विद्यार्थी था विमल। विमल किशोर का मित्र और दृढ़ चरित्र का विद्यार्थी था। विमल बोला—"गुरुदेव, क्या आप कभी भी अपने मन की बात नहीं कहेंगे?"

ब्रह्मचारी दीर्घश्वास त्याग कर कहने लगे—"कहूँगा बेटा, पर अभी नहीं। तुम जिस दिन मुझे कहने-सुनने की स्थिति में पहुँचा दोगे उसी दिन मैं अपने अन्तर की एक-एक पँखुरी को संसार के सामने स्पष्ट कर दूँगा। मैं जानता हूँ कि सत्य को अधिक दिनों तक छिपाया नहीं जा सकता—वह कभी न कभी आपसे आप विविध रूप में प्रकट हो जाता है।"

किशोर बोला—"विमल भैया, कोई हमसे यह नहीं कहता कि दिन हो गया—सूर्य की चमक ही हमें दिन का ज्ञान करा देता है। रवि-सम्भवा

सभवा विभा बोलती नहीं, अखबारों में वक्तव्य नहीं छपवाती, उसकी उपस्थिति ही दिन का कारण है।"

विमल चुप लगा गया तो उपस्थित नवयुवकों मे से एक ने साग्रह पूछा—"देव, मै यह जानना चाहता हूँ कि हम कालेज का जीवन यही समाप्त कर दे, या उसे जिस रूप मे चल रहा है, चलने दे। हम तो अपाठ्य पुस्तकों को रटते रटते तङ्ग आ गये।"

ब्रह्मचारी जी ने कुछ सोचकर कहा—"इस प्रश्न का उत्तर स्वयम् तुम्हारा मन देगा। जिस वस्तु को हमारी विवेक-बुद्धि स्वीकार नहीं करती उसमें बलात् हम चिपके भी नहीं रह सकते। आवश्यकता इस बात की है कि तुम ससार के सत्य रूप को देखो, सुनो और जानो।"

किशोर ने कहा—"मैं सत्य के विविध रूपों को देखकर यह समझ ही नहीं पाता कि इन रूपों में कौन-सा ग्राह्य और कौन-सा अग्राह्य है। मैं क्या करूँ?"

ब्रह्मचारी जी बोले—"तुम मिठाई की दुकान के सामने खड़े हो—पेड़े, जलेबियाँ, बर्फी देख-देखकर घबरा जाते हो। मैं कहता हूँ 'ईख' को देखो—भिन्न-भिन्न प्रकार की मिठाइयों मे इसी ईख का रस होता है। सत्य के दो रूप कभी होते ही नही, बेटा। सौ घड़ों मे चमकने वाले एक चन्द्रमा के ही ये सौ प्रतिबिम्ब हैं न, कि सचमुच सौ चन्द्रमाओं के सौ प्रतिबिम्ब हैं।'

किशोर और दूसरे विद्यार्थी उपदेश समाप्त होने के बाद चुपचाप चले। रात अधिक हो चुकी थी। खुली सड़क पर विद्यार्थियों ने देखा कि कुछ अनजान व्यक्ति सड़क पर खड़े हैं और वे उसी मकान की ओर देख रहे हैं जिसमे ब्रह्मचारी जी का प्रवचन हो रहा था। किशोर ने विमल से कहा—"ये कौन हैं, विमल भैया?"

विमल मुस्कराकर बोला—"हमें जीवन की निश्चित परिभाषा का ज्ञान कराके कठोर कर्तव्य की ओर ढकेलने वाले।' विमल की बात सुनकर विद्यार्थियो के झुंड ने जोर से ठहाका लगाया, पर किशोर इस हँसी मे भाग न ले सका। वह अपनी ही चिन्ता की गुत्थी सुलझाता रहा।

❀ ❀ ❀ ❀

अपने मन के बिगड़े हुए सतुलन की ओर जब-जब किशोर का ध्यान जाता वह घबरा उठता। विमल, जो एक बहुत बड़े जमींदार का पुत्र था, किशोर को समझाता पर उसकी चिन्ताएँ बढ़ती जातीं। मानसिक व्याधि यहाँ तक बढ़ी कि किशोर ने एक दिन अपने मित्र विमल से कहा—"सुनो भाई, मैं पागल हो जाऊँगा। यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि मैं क्यों नाना प्रकार के उद्वेगजनक विचारों से लड़ता-झगड़ता रहूँ ! मैं तो सभी तरह के झगडों से छुटकारा पाना चाहता हूँ, न कि नये-नये झगड़ों को सिर पर लादना। मै किस ओर जा रहा हूँ, यह मैं जानता हूँ पर कह नहीं सकता—वाणी साथ नहीं देती।"

विमल बोला—"तुम चलो मेरे घर पर ! अब मेरा भी जी नहीं लगता। मैं इतना तो अवश्य जानता हूँ कि आज की दुनिया, आज का समाज, आज का मानव .....।"

किशोर झुँझलाकर बोला—"दुनिया, समाज, मानव की रट छोड़ो। आखिर हमें करना क्या चाहिए, यह सोचो। हम क्यों जीवित रहना चाहते हैं—अगर उद्देश्यहीन जीना ही संसार का लक्ष्य है तो मैं कहूँगा कि अब प्रलय सिर पर है। उद्देश्यहीन दुनिया को नष्ट होना पड़ेगा और यदि किसी उद्देश्य को लेकर ही जीना नीति का लक्ष्य है तो वह उद्देश्य कौन-सा है यही मैं जानना चाहूँगा। यदि उद्देश्यहीन ही मुझे जीवित रहने को बाध्य होना पड़ा तो मैं आत्म-हत्या कर लेना पसन्द करूँगा। जड़ वृक्ष की तरह इच्छाहीन, उद्देश्यहीन जीवित रहना जीना नहीं विडम्बना है।

विमल खिलखिलाकर हँस पड़ा और किशोर की पीठ पर एक धौल जमाकर बोला कि- हमारे जीवन का पहला उद्देश्य है खूब बन-ठनकर "गर्ल्स स्कूल" के सामने जो सड़क है उस पर सन्ध्या समय चहलकदमी करना और किसी परी को देखते ही खून दर्द भरे गले से गाना—

"दुख के अब दिन बीतत नाहीं।"

किशोर चिढकर विमल के हास्योत्फुल्ल मुँह की ओर देखने लगा। विमल का ध्यान अपने गीत की ओर था।

---

(८)

विमल के पिता विशाल जमींदारी छोड़कर जब अपने कृत कर्मों की जाँच-पड़ताल करके ससार के सबसे बड़े दफ़्तर की ओर चले गये तो जमींदारी का भार सँभाला उनके बड़े पुत्र नारायण बाबू ने। अपने अग्रज का स्नेह प्राप्त करके पितृहीन विमल ने यह कभी नहीं सोचा कि उसके मन मे कोई अभाव है। ऐसी स्थिति मे प्रतिपालित होने के कारण विमल अपने मन का ही मालिक बना रहा—उसने यह अनुभव ही नहीं किया कि उसका मालिक भी इस ससार म कोई है या नहीं। उड़ाऊ स्वभाव के कारण कालेज में उसके मित्रा की कमी न थी। यौवन-सम्बन्धी सभी गुण-अवगुण विमल म पूरी उग्रता मे विद्यमान थे। वह बड़े वेग से मिलना जानता था और उससे भी दूने वेग से त्याग करना जानता था। यूथ बाँध कर सिनेमा घरों आदि में ऊधम करना विमल के लिए नित्य का साधारण खेल मात्र था। न जाने किशोर से उसका अपनापन कैसे स्थापित हो गया। वह मन ही मन किशोर से सहमत भी था और उसका आदर भी करता था। किशोर अन्यमनस्क स्वभाव का नवयुवक था, पर उसके भीतर ज्वालामुखी पहाड़ की जो अग्नि थी उसका ज्ञान भी विमल को था। वह किशोर के सम्पर्क मे रहते हुए भी घबराता था और उसका त्याग भी उसके लिए मौत थी। जब ब्रह्मचारी जी पधारे तो विमल ने ही सबसे पहले उनका महत्व समझा और क्रमशः कालेज के सभी विद्यार्थी ब्रह्मचारी जी के सम्पर्क मे आ गये। विमल की चञ्चलता, व्यवस्था-कुशलता और रूप का आदर सभी करने थे। जब किशोर परिस्थिति की गम्भीरता के दबाव से ऊब उठा तो किशोर ने कहा—"भैया, तुम भीतर ही भीतर अस्वस्थ हो गये हो। हँसना-खेलना तुम्हें प्रिय नहीं है तो इसकी मैं चिन्ता नहीं करता पर कर्तव्य का जो भूत तुम्हारे सिर पर चढ़ा है, वह मुझे विकल किये डालता है। गम्भीर विचारों का ऊमस हम सहन नहीं करते। ऐसी हवा में साँस लेने योग्य हमारे फेफड़े नहीं हैं।"

किशोर बच्चों की तरह भोलापन दिखलाता हुआ बोला—"आखिर मै

करूँ क्या ! मै तो यह समझ भी नहीं पाता कि हमारे लिए उचित क्या है और अनुचित किसे कहना चाहिए। ब्रह्मचारी जी ने तो किनारे से उठाकर मुझे तो मँझधार में फेंक दिया। मैं अपने विचारों के हाहाकार से घबरा उठा हूँ। सोचता हूँ तो सोचा भी नहीं जाता !"

किशोर की बातें सुनकर विमल को चिन्ता हुई। वह कहने लगा—"मेरी प्रार्थना मानकर मेरे साथ चलो। दो-चार महीने न सही दो-चार सप्ताह देहात मे रह लेने से मन को शान्ति मिलेगी। वहाँ हम खूब जी खोलकर हँसे-खेलेंगे—दुनिया जाय जहन्नुम मे, हमें क्या परवा पड़ी है।"

किशोर बोला—यह कैसी बात है विमल। मेरे पिता भूतपूर्व दारोगा हैं। वे चाहते हैं कि मै भी दारोगा बनूँ। यह तो हुई अभिभावक की इच्छा और मेरी इच्छा है कि मैं शून्य बनूँ, जिसकी किसी को आवश्यकता न पड़े। अब ब्रह्मचारी जी की बात सोचो। वे चाहते हैं कि हम तूफान बने जो सारी दुनिया को हाहाकार से भर दे। दारोगापन, शून्य और तूफान में कोई ऐक्य तो, मेरी समझ मे, नहीं है।

विमल ने कहा—"और मै चाहता हूँ कि तुम कुमारी बेला देवी के पुजारी ही बने रहो। मेरी राय को भी महत्व दो भैया ! मैं कोई नगण्य व्यक्ति थोड़े हूँ जो तुम मेरी उपेक्षा कर रहे हो।"

किशोर मुस्कराकर चुप लगा गया। उसकी आँखो के सामने एक बार बेला की उत्तेजक मूर्ति नाचकर विलीन हो गयी। किशोर विमल पर इसी लिए खीज उठा कि उसने उसके उस दर्द को छेड़कर जगा दिया जिसे वह भूल जाना चाहता था। भूल रहा था या किसी अंश में भूल भी चुका था। मानव अपने अतीत को भूलकर ही अपने को निश्चिन्त रखने का प्रयत्न करता है—वह अपने को याद नहीं करता।

किशोर बोला—"विमल, मै एकान्त से घबराता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि यदि मैं एकान्त मे रहूँ तो मेरे विचार रीछ, शेर, भेडिया का रूप धारण करके मेरी बोटी-बोटी अलग कर देंगे। मै अपने आपसे डरता हूँ— न जाने ऐसा क्यो हो गया है। मैं गाँव मे रह नहीं सकता।"

किशोर की ओर तेज़ नज़रों से देखकर विमल बोला—"मैं समझता हूँ: तुम्हारे हृदय में कुछ ऐसी स्मृतियाँ हैं जिन्हें तुम भूलना चाहते हो। किशोर, मैं कहूँगा कि अपने आपको धोखा मत दो। मन के साथ बराबर जोर जबरदस्ती करते रहना अच्छा नहीं होता—यह तो ठीक वैसा ही है जैसा तुमने ब्रह्मचारी जी से कहा था। याद है—"यदि मृगी वाले रोगी को बिच्छू डङ्क मार दे तो।"

किशोर मानो थककर हाँफने लगा। वह बहुत ही भीत स्वर में बोला—तुम वहीं पर प्रहार कर रहे हो जहाँ पर दर्द है। मैं···मैं प्रार्थना करता हूँ, इतने निष्ठुर मत बनो।"

किशोर अखबार से मुँह ढाँपकर कुर्सी पर लुढ़क गया। विमल किशोर के निकट अपनी कुर्सी खिसकाकर कुछ क्षण चुप रहा, पर जब किशोर ने मुँह नहीं खोला तो उसने एक ही झटके मे अखबार को अलग कर दिया। विमल को उस समय आश्चर्य हुआ जब उसने देखा कि किशोर रो रहा है। हक्का-बक्का-सा विमल किशोर की ओर देखता हुआ बोला—भैया, यह नई बात आज मैने देखी। तुम रो रहे हो? ऐसी निर्बलता तुममें होगी, इसकी कल्पना भी मैं नहीं करता था। बात यहाँ तक पहुँच जायगी—उफ्!"

किशोर कुछ लज्जित-सा होकर बोला—"विमल, तुम मेरी रक्षा करो। मै अब बहुत ही ऊब उठा हूँ। कह नहीं सकता मेरा अन्त · ·।"

विमल खिलखिलाकर हँस पड़ा और किशोर का कन्धा झकझोरकर बोला—"उठो, सन्ध्या हो गयी। चलो तुम्हें सिनेमा दिखला आऊँ।"

यद्यपि किशोर खेल तमाशों से घृणा करता था, तथापि उस दिन वह मन्त्राकर्षित-सा विमल के साथ चला। सिनेमाघर मे अत्यधिक भीड़ थी। फर्स्ट क्लास का टिकट खरीदकर दोनो अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठे। पर्दे पर तस्वीर झिलमिलाने लगी तो किशोर ने अपने पीछे की कतार से—ठीक पीठ पर ही—दो व्यक्तियो के वार्तालाप की ओर ध्यान दिया। एक व्यक्ति का स्वर पहचाना था—वह था मि० सेन का भर्राया हुआ स्वर जो शराब के झोंके मे बोल रहा था, और दूसरा स्वर भी भर्राया हुआ ही था।

पर वह किसी अनजान व्यक्ति के गले की भारी आवाज़ थी। किशोर ने अपना पूरा ध्यान बातों की ओर लगाया।

सेन बोल रहा था—"छोकरी है तो बहुत ही सुन्दर, पर छँटी हुई है।"

दूसरा व्यक्ति बोला—"और तुम भी छँटे हुए हो—इस सोने की चिड़िया की झाँकी करा दो तो जन्म भर कृतज्ञ हो जाऊँ।"

सेन ने कहा—"वह कोई पर्दे में रहती है? उल्लू की तरह बाते कर रहे हो—चलो, कल तुम्हारे बगल में ही उसे बैठा दूँ। अब वह धीरे-धीरे मेरे जाल में फँस रही है—एक बार फँसी न कि फिर उभरना कठिन हो जायगा।"

अनजान व्यक्ति बोला—"फाँसो यार! तुम बड़े भाग्यवान हो—ये रङ्गीन छोकरियाँ तो होटल की रसभरी रकाबियाँ हैं, जो मेज के कोने कोने घूमा करती हैं—इन्हें वैष्णव के चौके की परोसी हुई फलाहार की थाली कहना भूल है, जो चौके से बाहर निकलते ही अशुद्ध हो जाती हैं। समझे मि० सेन साहब!"

दोनों चुप हो गये और फिर पर्दे पर नाचने वाली किसी अभिनेत्री की भद्दी से भद्दी आलोचना शुरू हो गई। किशोर के समस्त शरीर का रक्त उसके दिमाग में चढ़कर खौलने लगा। उसने घूमकर देखा, पर हल्के प्रकाश के कारण वह ठीक-ठीक नहीं पहचान सका कि ऐसी कुरुचिपूर्ण बातों की आलोचना करने वाले ये कौन महानुभाव हैं। बाते बहुत धीरे-धीरे हो रही थीं, पर स्पष्ट थीं। किशोर ने सेन की आवाज तो पहचानी पर जब 'इन्टर्वल' हुआ तो उसने देखा कि सेन की बगल में एक ऐसा घृणित मनुष्य बैठा है जिसकी जवानी, भलमनसाहत, मानवता उसके चेहरे पर झाड़ू मारकर विदा हो गई हैं।

सीतला के काले-काले दागों से भरा हुआ भद्दा काला चेहरा और खूब उभरी हुई लाल-लाल आँखे। नाक बीच से बैठी हुई—मानो बीच की हड्डी गल गई हो। मोटा और नाटा शरीर। गंजा सिर, और गर्दन गायब, मानों कन्धों पर ही काटकर उसका बड़ा-सा गोल कद्दू जैसा बेडौल सिर रक्खा हुआ हो। सेन ने भी किशोर को पहचान लिया—उसका चेहरा विवर्ण हो गया।

किशोर का जी न लगा। वह विमल से बोला—"मै अब बैठ नहीं सकता। मेरा जी नहीं लगता।"

विमल ने विनोद भरे स्वर में कहा—"तुम्हें हो क्या गया है किशोर! कितना सुन्दर चित्र है—देखो भाई।"

लाचार किशोर को बैठना पड़ा। उसका सारा शरीर मानो तेज़ ज्वर से जल रहा था। वह अपने को जितना स्वस्थ रखने का प्रयत्न करता उतना ही उसका मनोद्वेग बढ़ता जाता। वह समझ रहा था कि सारी बाते बेला से ही सम्बन्ध रखती हैं। उसने सोचा—बेला मेरी कौन है, वह हवा की तरह सार्वजनिक सम्पत्ति है या उससे भी कुछ अधिक। बेला के सम्बन्ध में मतामत स्थिर करने का केवल किशोर को ही कोई नैसर्गिक अधिकार तो है नही। अपने को समझाता-समझाता जब वह थक गया तो उसने विमल से कहा—"भाई, तुम बेला को जानते हो?"

विमल ने कहा—"यह एक ही कही तुमने। उसे कौन नहीं जानता—वह तो यहाँ की ······।"

किशोर ने कहा—"ठीक है, मैंने भूल की। मैं चाहता हूँ कि ······ खैर, जाने दो। अब हमें छोटी बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। छोटी बातों मे उलझा हुआ मनुष्य अपने को छोटा बना लेता है और छोटे व्यक्तियों से ससार का काम नहीं चलता।"

विमल मुस्कराकर चुप लगा गया। जब किशोर अपने डेरे पर लौटा तो उसने अपने पिताजी को मेज पर रक्खी हुई ब्रह्मचारी जी की एक पुस्तक को उलटते देखा।

हरिहरसिंह ने किशोर को देखते ही पूछा—"यह पुस्तक तुम्हारे पास कहाँ से आई—यह जब्त है। मै जानता हूँ—मै पुलिस मे रह चुका हूँ।"

किशोर मन ही मन खिन्न होकर बोला—"कभी जब्त रही होगी पर आज तो सभी दुकानो पर बिकती है। यह पुस्तक मेरी नही एक ब्रह्मचारी जी की है।"

हरिहर सिंह फिर गुर्राकर बोले—"मै ऐसी पुस्तकों से घृणा करता हूँ।

इसमें बहकाने वाली बातें होती हैं। तुम मत पढो—मैं जोर देकर कहता हूँ, ऐसा साहित्य तुम्हें छूना भी नहीं चाहिए।"

किशोर कुर्सी खींचकर बैठता हुआ बोला—"माँ का स्वास्थ्य अब कैसा है?" इस प्रश्न का उत्तर हरिहरसिंह ने एक हुंकार के रूप में दिया।

—o—

(६)

पिता के आग्रह पर किशोर को घर जाना पड़ा। वह बेला से मुलाकात नहीं कर सका। रास्ते में—ट्रेन पर—हरिहर सिंह ने अपने पुत्र से पूछा—"क्या जी, तुम्हारा ब्रह्मचारी कौन है, जिसके चलते डेढ मास से तुमने अपनी पढाई को ठोकर मारी है।"

किशोर ने शान्त स्वर में कहा—"बाबूजी, ब्रह्मचारी जी एक विद्वान और अनुभवी पुरुष हैं। उन्होंने विश्व-प्रदक्षिणा की है और संसार की अनेक भाषाओं का उन्हें पारदर्शी ज्ञान है।"

किशोर की बाते सुनकर हरिहर सिंह चिढ गये। वे बोले—"झूठ बोलते हो, इतना बड़ा विद्वान संन्यासी बनकर भीख नहीं माँगता फिरेगा—वह तो सरकारी कुर्सी पर होगा। वह कोई पक्का धूर्त है, धूर्त। जब मैं दारोगा था तब ऐसे धूर्तों को थाने में बन्द करके ठोंका करता था।"

यदि यही बात किसी दूसरे के मुँह से निकलती तो किशोर उसके मुँह को मुनाढी के ढोल की तरह पीट देता पर उसने अपने पिता की ओर केवल जलती आँखों से देखकर ही सन्तोष किया।

हरिहर सिंह फिर वेहया की तरह बोले—"ऐसे धूर्तों का साथ करना क्या है, अपने भविष्य का सत्यानाश करना है।"

किशोर अपने उमड़ते हुए क्रोध को बलपूर्वक दबाकर बोला—"बिना अच्छी तरह परिचय प्राप्त किये किसी भद्र व्यक्ति को धूर्त कहना कहाँ तक उचित है, यह मुझसे अधिक आप समझते हैं। मैं तो देखता हूँ कि बड़े-बड़े विद्वान प्रोफेसर ब्रह्मचारी जी के चरणों में बैठकर ज्ञानार्जन करते हैं।

विद्वानों की यह राय है कि ब्रह्मचारी जी जैसा धुरन्धर ज्ञानी और मेधावी शायद कभी ही इधर आता है। ब्रह्मचारी जी त्यागी हैं। वे धन नहीं चाहते, उन्होंने सारे ससार का भ्रमण केवल ज्ञान की उपलब्धि के लिए ही किया है और वे जहाँ गये वही उनका अपूर्व सम्मान हुआ।"

हरिहर सिंह ने हाथ की बेड़ी को फेंक कर कहा—"मैं तुम्हारी बहस नहीं सुनना चाहता। मैं पुलिस विभाग मे काम कर चुका हूँ। मैं चोर और भले आदमी की पहचान रखता हूँ। रँगे हुए सियारो को मैं तुरन्त पहचान जाता हूँ। जिस ब्रह्मचारी की तुम चर्चा कर रहे हो ठीक वही तो नही पर इसी तरह के एक ब्रह्मचारी को मैंने पकड़ा था—वह चोर था। दिन को शास्त्र-पुराणों की व्याख्या करता था और रात को चोरी करवाता था—पक्का चोर था।"

किशोर अत्यन्त खिन्न होकर बोला—"पिताजी, आपकी बातों से मेरी भावना पर चाट पहुँचती है। मै ससार भर के ब्रह्मचारियों की वकालत नहीं करता—दुनियाँ मे सभी कोटि के मानव होते हैं।"

ट्रेन पूरी तेजी से दौड़ रही थी। हरिहर सिंह अपनी जगह पर अच्छी तरह जमकर बैठते हुए बोले—"मैं कोई मूर्ख हूँ! मैंने बीस साल दारोगे की कुर्सी•• •।"

किशोर झल्लाकर बोला—"मैं जानता हूँ, अच्छी तरह जानता हूँ, आप दारोगा थे, पर मेरा अनुभव तो यही कहता है कि दारोगा बनना कोई बहुत महत्व का काम नहीं है। दारोगा चोर, बदमाशों के लिए होता है, यह बात सही है पर उसका दृष्टिकोण इतना गर्हित हो जाता है कि उसे सारी दुनिया में चोर, बदमाश ही दिखाई पड़ते हैं। आपको अपना पुराना दृष्टिकोण बदलना चाहिए। अब आप एक भद्रनागरिक की तरह सोचिए—यही आपसे दूसरे आशा भी रखते हैं।"

हरिहर सिंह आप से बाहर होकर चीख़ उठे—"तुमने क्या कहा! क्या दारोगा पतित होते हैं!"

किशोर कड़ी बात बोलकर मन ही मन पछता रहा था। वह पिता का चीत्कार सुनकर चौंका और बोला—"आप नाहक नाराज होते हैं। अच्छा

हो कि हम एक दूसरे से बहस करना ही बन्द कर दे। मैं डरता हूँ कि कहीं मेरी बातों से आपका जी न दुख जाय।"

हरिहर सिंह का क्रोध सहज में उतरने वाला न था—परपीड़क स्वभाव होने के कारण उन्हें तभी आनन्द आता था जब वे दूसरे को जी भरकर सता लेते थे। शरीर से सताने की क्षमता वे दारोगा न रहने के कारण गँवा चुके थे, पर शब्दों से प्रहार करने में वे काफी पटु माने जाते थे। अपने गाँव में भी हरिहर सिंह से अधिक अप्रिय व्यक्ति कोई दूसरा न था। नीचता और कमीनापन के उदाहरण में लोग हरिहर सिंह का नाम लिया करते थे, जिसकी जानकारी किशोर को थी। हरिहर सिंह फिर गुर्राकर बोले—"मैं जानता हूँ कि तुम किस पथ का अनुसरण कर रहे हो। मैं तुम्हें और तुम्हारे नालायक ब्रह्मचारी को जेल की हवा खिलवा दूँगा—बस याद रक्खो। मैं कानून के सामने पुत्र, मित्र किसी की परवा नहीं करता।"

इतना कहकर हरिहर सिंह पूर्ण गौरव में तनकर बैठ गये और भरी हुई गाड़ी के चारों ओर इस आशा से देखने लगे कि उनकी अभूतपूर्व कानून-भक्ति की घोषणा ने श्रोताओं पर कैसा जाज्वल्यमान प्रभाव डाला। उन्हें यह देखकर निराशा हुई कि सभी घृणापूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देख रहे हैं। एक बारगी ही सभी यात्रियो पर नाराज होकर हरिहर सिंह फिर बोले—"आज भी मेरे शरीर में एक दारोगा का ही खून है। मैं आज भी चाहूँ तो अपना पद सरकार से लड़कर प्राप्त कर सकता हूँ, पर मैंने जानबूझ कर अपने को सरकारी नौकरी से अलग कर रक्खा है।"

एक यात्री, जो चुपचाप हरिहर सिंह की बातें सुन रहा था, अपने साथी से बोला—"यह एक आश्चर्य की बात है। आज तक मैंने अपने वंश-रक्त की दुहाई देते लोगों को सुना था पर इन महाशय के शरीर में दारोगा का रक्त है—शायद इनके पूर्वज एक कतार में दारोगा ही रहे होंगे।"

दूसरा यात्री अपने साथी से बोला—"बड़ा भयङ्कर! तब तो यह खान्दानी कसाई है।"

किशोर अत्यन्त लज्जित होकर खिड़की के बाहर देखने लगा। दूर-दूर

तक फैले हुए खेत और उतरती हुई धूप। टेलीग्राफ के तार पर कोई कोई चिड़िया बैठकर झूले का आनन्द ले रही थी।

हरिहर सिंह फिर बोले—"मैं कहे देता हूँ, तुम्हें ब्रह्मचारी का साथ अपने कल्याण के लिए छोड़ना पड़ेगा।"

किशोर ने मन ही मन कहा—"मुझे तो ऐसा लगता है कि आपका ही साथ छोड़ना मेरे लिए सुखकर और कल्याणकारी होगा।"

गाड़ी निश्चित स्टेशन पर पहुँची। हरिहर सिंह उतरे और एक गम्भीर हुङ्कार के साथ किशोर से बोले—"देखो तो कोई कुली है!"

किशोर ने देखा। देहाती स्टेशन पर कुली नहीं रहते—वह जानता था पर पितृ-आज्ञा का पालन भी तो करना चाहिए। वह इधर-उधर नजर दौड़ाकर बोला—'जी, कुली तो नजर नहीं आता।'

'जहन्नुम में जाय ऐसा स्टेशन'—हरिहर सिंह अपनी गठरी की ओर देखकर बोले—"रेलवे कम्पनी को लिखना होगा। भद्र यात्रियों के आराम की जवाबदेही उस पर है।"

किशोर मुस्कराकर चुप लगा गया। अपने पिता से बहस करना उसे प्रिय न था। इधर-उधर देखने के बाद दुर्भाग्य का मारा गाँव का एक ग्वाला हरिहर सिंह को दिखलाई पड़ा, वे उसकी ओर लपके। अभागे ग्वाले के सिर पर भारी गट्ठर लादकर स्वयम् गालियाँ बकते हुए हरिहर सिंह घर की ओर चले। किशोर ने अपना सूटकेस स्वयम् हाथ में लटका लिया। एक बार क्रुद्ध दृष्टि से अपने पुत्र की नालायकी की ओर देखकर हरिहर सिंह पूरी ऊँचाई में तनकर चल पड़े गाँव की ओर।

गाँव में पहुँचकर किशोर स्थिर नहीं रहा। वह ब्रह्मचारी जी के कथनानुसार गाँव की स्थिति को बहुत ही ध्यानपूर्वक देखने लगा। उसे तत्काल पता चल गया कि यदि प्रत्येक गाँव और शहर को एक एक व्यक्ति मान लिया जाय तो करीब साढ़े सात लाख गाँवों और नगरों में सात लाख गाँव तो मौत की घड़ियाँ गिन रहे हैं। साढ़े सात लाख व्यक्तियों में यदि सात लाख व्यक्ति मरणासन्न हों तो केवल पचास हजार व्यक्तियों को लेकर ही राष्ट्र का काम नहीं चलाया जा सकता। किशोर का कलेजा धक् करके बैठ गया।

उसने अपने अनुभव का पूरा विवरण लिखकर ब्रह्मचारी जी को भेज दिया। उसे उत्तर भी प्राप्त हो गया।

गाँव मे रहकर भी किशोर ने गाँव को अच्छी तरह नही देखा था। बाहर मे देखने पर जो व्यक्ति स्वस्थ और सबल दिखलाई पड़ता है वह भीतर ही भीतर खोखला है, यह पता कोई अनुभवी वैद्य ही लगा सकता है। धीरे-धीरे अनुभव पुष्ट हो जाने के कारण दो-चार सप्ताह में ही किशोर की कल्पना की धारा एक भिन्न दिशा की ओर प्रवाहित होने लगी। वह ज्यों-ज्यों गाँव के हृदय मे प्रवेश करता उसे ऐसा लगता कि उसके हृदय को बड़े वेग से क्षयी के कीटाणु चलनी बनाते जा रहे हैं। किशोर सिहर उठा और वहाँ से भागने की तैयारी करने लगा तो हरिहर सिह ने पूछा—'कालेज की पढाई तो तुम छोड़ ही बैठे, अब शहर में जाकर क्या करना है? मैं शहर का खर्च क्यों दूँ जब कि तुम आवारागर्दी में अपना समय लगाते हो?'

किशोर ने उत्तर दिया—"मैंने छुट्टी ले ली है—कालेज क्यों छोड़ूँगा। इसी साल बी० ए० की फाइनल परीक्षा है।"

"छुट्टी ले ली है"—दाँत पीस कर कहने लगे—"क्यो छुट्टी ले ली! ब्रह्मचारी के चकमे मे पड़कर अपना भविष्य नष्ट कर डाला तुमने। मैं तुम्हारे इस अपराध को क्षमा नहीं कर सकता।"

किशोर बोला—"आपने फिर उसी अप्रिय प्रसङ्ग का उत्थापन किया। मुझे ऐसी बात सुनने में भारी एतराज है। आप क्षमा कर दे पिता जी—मैं आप को कष्ट देना क्यों चाहूँगा।"

हरिहर सिह ने कहा—"यह नहीं होगा। तुम ब्रह्मचारी का साथ छोड़ दो। मैं पुलिस में खबर देकर उस मक्कार को जेल की हवा खिलाऊँगा। मैं जानता हूँ, मुझे विश्वास है कि वह डकैत है।"

किशोर अपने दोनों कानों में उँगलियाँ डालकर बोला—"राम, राम, हद हो गई। मै आपके पैरों पड़ता हूँ—अतिवाद बुरा होता है। आप जान-बूझकर मेरी भावनाओं को रौंद रहे हैं।"

हरिहर सिह चिल्लाकर बोले—"मैं · मै तुम्हें समझाता हूँ· · समझना तुम्हारा काम है।"

किशोर अपने मन को खूब स्थिर करके बोला—आप मेरे देवता हैं। मै जानता हूँ कि आप जो कुछ कहेंगे मेरे हित के लिए। पर ब्रह्मचारी जी के सम्बन्ध मे आपने संस्कार-वश जो कुछ सोच लिया है उसमें सशोधन की आवश्यकता मै महसूस करता हूँ। अगर आप अपने नैसर्गिक अधिकारों का दुरुपयोग करेंगे तो मुझे विश्वास है कि एक समय ऐसा आवेगा जब आपको पछताना पड़ेगा, और मुझे भय है कि आप तब तक अपनी जो हानि कर लेंगे उसके सशोधन का समय भी निकल जायगा।"

इतना बोलकर किशोर उठा और खेतों की ओर चला गया। हरिहर सिंह अवाक् से अपने तेजस्वी पुत्र की ओर देखते रह गये।

---

(१०)

संध्या हो गई थी। बेला मानों पछताती-सी, सहमती-सी अपनी कोठी से निकली। वह धीरे-धीरे सड़क को पार करके बन की उस पगडण्डी के पास पहुँचकर रुकी जो गङ्गा तट को जाती थी। बेला ने इधर-उधर देखा। चारो ओर निर्जनता थी—बन के अन्तराल में अन्धकार फैल रहा था। चुपचाप खड़ी होकर बेला कुछ देर तक सोचती रही और वह फिर अपनी कोठी की ओर तेजी से मुड़ी। अपने कमरे में पहुँचकर वह पछाड़ खाकर आराम कुर्सी पर गिरी और दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर रोने लगी। उसकी सुन्दर उँगलियों के बीच से आँसुओं की धाराये बहने लगीं। कुछ क्षण रो लेने के बाद बेला ने अपने को थोड़ा-सा स्वस्थ पाया। वह उठी और व्याकुल भाव से कमरे मे टहलने लगी—वह अपने मनोद्वेग को सँभाल नहीं पाती थी। वह बार-बार कुर्सी पर गिरकर रोती और बार-बार उठकर कमरे मे टहलती। अभागिनी बेला कमरे मे—एकान्त कमरे मे बाणविद्ध हरिणी की तरह छटपटा रही थी।

दिन का अन्त हो गया। अन्धकार फैल गया। बाग मे झिल्लीरव

गूँजने लगा। कमरे में बिजली की रोशनी का स्विच दबाकर नौकर चला गया तो बेला फिर हारी थकी-सी अपनी कुर्सी से उठ खड़ी हुई, इसी समय मुस्कराते हुए मि० सेन ने कमरे में प्रवेश किया। सेन के चेहरे को देखते ही बेला का चेहरा विवर्ण हो गया।

भेदभरी दृष्टि से बेला के चेहरे की ओर देखकर सेन बोले—"रानी, तुमने तो अच्छा धोखा दिया—शायद यहाँ कोई दूसरा आ गया होगा।"

बेला रुआसी-सी होकर बोली—"मुझे क्षमा करो, मैं पगली हो जाऊँगी—क्षमा करो।"

सेन ने फिर मुस्काकर कहा—मैं स्वयम् पागल होना चाहता हूँ, मेरी रानी! उस गन्दे जङ्गल में प्रतीक्षा करता-करता जब मैं ऊब उठा तो यहाँ आया। समझ में नही आता ऐसे सुन्दर एकान्त घर के रहते तुमने उस मेंढकों वाले बन में मुझे क्यों भेज दिया!

इस तीव्र व्यग्य के आघात को बेला नहीं सह सकी। वह अपने कानों में उँगली डालकर जब जाने का उपक्रम करने लगी तो उन्मत्त की तरह दोनों हाथ फैलाकर मि० सेन बोले—"हैं, हैं यह क्या! जाती कहाँ हो मेरी प्यारी रानी! मै कोई गैर हूँ बेला! अब लज्जा करने से काम कैसे चलेगा?"

बेला आह करके फिर अपनी कुर्सी पर बैठ गयी—वह मूर्छित-सी हो रही थी।

रस-विह्वल दृष्टि से बेला की ओर देखते हुए सेन ने कहा—"मैं अपना जीवन तुम्हारी बाजी पर हार गया—अहा, यह पूर्ण आत्म-समर्पण भी कितना सुखद है, आनन्द-वर्धक है, जीवन के चरमोत्कर्ष से भी आगे ले जाने वाला है। बेला, ओ मेरी प्राणाधिके बेला, आओ—इस पाप-ताप-ग्रस्त ससार से दूर, बहुत दूर, चलकर हम अपना एक नन्हा-सा घोंसला बनावें।"

नाटकीय ढङ्ग से इस कलियुगी दुष्यन्त ने अपना वक्तव्य समाप्त करके बेला को भूखे भेड़िये की तरह घूरा। बेला मरणासन्न-सी कुर्सी पर पड़ी हुई थी, उसकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी। मि० सेन एक बार चारों ओर

देखकर बेला को अपने घृणित बाहुपाश में आबद्ध करने के लिए आगे बढ़े। विरोध-भय न था। वह मूर्छितावस्था में थी।

× × × ×

आधी रात से अधिक हो गई! चारों ओर सन्नाटा, घोर निर्जनता कोरी निन्द्रा में निमग्न हो रही थी। रात की उस गम्भीर निर्जनता मे बेला ने अपने आपको साहस करके देखा। वह झिझकी और फिर मुस्कराकर अपने शयनकक्ष में टहलने लगी। उसने शीशे के सामने खड़ा होकर फिर अपने आपको देखा—उसका सलोना रूप, घातक कजरारी आँखें, सुगठित शरीर और गुलाब जैसा रङ्ग—इनमें से प्रत्येक चीज ज्यों की त्यों थी। बेला को सन्तोष हुआ, उसने कुछ खोया नहीं, उसने कुछ गँवाया नहीं। यदि उसकी लुनाई चली जाती, रङ्ग उड़ जाता, शरीर का गठन बालू की भीत बनकर बिखर पड़ता, अनियारी आँखों की बनावट बिगड़ जाती या घुँघराले लम्बे बाल पतझड़ के पत्तों की तरह झर पड़ते तो बेला निस्सन्देह आत्महत्या कर लेती, अपनी जान दे बैठती। पर सभ्य समाज में आदर पाने के जितने उपकरण थे वे तो ज्यों के त्यों थे। फिर चिन्ता या मनस्ताप का कोई कारण उस लीलावती पुतली के लिए नहीं जान पड़ा। वह अल्हड़ की तरह एक बार फिर कमरे में चहलकदमी करके कीमती बिस्तरे वाली खाट पर लेट गई—उसे नींद नहीं आई। कोई रह-रहकर न जाने क्यों उसके हृदय को घूसों से लगातार मार रहा था। इधर-उधर दो चार करवटें बदलकर बेला फिर उछलकर खाट से उठी। उसने अपनी आलमारी खोलकर मीठी शीराजी की एक बोतल निकाल ली—इसके बाद!

वह उन्मत्त-सी होगई, उसकी आँखों में लाली दौड़ गई, अङ्ग-अङ्ग में उन्माद भर गया, उसकी भावनायें तूफान बनकर हाहाकार करने लगीं। बेला बार-बार शराब पीती पर नशा ठहरता नहीं, तुरन्त उखड़ जाता। इधर ऊषा को प्रणाम करके रात ने बिदाई माँगी। बिजली की रोशनी फीकी पड़ गई—बेला एक दीर्घ निश्वास त्यागकर औंधे मुँह खाट पर लेट गई। नशे ने भी उसका साथ छोड़ दिया था।

---

(११)

दिन समाप्त हो गया था। दिगन्त व्यापी खेतों पर सध्या सोना बरसा रही थी। किशोर गाँव की सीमा से बाहर एक घने बाग की ओर चुपचाप जा रहा था कि उसकी दृष्टि सामने की सड़क पर पड़ी। उसने देखा उसका एक सहपाठी भूला-भूला सा गाँव की ओर जारहा है। किशोर चौंका—वह तेज़ चाल से अपने नवागन्तुक मित्र की ओर लपका। थोड़ी-सी दौड़ लगा लेने के बाद उसने अपने मित्र को पा लिया—वह किशोर के ही यहाँ जारहा था। किशोर ने अपने मित्र को देखा—बिखरे हुए बाल, गले मे केवल एक अधमैली कमीज, पैरों मे टूटे हुए चप्पलों का एक जोड़ा और चेहरे से परेशानी। किशोर कुछ घबराया-सा बोला—'दिनेश, इस हालत में !—तुम—! ऐं !" दिनेश अपने कपड़ों की ओर देखकर कुछ लज्जित-सा हो गया। मानो उसे उनकी ओर ध्यान देने का कभी अवसर ही न मिला हो। दिनेश बोला—"भैया, एक पत्र है—ब्रह्मचारी जी चले गये।"

'क्या कहा तुमने'—चौंककर किशोर बोला—"कहाँ चले गये ? क्या कारण है !"

किशोर का हृदय धड़क उठा। शुभाशुभ की कल्पनाये करके वह अत्यधिक चचल होकर बोला—"बोलते क्यों नहीं जी ? वे क्यों चले गये—क्या पुलिस.............।"

दिनेश ने बड़े यत्न से एक पत्र निकालकर किशोर के हाथ में रख दिया और कहा—"इस पत्र को पढकर नष्ट कर दो—यही ब्रह्मचारी जी का आदेश है। तुम्हारे लिए वे कुछ पुस्तके विमल भैया के यहाँ छोड़ गये हैं। इससे अधिक मैं कुछ भी नहीं जानता।"

विशेष व्यग्रता के साथ किशोर ने पत्र पढना शुरू किया। छोटे से पत्र को कई बार पढकर वह यह निश्चय नहीं कर सका कि उसके लिए उचित क्या है। दिनेश किशोर को किंकर्तव्य-विमूढ देखकर बोला—"भैया, सारा भार तुम्हारे कन्धों पर डालकर गुरुदेव चले गये। अब तुम हमें निर्देश करो कि हमारा क्या कर्तव्य है। चलते समय ब्रह्मचारी जी ने कहा था कि मैं

बराबर आता जाता रहूँगा। मेरी गति कोई रोक नहीं सकता। वे हठात् क्यों चले गये इसका पता विमल बाबू को है—उन्होंने सारी बातें विमल बाबू से कह दी थीं।"

कुछ क्षण चुप रहकर किशोर सहसा कुछ उत्तेजित-सा हो गया और बोला—"परवाह नहीं। मैं समझता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए—सत्य का प्रकाश बिना परिणाम सोचे हमें फैलाना होगा—यही गुरुदेव का अन्तिम आदेश है। अच्छा दिनेश, चलो भाई—सन्देह-रहित स्थिति में रहकर ही हम जीवन को साधना की अन्तिम सीमा के उस पार तक पहुँचा सकते हैं। सन्देह तो हमारा वह शत्रु है जो हमारी निश्चयात्मक क्रान्ति के प्रतिकूल प्रतिक्रान्ति फैला देता है—हम पहले सन्देह को जीत लें।"

दोनों बातें करते हुए गाँव की गलियों में घुसे। सामने ही किशोर का घर था—हरिहर सिंह अपने दरवाज़े पर झल्लाये-से बैठे थे। अकारण रोषपूर्ण भाव से रहना वे पसन्द करते थे, क्योंकि उन्हें भ्रम था कि दूर से दर्शक देखते ही रोब में आजाता है—दारोगा रहते समय उन्होंने यह कला सीखी थी। हाँ, यह बात दूसरी है कि गाँव में इस कला से उन्हें कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता था पर उन्हें इस बात का सन्तोष था कि सारा गाँव उनके नाम से बेंत की तरह कांपता है। प्रिय होना उन्हें पसन्द न था, वे भयङ्कर बनकर रहना अधिक पसन्द करते थे। मानव मानव के प्रति यम-रूप मे अपना प्रदर्शन करना क्यों चाहता है—यह तत्व किशोर के लिए आजतक रहस्य ही बना रहा। दूर से ही किशोर के साथ एक दूसरे नवयुवक को देखकर हरिहर सिंह बड़बड़ाये—यह भी कोई पक्का चोर है, डकैत-सा नजर आता है…… आवारों की तरह कपड़े और … हुं……।"

दरवाज़े पर पहुँचकर स्नेह भरे स्वर में किशोर बोला—"बाबूजी, यह मेरे मित्र हैं दिनेश! आपके पिता हैं मि० ए० एन० मिश्रा—डिपुटी मैजिस्ट्रेट।"

हरिहर सिंह के चेहरे की रूक्षता हठात् नरमी में बदल गई। वे मुस्कराने लगे और स्वयम् चौकी से उठते हुए बोले—"आइए, बैठिए—कहिए हम, गरीब की झोंपड़ी तक आने का कैसे कष्ट उठाया?"

भक्ति के आवेग में इतना कहकर हरिहर सिंह स्वयम् कुछ लज्जित से हो गये और किशोर की ओर देखकर बोले—"आज कल इनके पिता कहाँ हैं ?"

किशोर बोला—"दुमका—पहले तो इसी इलाके के एस० डी० ओ० थे।" हरिहर सिंह मन-ही-मन ढूँढ़ने लगे "ए० एन० मिश्रा" नाम को। अचानक उनकी स्मृति में यह नाम जाग उठा तो हँसकर कहने लगे—"याद आया! मैं तो मिश्रा साहब से मिल भी चुका हूँ—वाह, ऐसे आफिसर के दर्शन बहुत दिनों के बाद उस दिन हुए थे। किशोर, खड़े मुँह क्या ताक रहे हो—अपने मित्र के लिए आराम की व्यवस्था करो।"

दिनेश किशोर के मुँह की ओर देखकर बोला—"जी नहीं, मैं तो चला जाऊँगा। किशोर भैया से मुलाकात करने चला आया—"बहुत ही जरूरी काम है। इन्हें साथ लेता जाऊँगा। परीक्षा का समय आ गया।"

हरिहर सिंह एक प्रकार से हाथ जोड़कर बोले—"एक रात भी तो विश्राम कर लीजिए। किशोर तो आप लोगों का · · ·।"

भावावेग में या अभ्यासवश हरिहर सिंह "सेवक" या "गुलाम" कुछ इसी तरह की बात कहने जारहे थे, पर हठात् उन्हें मालूम हो गया कि वे एक भद्दी भूल करने की स्थिति में पहुँच गये हैं।

दिनेश ने रात भर ठहरना स्वीकार कर लिया। हरिहर सिंह ने विशेष उत्साह से उस डिपुटी-पुत्र का स्वागत-सत्कार करने का प्रस्ताव कमला के सामने रक्खा। कमला बोली—"क्या कहा तुमने, वह डिपुटी मैजिस्ट्रेट का लड़का है। उसके शरीर पर तो अच्छी तरह कपड़े भी नहीं हैं।"

हरिहर सिंह बोले—"कपड़ों की बात छोड़ो—आज-कल के छोकरों की यही पोशाक है। चप्पल, धोती और बिना बटन की कमीज—सर पर बालों का जङ्गल और पाकेट में एक फाउन्टेन पेन! मैं जानता हूँ, इसके पिता एस० डी० ओ० थे—इसी हमारे इलाके में। मैं उनसे कई बार मिल चुका हूँ—बड़े सज्जन, बड़े रहमदिल। क्या बात है! कमला ने 'हुँ' कहकर अपने गृह-कर्म में मन लगाया और हरिहर सिंह खड़ाऊँ चटकाते फिर दरवाज़े पर आये।"

भोजनोपरान्त किशोर ने दिनेश से कहा—"मैं गाँव छोड़ना नहीं चाहता, क्योंकि मैं देखता हूँ कि यहाँ मेरी ज़रूरत है। गाँव को ही मैं विशेष पसन्द करता हूँ, ऐसी बात नहीं है पर गुरुदेव की शिक्षाओं का भी यही रहस्य है—जहाँ फोड़ा हो वहीं आपरेशन करना चाहिए। शहर की सत्ता को ही मैं स्वीकार नहीं करता। शहर स्वयम् तो कुछ उत्पादन करता नहीं, बड़े घर की विधवा की तरह दूसरों की कमाई पर जीता है। गाँव की महत्ता के सामने शहर नहीं ठहर सकता।"

दिनेश बोला—"किन्तु भैया, गाँव वाले कुछ भी समझते बूझते नहीं—इनकी जड़ता तो चट्टान बनकर इनके कलेजे पर जम गई है। पत्थर पर तीर मारना मेरी समझ में व्यर्थ होगा।"

किशोर कराहकर बोला—"यही सोचने की बात है दिनेश! गाँव वाले हमसे निराश हो गये हैं। हमने उन्हें लगातार ठगा है—उनके हृदय में आशा और विश्वास का संचार करना होगा।"

---

(१२)

किशोर अपनी परीक्षा की ओर फिर से, नये जोश से, आकर्षित हुआ। शहर पहुँचकर उसने विद्यार्थियों में एक नयी तरह की बेचैनी का अनुभव किया जिसका उसे पता न था। वह अलग-अलग विद्यार्थियों से मिलता-जुलता रहा और उनके हृदय की नब्ज टटोलता रहा। उसे सन्तोष हुआ कि प्रत्येक के शरीर के भीतर गरम रक्त प्रवाहित हो रहा है। जीवन की धड़कन प्रत्येक के कलेजे में हो रही है। किशोर आत्म-सन्तोष की साँस लेकर परीक्षा की तैयारी मे लग गया। ऊपर से शान्त दिखलाई पड़ने वाला वातावरण भीतर ही भीतर सुलग रहा था, जिसका ज्ञान किशोर को था। वह बेला को भूला नहीं था पर उसे भूलने के लिए ही प्रत्येक क्षण अपने को दूसरे-दूसरे कामों में लिप्त रखना चाहता था। जब कभी बेला की याद उसे सताती वह भीतर ही भीतर छटपटा उठता—उसके विचारों में

भूकम्प आ जाता। वह बहुत ही प्रयत्न करके अपने मन को फिर केन्द्रित करता और नये-नये विचारों में बलपूर्वक गर्क हो जाता। परीक्षा के दिन आये और चले गये। बेला ने पढाई छोड़ दी थी—वह अपनी कोठी पर ही विविध मित्रों के साथ रहती--मि० सेन की गाड़ी पर हवाखोरी करती और क्लबों की रौनक बढाती। उसके जीवन की धारा जिस गन्दी मोरी से प्रवाहित हो रही थी उसकी ओर न तो उसके पिता का ध्यान था और न स्वय बेला का। विलायती व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का पूर्ण आस्वादन करते हुए पुत्री और पिता मानो धीरे-धीरे एक दूसरे से अपरिचित होते जारहे थे। भूले-भटके मि० चटर्जी कभी-कभी बेला के कमरे में आ जाते तो उन्हें उसकी 'आया' से पता चलता कि वह बाहर घूमने गयी है या सो रही है। 'आया' से कुछ रसभरी बातें करके चटर्जी अपने पुस्तकालय में जाकर बैठ जाते। यही क्रम जब काफ़ी अर्से तक चलता रहा तो मि० चटर्जी एक दिन दृढ़-प्रतिज्ञ होकर अपनी पुत्री के कमरे की ओर चले। 'आया' ने टका-सा जवाब दे दिया कि—"मिस बाबा सुबह से ही गायब हैं।"

बैरिस्टर साहब के चौड़े ललाट पर झुँझलाहट की रेखायें स्पष्ट हो गयीं। उन्होंने आया से पूछा—"क्या कहा तुमने ? सबेरे से बेला गायब है ! गलत बात—मैंने उसे थोड़ी देर पहले देखा है।"

आया चटर्जी साहब के इस भोलेपन पर अत्यन्त मुग्ध होकर बोली—"आप भूल रहे हैं। आपने कल मिस बाबा को देखा होगा। आज वे सुबह की चाय पीकर ही मि० सेन के साथ चली गईं।"

चटर्जी गुर्राकर बोले—"डैम मि० सेन।"

इसी समय उनका परम सुन्दर नौजवान बावर्ची 'पिटर' भी आकर खड़ा हो गया। 'आया' ने कहा—"हुजूर, पिटर से पूछ लीजिये। मैं झूठ क्यों बोलूँगी।"

पिटर घबरा गया। वह बोला—"क्या हुक्म है ?"

अपनी प्रेमिका आया से ही "क्या हुक्म है" इस प्रकार सवाल कर पीटर ने जो गलती की उसे मन ही मन समझकर पिटर लज्जित हो गया और

आया भी अपनी शर्मीली आँखे दूसरी ओर फेरकर मुस्करा उठी। मि० चटर्जी ने शान्त स्वर में कहा—'आया, तुम मेरे साथ आओ।'

अपने कमरे में पहुँचकर चटर्जी साहब ने आया से कहा—"तुम बहुत अच्छी लड़की हो। झूठ मत बोलना।"

आया सहमी हुई आँखों से चटर्जी साहब की ओर देखती हुई बोली—"नहीं हुजूर—।"

"अच्छा यह तो बतलाओ"—अपने सूखे हुए होंठ चाटते हुए वृद्ध बैरिस्टर साहब बोले—"बेला क्या प्रायः सेन के साथ घूमनी फिरती रहती है या कोठी पर भी कभी रहती है।"

आया बोली—"रहती क्यों नहीं—रात को १२ बजे के पहले कभी नहीं लौटती और मि० सेन······।"

"हाँ, हाँ, बोलो" अत्यन्त उद्विग्न होकर चटर्जी बोले—"रुको मत—बोलती जाओ।"

आया घबराई-सी बोली—"जी, कुछ नहीं, मैं इतना ही जानती हूँ। आप मिस बाबा को समझा दें तो अच्छा। मि० सेन अच्छे आदमी नहीं नज़र आते।"

चटर्जी ने घबराकर कहा—"गलत बात! मि० सेन बहुत भला आदमी है। वह राजा है, उसे किसी चीज की कमी नही है।"

आया चुप लगा गई, पर उसका हृदय घृणा से भर गया। उसने रुककर पूछा—"क्या मैं जा सकती हूँ?"

"नहीं अभी ठहरो"—चटर्जी ने कहा—"क्यों मरियम्, तुम क्या मि० सेन को पसन्द नहीं करतीं?"

आया मरियम् ने जोर से सिर हिलाकर कर कहा—"कभी नही हुजूर! वे राजा से भी बड़े महाराजा, सम्राट या स्वयम् भगवान हो पर मनुष्य नहीं हैं।'

मि०चटर्जी एकबार काँप उठे—आया ने यह क्या कहा। क्या राजा, महाराजा, सम्राट और स्वयम् भगवान से भी मानव ऊँचा है। उन्होंने

मरियम को जाने का आदेश दे दिया और खुद इस नये प्रश्न में उलझ गये। आजतक उन्होंने राजा, महाराजा का ही आदर किया था—वे यही सोचते थे कि धनी हो जाना ही काफी है। सभी गुण धन के साथ ही किसी धनी के पास उपस्थित रहते हैं, पर धन को भुलाकर ही मानव की पहचान की जा सकती है—यह तर्क मि० चटर्जी के दिमाग में उस दिन के पहले नहीं प्रवेश कर सका था। तो क्या सेन मनुष्य नहीं है, फिर वह है क्या—भूत, प्रेत, पिशाच, भेड़िया, कुत्ता या मगरमच्छ। मि० चटर्जी सोचते सोचते किसी निश्चय पर नहीं पहुँचे तो उन्होंने कानून की एक मोटी-सी पुस्तक के पृष्ठ उलटने की ओर ध्यान दिया। उनका मन जब अध्ययन में नहीं लगा तो वे विकल भाव से कमरे में टहलने लगे। इसी समय उनके कानों मे मोटर आने की आवाज आई।

बेला मि० सेन के साथ आई और तितली की तरह उछलती-कूदती अपने कमरे में घुस गई—मि० सेन भी पीछे-पीछे कमरे में घुस गये। जब तक मि० चटर्जी अपनी कन्या के कमरे के दरवाजे तक जायँ तब तक कमरे के दरवाजे भीतर से बन्द हो गये। क्रुद्ध चटर्जी कुछ देर तक तो कमरे के दरवाजे को अपनी ज्वालामयी दृष्टि से दग्ध करते रहे, फिर अपने कमरे में आकर धप्प से कुर्सी पर बैठ गये। जीवन में पहली बार उन्हें परिवार के प्रति सोचने को वाध्य होना पड़ा था।

छाया की तरह धीरे-धीरे मरियम आकर कब उनकी कुर्सी के पीछे खड़ी हो गई इसका चिन्ता-विभोर चटर्जी को पता ही न चला। साड़ी की सरसराहट से चौंककर जब चटर्जी ने लौटकर देखा तो मरियम कमरे से बाहर हो रही थी। चटर्जी ने बलपूर्वक पुकारा—"मरियम, बेला आई।" चटर्जी ने जान बूझकर यह छिपा लिया कि वे बेला का आना जानते हैं।

मरियम ने लौटकर धीरे-से उत्तर दिया—"यही खबर देने आई हूँ—सेन साहब भी हैं।"

कुछ सोचकर चटर्जी बोले—"जब सेन चला जाय तो मुझे सूचना देना—मैं बेला से दो बातें करना चाहता हूँ। जाओ।"

धीरे-धीरे दिन का अन्त हुआ। रात भी बीत चली। मि० चटर्जी बार-बार मरियम से मि० सेन के जाने का समाचार पूछते रहे, पर उन्हें एक

ही घृणित उत्तर मिलता—अभी कमरे के दरवाजे बन्द हैं, मि० सेन नहीं गये।

रात को प्रायः ग्यारह बजे मि० सेन विदा हुए। चटर्जी की झुँझलाहट क्रोध के रूप में परिणत हो चुकी थी—सन्ध्या से लेकर ग्यारह बजे रात तक मि० सेन बन्द कमरे में बैठा रहा—ऐसा तो विलायत मे भी नहीं होता। घण्टे दो घण्टे तक इस तरह रहना विलायती दृष्टिकोण से क्षम्य है, पर निस्तब्ध रात में छः छः घण्टे तक बन्द कमरे मे एक कुमारी कन्या के साथ रहना—यह तो उचित नहीं है। मि० चटर्जी ललाट का पसीना पोंछकर अपनी पुत्री के कमरे की ओर चले। उनके हृदय में अन्तर्द्वन्द्व की जो धींगा-धींगी हो रही थी उसका पता किसी को भी न था। अपनी कन्या के बन्द कमरे के दरवाजे पर पहुँचकर चटर्जी ने कुडी खटखटाई तो भीतर से भर्राये हुए स्वर मे बेला ने पूछा—"कौन है?"

प्रयत्न करके अपने स्वर को नरम बनाकर चटर्जी बोले—"मैं हूँ, बेला—दरवाजा खोलो।"

मि० चटर्जी बेला को 'बेटी' कहना चाहते थे पर आपसे आप 'बे' अक्षर के बाद 'टी' अक्षर नहीं निकल सका। 'टी' की जगह पर स्वय मेव 'ला' का उच्चारण हो गया।

बेला बोली—"नहीं, मेरी तबीअत ठीक नहीं है—इस समय मैं दरवाजा नही खोलूँगी—।"

कन्या की इस शोखी की कल्पना भी मि० चटर्जी ने नहीं की थी। उन्हें भ्रम हुआ कि बेला शायद उनकी आवाज नहीं पहचान सकी। वे विश्वास-पूर्वक बोले—"मैं हूँ बेला! खोलो दरवाजा।"

'हाँ, हाँ, तुम हो पप्पा"—बेला तेजी से बोली—"मैं तुम से ही कह रही हूँ, इस समय मुझे सोने दो—मैं दरवाजा नहीं खोल सकती। मैं ··मैं ·· सोना चाहती हूँ ·····।"

मि० चटजी ने क्रोध भरे स्वर मे कहा—"तुम्हें खोलना ही पड़ेगा—जल्दी खोलो।"

भीतर से कोई उत्तर नहीं मिला। चटर्जी दो-चार बार कुण्डी खटखटा-कर अधीर हो गये।

बेला शराब के नशे में चूर थी। उसे इतना ज्ञान था कि अपने पिता के सामने इस रूप में उपस्थित होना ठीक नहीं है। चटर्जी ऊबकर अपने कमरे में चले गये और प्रातः किस भूमिका से वे अपनी कन्या के साथ वर्ता-लाप करेंगे, यही सोचना उनके लिए प्रधान काम हो गया। बेला के स्वर से बैरिस्टर साहब को यह विश्वास सा हो गया था कि उनकी कन्या दिव्य ब्राँडी के नशे में झूम रही है—केवल यह बात तो उनके लिए परिताप का कारण नहीं हो सकती थी क्योंकि उन्हें यह नहीं मालूम होता था कि विलायत में सभी शराब पीते हैं। विलायत में जितना कुछ होता है उतना चटर्जी को सह्य था पर छः-छः घण्टे बन्द कमरे के भीतर किसी नवयुवक के साथ कुमारी का बन्द रहना विलायती दृष्टिकोण से उचित है या नहीं, इसी सोच-विचार में वे पड़ गये। सभव है, विलायत में अब यह प्रथा भी चल पड़ी हो क्योंकि तीन साल हुए बैरिस्टरी पास कर लेने के बाद फिर विलायत की हवा खाने का या वहाँ की सभ्यता का पता लगाने का उन्हें अवसर नहीं मिला था। उनके तर्क-वितर्क के मूल में यही शका थी।

---

(१३)

हरिहर सिंह ने अपने पुत्र की गतिविधि को उस दृष्टि से देखना शुरू किया जिस दृष्टि से सी० आई० डी० किसी खतरनाक व्यक्ति को देखता है। अपने पास एक 'नोट' रखना आवश्यक समझकर विशेष सतर्कता का आश्रय ग्रहण किया। किशोर के साथी कौन-कौन हैं, वे क्यों गावों में आते जाते रहते हैं, उनकी सामाजिक स्थिति क्या है—आदि-आदि बातों की जाँच पड़ताल करना उनके लिए विशेष प्रिय था। उस इलाके के दारोगा से भी हरिहर सिंह ने अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया—इस तरह दारोगा को भी किसी सगठित षड्यन्त्र की झलक मिलने लगी। यद्यपि षड्यन्त्र नाम की कोई चीज वहाँ नहीं थी।

किशोर अपने मित्रों के साथ गाँवों का दौरा करने लगा और शिक्षा-प्रचार का कार्य उसने अपने हाथों में लिया। वह पहले अपढ़ ग्रामीणों को शिक्षित बनाना चाहता था और इसी बहाने वह अपने उन विचारों को गाँवों में फैलाता था जिसकी पूर्ण शिक्षा ब्रह्मचारी जी से उसे मिली थी। वह देहातियों में साहस और आत्मनिर्भरता के भाव भरना चाहता था, जो एक मानव के लिए आवश्यक हैं। मिथ्या भय और अपने तथा दूसरो के प्रति अविश्वास की भावना के प्रतिकूल वातावरण तैयार करने के पहले किशोर के लिए यह आवश्यक था कि वह शिक्षा का प्रचार करे। वह छोटे-छोटे परचे छपवा कर गाँवों मे नियमित रूप से वितरण करता और पुस्तिकाये भी बाँटता, जिनमें सफाई, स्वास्थ्य और देश-विदेश के प्रगतिशील विचारों की चर्चा रहती। शहर में जो "प्रचार समिति" इन नवयुवकों ने कायम की थी उसमें रुपयों की कमी नहीं थी। बड़े-बड़े धनी मुक्तहस्त होकर धन देते थे और किशोर समिति का सचालन करता! वर्ष समाप्त होते न होते प्रचार का वातावरण पर्याप्त गरम हो उठा। किशोर ने अपने गाँव को देहातों मे प्रचार का उप-केन्द्र बनाया और हरिहर सिंह इस प्रचार को षड्-यन्त्र समझ कर सीधे थाने की ओर दौड़े। थाने के दारोगा ने सभी बातें सुनकर कहा—"ठीक है। आपतो स्वयम् दारोगा थे। मेरी समझ में यह कोई बुरी बात नहीं है, अगर बुरी बात भी है तो आपका पुत्र भी तो इस तथाकथित बुरी बात के अन्तर्गत ही है।"

हरिहर सिंह ताव में आकर बोले—"मैं कानून के सामने पुत्र, मित्र को नहीं पहचानता। यह देखिये 'पुलिस-मैनुअल' मे क्या लिखा है। हम पुलिस विभाग के सदस्य हैं, हमें अपने विभाग के अधिकारों को काम में लाना चाहिए।

घृणा से दारोगा ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया तो हरिहर सिंह ने फिर कहा—"आप मेरा साथ दें।"

नवयुवक दारोगा चिढ़कर बोला—"आखिर आप चाहते क्या हैं?"

"मैं चाहता हूँ कि"—हरिहर सिंह इधर-उधर देखकर धीरे से बोले—

"इन आवारा छोकरों को बड़े घर की हवा खिलवाई जाय। सरकार का नमक खाते हैं तो · ···।"

दारोगा धैर्य खो चुका था। वह बोला—"आप की बातें मेरी समझ मे नहीं आतीं। आपको मालूम होना चाहिए कि स्वयम् सरकार ऐसे किसी आन्दोलन का समर्थन किसी भी हद तक अवश्य करेगी जिससे विशुद्ध शिक्षा का प्रचार वहाँ होता हो जहाँ होना चाहिए।"

हतोत्साह होकर हरिहर सिंह बोले—"सरकार का दिमाग फिर गया है। जरा आप तो विचार कीजिए कि ये छोकरे गाँवो मे अराजकता फैलाते फिरते हैं और सरकार इनकी पीठ ठोकती है। मेरे समय में ऐसी बातों की रोक थी—मै कभी भी ऐसे ऊधमों को क्षमा नही कर सकता, भाई।"

दारोगा की झुँझलाहट सीमा पार कर गई। वह झल्लाकर बोला—"क्या आपके लड़के को उसके दूसरे भोले-भाले साथियों के साथ पकड़कर जेल भेजवा दूँ—समझ में नहीं आता आपने जिसे जन्म दिया है, पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है, हजारों रुपये खर्च करके पढाया-लिखाया है, उसकी हत्या करने के लिए क्यों इतने उतावले हो रहे हैं। क्या वह लड़का आपका लड़का नही, देवी के लिए बलि पशु है, जिसे काटकर कलिया बनाने के लिए ही पाल-पोस कर पुष्ट बनाया गया है।

हरिहर सिंह ने लज्जित होने का प्रयत्न किया, पर आदत न रहने के कारण वे लज्जित नहीं हो सके। इस बात का उन्हे जरा-सा भी दुःख नही था कि वे उचित अवसर पर लज्जित न हो सके। फिर मिलावट के स्वर में बोले—"कर्तव्य को महत्व देना चाहिए। एक दारोगा की हैसियत से, जिस पद पर १७-१८ साल मैं रह चुका हूँ, जब मै सोचता हूँ तो आपकी बातें मुझे अप्रतिगामिनी-सी लगती हैं। आपके इलाके मे ऊधम हो और आप उस ऊधम का समर्थन करें और वह भी इस आधार पर कि वे शिक्षा-प्रचार कर रहे हैं। इतने स्कूल सरकार ने खोल रक्खे हैं, फिर इन आवारा छोकरों को क्या जरूरत है कि वे अपनी हरकतों से सरकारी व्यवस्था को अपर्याप्त प्रमाणित करके जनता में असतोप की भावना पैदा करें।"

दारोगा बहुत ही ऊब उठा था—वह चुप लगा गया। हरिहर सिंह कुढ़े से उठे और घर चले आये। रास्ते में जो कोई भी मिला उससे वे यही कहते आये कि कर्तव्य के सामने वे अपने-पराये का भेद नहीं रखते। अपने कमरे में पहुँचकर उन्होंने उच्च अधिकारियों के नाम लम्बे-लम्बे पत्र लिखने की ओर ध्यान दिया। पत्र में उन्होंने दारोगा को भी जी भरकर कोसा था, उसे अप्रतिगामी, सुस्त, काहिल और उपद्रवियों का मित्र कहा था। पत्र समाप्त करके हरिहर सिंह चश्मा उतारते हुए बोले—एक-एक को सात सात साल के लिए भिजवाऊँगा—ये छोकरे सरकारी सुव्यवस्था मे व्यतिक्रम,पैदा करना चाहते हैं—मेरे रहते ऐसा हो नही सकता।"

प्रतिक्रियावादी भूतपूर्व दारोगा हरिहर सिंह ने खूब मन लगाकर तीन चार लम्बे-लम्बे पत्र लिखे और पत्रों मे यह भी उल्लेख कर दिया कि मैं पहले सरकार का एक आज्ञाकारी दारोगा था पर भाग्य ने धोखा दिया। आज भी मैं अपने आपको सरकार का एक गुलाम ही समझता हूँ। यद्यपि उपद्रवियों मे मेरा पुत्र, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है, है, पर कर्तव्य का यह तकाजा है कि उचित न्याय के अवसर पर शत्रु-मित्र का भेद न रक्खा जाय। मैंने यही किया · आदि आदि!"

पत्र लिखकर उन्होंने बड़े यत्न से उन्हें अपने बक्स में बन्द कर दिया। वे शहर जाने की राह देखने लगे, पर कई बार प्रयत्न करके भी उन्हें शहर जाने का शीघ्र अवसर नहीं मिला। इसी बीच किशोर शहर से लौटकर फिर गाँव में आ गया तो हरिहर सिंह ने उससे कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम कुछ षड्यन्त्र कर रहे हो। मेरी नजरों से कोई बात छिपी नहीं रह सकती, मेरे कान चीटी के पैरों की आवाज भी सुनते हैं।"

किशोर लापरवाही से मुस्कराकर बोला—"आप हवा पर घोड़े दौड़ाते हैं, बाबूजी। मुझे तो ऐसा लगता है कि ससार की तमाम अच्छी बातों के प्रतिकूल आपके हृदय में घृणा के भाव हैं।"

"क्या कहा तुमने"—चिल्लाकर हरिहर सिंह बोले—"मैंने १८ साल तक दारोगागिरी की है। मैं तुम जैसे छोकरों को पहचानने में भूल करूँगा!

अफसोस है कि मैं अपनी कुर्सी पर नहीं रहा नहीं तो अपने ही कलम के जोर से तुम्हें किये का फल चखा देता।"

किशोर आपे से बाहर हो गया पर विनयपूर्वक बोला—'मानवता की इज्जत कीजिए, बाबूजी ! मैं यह नहीं जानता था कि जिस पद की गौरवपूर्ण दुहाई आप बार-बार देते हैं वह पद इतना खतरनाक है कि उस पर केवल १८ साल बैठने से ही आप की मानवता मर गई।"

हरिहर सिंह अत्यधिक उग्र होकर बोले—"मैं···मैं तुम लोगों को काले-पानी भेजवा दूँगा।"

---

(१४)

धीरे-धीरे बेला की दृष्टि के सामने मि० सेन के भीतर और बाहर की समस्त कुरूपता स्पष्ट होने लगी। अपने नाममात्र गुणों को दोनों हाथों से उलींचकर सेन जब पूरी तरह रिक्त हो गये तो उन्हें भी ऐसा लगा कि वे शेर की खाल मं अपने को छिपा कर अब अधिक दिनो तक दूसरों को नहीं डरा सकते। बेला भी सेन की उपस्थिति को अपने लिए एक दुर्वह भार समझती। मि० सेन उस चंचला के लिए अब आनन्द का नहीं, उबा डालने का साधन बना रहे थे। सेन तो यह प्रयत्न करते कि वे उस विह्वलता को मिटने न दे जो बेला से निकटता प्राप्त होने के साथ ही उनमें भड़क उठी थी, पर उन्हें स्वयम् ऐसा लगता कि अब वे अतीत को लौटाने की अपनी क्षमता गँवा बैठे हैं। सेन की प्रत्येक बात से बेला के मन में झुँझलाहट पैदा होने लग गयी थी और बेला के नखरों से सेन ऊब उठने की भावना अनु-भव करने लग गये थे। एक दिन सेन ने बेला से कहा—'बेला रानी, तुमने बेल का फल खाया है!"

बेला बोली—"बहुत बार। मेरे बाग मे कई वृक्ष बेल के हैं!"

सेन ने दीर्घ निश्वास त्याग कर कहा—"पका हुआ बेल यदि डाल से

अलग न कर दिया जाय तो वह फिर कच्चा हो जाता है, हरा हो जाता है—यह तुम्हें मालूम है ?"

"है क्यों नहीं", बेला बोली, "मैने देखा है।"

सेन कहने लगे—"यही बात किसी कुमारी के लिए भी कही जा सकती है। प्रेम की चरम सीमा पर पहुँचकर यदि पुरुष अपनी चहेती कुमारी से विवाह न कर ले तो फिर कुमारी का पका हुआ प्रेम कच्चा होते-होते हरा हो जाता है।"

बेला खीज कर बोली—"विवाह ! छिः मैं विवाह से घृणा करती हूँ। विवाह कर लेने से किसी भी स्त्री का स्त्रीत्व सूखकर सोंठ हो जाता है—पराधीनता किसी भी अवस्था या रूप में सुखद नहीं मानी जा सकती। गुलामी खूबसूरत नहीं होती, मि० सेन।"

सेन हक्का-बक्का-सा होकर बेला का घृणा से भरा हुआ मुँह देखने लगे तो बेला ने फिर कहना आरम्भ किया—"जीवन भर के लिए किसी को अपने गले का हार बना लेना परले सिरे की मूर्खता नहीं तो और क्या है ? मैं मुक्त पवन की तरह रहना चाहती हूँ, न कि बोतलों में या लोहे कि नलियों में बन्द रहने वाले 'आक्सीजन' की तरह। यह कल्पना कितनी भद्दी है, यह मुझे मालूम है। तुम ऐसी बातें सोचा भी मत करो—यह पुराना जङ्गली संस्कार विवाह के सम्बन्ध मे जो सबसे नयी 'थ्योरी' यूरोप में प्रचारित हुई है, उसके विषय में तुम्हें कुछ ज्ञान है ?"

बेला के इस ज्ञानपूर्ण प्रश्न ने मि० सेन को लज्जित कर दिया। वह एक अल्प-शिक्षित आवारा धनी नवयुवक क्या जाने थ्योरियों की बात ? मि० सेन को चुप देखकर बेला ने कहा—"आवश्यकता के बिना किसी वस्तु का सग्रह करना मूर्खता है, या कोई काम करना भी मूर्खता है। विवाह की अत्यन्तावश्यकता जीवन में कभी पड़ ही नही सकती। यदि भावुकता के झोंक में आकर हम ऐसी गलती कर बैठे तो इससे बढकर दूसरी मूर्खता और हो ही क्या सकती है ?"

मि० सेन झल्लाकर बोले—"मैं स्वय ऐसी बातो से घृणा करता हूँ—

मुक्त-जीवन की तुलना मे वैवाहिक जीवन को कोई भी समझदार व्यक्ति पसन्द नहीं करेगा।"

आवेश में इतना बोलकर मि० सेन मन ही मन पछताने लगे। अब उनकी दृष्टि में बेला का महत्व इसीलिए था कि वह अपने पिता की एकलौती कन्या थी और बैरिस्टर चटर्जी कृपण होने के कारण परिपुष्ट धनी थे। वे एक विख्यात बैरिस्टर थे और उनको हजारों की मासिक आय भी। मि० सेन बिगड़ी हुई बात को बनाने का प्रयत्न करते हुए बोले—"पर बेला रानी, विवाह एक ऐसी मुहर है जो प्रेमी हृदयों को सदा के लिए एक करनेवाली सनद को स्थायित्व प्रदान कर देती है—क्या इस सुनहले सत्य से हम आँख चुराना पसन्द करेंगे?"

बेला झुँझलाकर बोली—"मै ऐसी बाते सुनना भी पसन्द नहीं करती। कमाओ, खाओ और मौज उड़ाओ का सिद्धान्त आज यूरोप मे प्रचलित है। क्या वहाँ के जीवन को या प्रेम को आप सदेह की दृष्टि से देख सकते हैं?"

यूरोप की बात पर बोलकर असभ्य या मध्यकालीन सस्कारों के गुलाम होने के कलक को मि० सेन कैसे स्वीकार कर सकते थे? वे बोले—"यूरोप भी तो वैवाहिक जीवन की सार्थकता को एकदम अस्वीकार नही करता। हम सस्कार से हिन्दू हैं।"

बेला मेज पर हाथ पटककर बोली—"हिन्दू होने से क्या होता है? मैं हिन्दुत्व के दोषों को गले लगाने से इनकार करती हूँ। मैं ईख का रस पीना पसन्द करूँगी न कि उसकी सीठी चबाना। तुम हिन्दू बने रहो, पर हिन्दुत्व के दोषों को स्वीकार करना मूर्खता होगी।"

किशोर कमरे के दरवाजे पर आकर बोला—"क्या मैं आ सकता हूँ?"

किशोर ५-६ महीने पर बेला के यहाँ आया था। बेला आनन्द के आवेग में उछल पड़ी और उल्लासातिरेक में चिल्लाकर बोली—"आप कौन? किशोर बाबू! आइए-आइए।"

पर्दा हटाकर किशोर ने कमरे मे प्रवेश किया। उसके कठोर गम्भीर चेहरे पर आत्म-तेज और सन्तोष की ज्योति झलक रही थी। मि० सेन प्रभाहीन-से

होकर किशोर की ओर विस्मय-विस्फारित आँखों से देखने लगे। बेला की आँखे आनन्द से सराबोर हो गईं।

किशोर आसन ग्रहण करता हुआ बोला—"आप का स्वास्थ्य तो अच्छा नजर नही आता?"

बेला का हृदय धक् से करके रह गया। वह बोली—"हाँ, नहीं मैं तो इधर बीमार भी नहीं पड़ी—फिर शरीर का क्या ठौर-ठिकाना है, किशोर बाबू!" इतना कहकर वेला किसी गम्भीर आशङ्का से काँप उठी।

किशोर मुस्कराकर बोला—"यह वेदान्त सुनाने की आशा मुझे नहीं थी। आप तो कभी भी निराश होने वाली नही हैं—यह मै जानता हूँ।"

मि० सेन कुढकर बोले—"मि० किशोर शायद वेदान्त से चिढ़ते हैं—मै तो ऐसा ही समझता हूँ।"

किशोर सेन को लक्ष्य करके बोला—"नही महाशय, मै स्वयम् दर्शन का एक जिज्ञासु विद्यार्थी हूँ। मै यह कहना चाहता था कि आप लोग जब निराश जैसी बाते बोलने लगेगे तो संसार के तथा-कथित आनन्द का दम घुट जायगा।"

इस तीव्र व्यग्य ने सेन को विकल कर दिया। प्रारम्भ से ही मि० सेन किशोर के प्रति अपने भीतर कटुता का अनुभव करते थे। उसके इस अव्यर्थ प्रहार ने उन्हें रौद डाला। ताव खाकर सेन बोले—"आप शायद मिस बेला को लक्ष्य करके ही ऐसी बाते बोल रहे हैं।"

'मिस' शब्द सुन कर किशोर का हृदय एक गुप्त आनन्द से भर गया। वह यह सोचकर कुछ व्यग्र-सा हो रहा था कि बेला अब 'मिस' नहीं रही, श्रीमती हो गई। किशोर अपने आनन्द को दबाकर बोला—"जी नहीं, मै बेलादेवी को इस तर्क-वितर्क में साथ करना नहीं चाहता। मै उन तथा-कथित सभ्यों के विषय मे ही अपनी राय देना चाहता हूँ जो केवल अपने लिए ही जीवित रहना चाहते हैं। मनुष्य और पशु में केवल इतना ही भेद है कि . . .।"

बेला मन ही मन डरकर बोली—"मै हाथ जोड़ती हूँ, किशोर, वाता-वरण को क्षुब्ध न होने दो।"

किशोर हँस पड़ा और कहने लगा—"मैं वातावरण की मनोरमता का कारण नहीं बन सकता, बेला देवी ! तुम खौलते हुए जल में मछली को जीवित नहीं रख सकतीं।"

बेला बोली—"मैं तुम्हें शीतल जल मानती हूँ—यह मुझे विश्वास है कि मेरे निकट तुम चाय का उबलता हुआ जल रख नहीं सकते।"

"धन्यवाद"—दाँत पीसकर मि० सेन बोले—"मि० किशोर पर आपकी अटूट श्रद्धा देखकर मैं कृतज्ञ हुआ।"

किशोर बोला—"मि० सेन आप मुझ पर इतना स्नेह रखते होंगे, यह मै नहीं जानता था। पर इस समय किसी विशेष उद्देश्य से मै आया था—स्नेह का आदान-प्रदान मेरा उद्देश्य नहीं है।"

बेला का हृदय न जाने क्यों धड़क उठा। वह घबराई-सी बोली—'विशेष······उद्देश्य ····।"

मि० सेन यों तो किशोर की झलक मिलते ही चले जाते थे, पर उस दिन अधिकार पूर्वक बैठे रहे और बोले—"क्या उद्देश्य है, क्या हम सुन सकते हैं।"

इस 'हम' शब्द मे मि० सेन ने बेला को साथ कर लिया-जो बेला को नहीं रुचा। वह मि० सेन के 'हममें' शरीक होना पसन्द नहीं करती थी—इस अपनापन ने बेला को चिढा दिया। वह बोली—"आप सुनना चाहें तो सुन सकते हैं, पर मैं अभी कुछ भी सुनना नहीं चाहती। बहुत दिनों पर आज किशोर बाबू आये हैं। अपना उद्देश्य सुनाकर ये जाने का रास्ता साफ कर लेना चाहते हैं।"

मि० सेन को यह समझने मे जरा भी विलम्ब नही लगा कि यह उनके जाने का परवाना है। कुर्सी त्याग करते हुए वे बोले—"मैं कबाब में हड्डी बनना क्यों चाहूँगा। आप लोग बातें करें और अब मै चला।"

बेला मन ही मन झुँझला उठी। वह बोली—"आप जा सकते हैं, पर "कबाव में हड्डी" बनने की बात आपके मुँह से शोभा नहीं देती। आपको मालूम होना चाहिए कि आपका यह तीव्र कटाक्ष एक ऐसे व्यक्ति को कष्ट पहुँचाता है जिसे कष्ट पहुँचाने का आपको कोई भी नैतिक अधिकार नहीं

है।" इतना कहकर बेला ने रोष भरी आँखों से सेन की ओर देखा। मर्माहत होकर मि० सेन किशोर के गम्भीर चेहरे की ओर देखने लगे तो किशोर बेला से बोला—"मैं भी हाथ जोड़ता हूँ। वातावरण को क्षुब्ध न होने दो।"

बेला मुस्कराकर दूसरी ओर देखने लगी और सेन लज्जित-से दीखने लगे।

---

(१५)

थोड़ी देर अनमने-से बैठकर मि० सेन इस तरह उठे मानों संसार से उठे जा रहे हैं तो बेला ने कहा—"क्या आप जा रहे हैं?"

मि० सेन बोले—'हाँ'

इस अत्यन्त छोटे उत्तर में अपने मन की समस्त विरक्ति भरकर मि० सेन धीरे-धीरे विदा हुए। किशोर ने मन ही मन भार से मुक्ति का अनुभव किया और बेला किशोर के निकट अपनी कुर्सी खींचकर बैठ गई। कुछ क्षण तक किशोर के चेहरे को ललचाई दृष्टि से देखकर बेला बोली—"किशोर, तुम कितना बदल गये—तुम्हारे चेहरे से एक निगूढ़ वेदना घटा के भीतर से फूटकर निकलने वाली किरणों की तरह निकल रही है। तुम्हें हो क्या गया किशोर! क्या मैं ··तुम्हारे किसी काम नही आ सकती?"

किशोर ने चौंककर कहा—"बदल गया हूँ! नही तो—हाँ, इधर काफी दौड़-धूप करता रहा।"

"दौड़-धूप"—बेला सहमकर बोली—"क्या नौकरी की खोज कर रहे हो, मै तो ऐसा नहीं समझती थी।"

किशोर हँस पड़ा। बोला -'नौकरी! यह तो मेरे फूटे भाग्य में है ही नहीं। हाँ, मैंने कुछ ऐसे झगड़े पाल रक्खे हैं जिनके चलते नींद, भूख हराम रहती है। मैं अपने भीतर बेचैनी अनुभव करता रहता हूँ। कहीं विश्राम नहीं मिलता, कहीं जी नहीं लगता। गालिब के कथनानुसार—

कोई उम्मीद बर नहीं आती,
कोई सूरत नज़र नही आती।

वेला गुनगुना कर बोली—

पहले आती थी हालेदिल पर हँसी,
अब किसी बात पर नहीं आती।

किशोर कुछ उदास-सा होकर कहने लगा—"वेला, तुमने ठीक ही कहा। अब हँसी भी नहीं आती और हँसने का प्रयत्न भी करता हूँ तो ऐसा लगता है कि इस हँसने से अच्छा होता कि मैं रो देता। हँसी मेरे भावों का प्रतिनिधित्व नहीं करती—हाँ, रोना मेरा साथ देता है, वह मेरी भावनाओं को अपने रूप में प्रतिध्वनित कर देता है। दुःख तो इस बात का है कि रोने का समय भी नहीं मिलता, रोना चाहता हूँ तो आराम से रोते भी तो नहीं बनता। अजब हाल है।"

वेला विष भरी मुस्कान के साथ बोली—"किशोर, दुनिया सिद्धान्तों के आधार पर नहीं चलती। आनन्द और मौज—यही जीवन की चरम सफलता है। तुम आत्म-पीड़क प्रकृति के मनुष्य हो।"

वेला की बातें सुनकर किशोर सहसा गम्भीर हो गया। क्या सचमुच आनन्द और मौज की जिन्दगी व्यतीत करना ही जीवन की चरम सफलता है। वह गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गया तो वेला फिर बोली—"तुम आदर्शवाद की दुहाई दोगे पर आदर्शवाद है क्या बला, यह आज तक किसी ने साफ भाषा में कुछ भी नहीं कहा। जीवन प्रतिक्षण विनाश की ओर जा रहा है। इसे रोक रखना असम्भव है। मैं नहीं समझती कि ऐसी बहती हुई धारा में गोते न मारना कहाँ की समझदारी है।"

किशोर बोला—"वेला, तुमने ठीक ही कहा, पर मै सोचता हूँ कि ।"

वेला ने एकाएक किशोर का हाथ पकड़कर कहा—"मैं ऐसी बहस में पड़ना नही चाहती, क्योंकि इसका अन्त नही है—यह शैतान की आँत है किशोर! आओ हम अपने जीवन को पूर्ण सुखी बनाने के प्रयत्न को सिद्धात-रूप में स्वीकार कर लें और वह प्रयत्न हो कमाने और मौज उडाने का।"

किशोर सिहर उठा। उसने वेला के पसीजे हुए गरम हाथ से अपना

हाथ धीरे-धीरे छुड़ाकर कहा—"बेला ! मैं सोचता हूँ कि जीवन का मुख्य उद्देश्य कमाना और मौज उड़ाना नहीं है—हमारे चारों ओर जो हाहाकार गूँज रहा है वह मुझे बेचैन कर रहा है। मैं अपने विषय में अब कुछ भी नहीं सोचता—मैं उनके विषय में ही सोचा करता हूँ, जिनके विषय में सदा सोचते रहना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है।"

बेला बोली—कुछ लोग इसीलिए संसार में जन्म ग्रहण करते हैं जिनका काम है सोचना, सोचना, केवल सोचना। हम उस वर्ग मे नही हैं, किशोर। अगर होते तो सोचने में कष्ट न होता, परेशानी न होती। मछली के फेफड़े को प्रकृति जल में साँस लेने के उपयुक्त बना देती है, मनुष्य के लिए यह सिद्धात कैसे लागू होगा।"

निरुत्तर-सा होकर किशोर चुप लगा गया। बेला की प्रत्येक बात किसी घुटे हुए निशानेबाज की गोली की तरह एक के बाद एक ठीक निशान पर बैठ रही थी।"

हारकर किशोर बोला—"तो मैं क्या करूँ ? निर्देश क्यों नहीं करतीं ?"

किशोर के मुँह से बिना शर्त के पूर्ण आत्म-समर्पण की बात सुनकर बेला के हृदय में नारीत्व का अभिमान जाग गया। वह बोली—"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरण व्रज।"

किशोर अपनी हँसी नहीं रोक सका, वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। इधर कई महीनो से उस सशय-ग्रस्त नवयुवक के मुँह से ऐसी मुक्त हँसी नहीं निकली थी। उसने अनुभव किया कि इस हँसी के साथ ही उसके भीतर का का घनीभूत ऊमस हठात् समाप्त हो गया।

जब किशोर ने जाने का उपक्रम किया तो बेला फिर किशोर का हाथ पकड़कर बोली—"नहीं, तुम्हें यह वादा करके जाना होगा कि ... ।"

किशोर घबराया-सा बाला—"बेला, यह कैसे सभव हो सकता है। मैं जिस पथ पर बहुत आगे बढ गया हूँ, उसी पथ से लौट कैसे सकता हूँ।"

बेला सहसा रुआसी-सी और उदास होकर बोली—"तो क्या मै यह समझूँ कि तुमने मुझे ठुकरा ...।"

इतना कहते-कहते बेला का गला रुलाई के आवेग से रुँध गया। वह

आँचल से मुँह छिपाकर झपटती हुई दूसरे कमरे में चली गई और औंधे मुँह खाट पर गिरी। किशोर कुछ क्षण हतबुद्धि-सा खड़ा रहा और फिर दीर्घ श्वास त्यागकर कमरे से बाहर हो गया। वह ठीक उसी तरह लौट रहा था जैसे जुआड़ी अपना सब कुछ हारकर जुआखाने से लौटता है।

संध्या हो गई थी। बसेरा लेने वाली चिड़ियों से बाग के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष सजीव से हो रहे थे। मि० चटर्जी मोटा चुरुट लिए फाटक पर ही किशोर से मिले। किशोर ने जब अभिवादन किया तो चटर्जी ने रुक्ष स्वर मे कहा—"क्यां जी तुमने पढाई छोड़ दी?"

"जी नही"—किशोर बाला—"मै वकालत पढ़ रहा हूँ।"

"वकालत! वकालत—" बड़बड़ाकर मि० चटर्जी बोले—"तुम्हारे प्रात के व्यक्ति वकालत करना नहीं जानते। तुम लोगो मे तर्क-शक्ति का अभाव होता है—समझे?'

किशोर ने अत्यन्त झल्लाकर कहा—''तर्कशक्ति का भले ही अभाव हो पर मानवता का अभाव नही है—अगर मैं यह कहूँ कि आप लोगों मे मानवता का · ।"

घबराये-से चटर्जी बोले—"नही, नही मैं दूसरी बात कह रहा था। अच्छा जी, तुम्हारा "सुगरमिल्स" तो चालू है न? मै भूल तो नही रहा हूँ।"

किशोर बोला—"मै किसी 'सुगरमिल्स' का मालिक नही हूँ।"

मि० चटर्जी इस उत्तर से उदास हो गये। किशोर का मूल्य उनकी नजरो से गिर गया।

जो व्यक्ति जमीन्दार, मिल्स ओनर, बैंकर या उच्च सरकारी व्यक्ति नहीं होता था उसे मि० चटर्जी अत्यन्त हेय दृष्टि से देखते थे। वे घृणापूर्ण स्वर मे बोले—"तुम्हारे पिता क्या काम करते हैं?"

किशोर बोला—"वे एक किसान हैं!"

"क्या कहा, किसान?"—मि० चटर्जी की घृणा चरम सीमा पर पहुँच गई थी, पर इतना ही कहकर उन्होंने दूसरी ओर नजर फेर ली।

किशोर चला गया तो चटर्जी अपने कमरे मे न जाकर सीधे बेला के कमरे की ओर मुड़े। बेला दरवाजे पर खड़ी आँसू भरे नजरों से किशोर

का जाना देख रही थी। अपनी पुत्री की ओर सदय दृष्टि से देखकर मि० चटर्जी ने कहा—"बेटी, यह छोकरा मामूली खान्दान का है। इसका बाप किसान है—हल जोतने वाला। समझी?"

बेला क्रोध में भरकर बोली—"मैंने कब कहा था कि "प्रिंस-ऑफ-वेल्स है।"

"नहीं—नहीं—तुम समझी नहीं"—चटर्जी ने कुर्सी पर एक पैर रखकर कहा—"मेरा कहने का मतलब यह है कि छोटे खान्दान वालो से सम्बन्ध रखना उचित नहीं है—विलायत मे ऐसा नही होता।"

बेला मुस्करा पड़ी। वह बोली—"पप्पा, यह देश दूसरा है—यहाँ अर्ल, लार्ड, पीयर्स नही होते। आखिर मेरे पितामह भी तो किसान ही थे—यही सौ-दो-सौ बीघे जमीन के। बस, इतना ही न?"

चटर्जी अप्रतिभ होकर कहने लगे—"तुम नहीं समझी! मै चाहूँगा कि तुम छोटे लोगो का साथ न किया करो। सेन बड़ा आदमी है और यह छोकरा ····!"

बेला सेन का नाम सुनते ही सिहर उठी। उसके सामने सेन की वह मूर्ति स्पष्ट हो गई जिससे वह घृणा करने लग गई थी। बेला को चुप देखकर मि० सेन फिर बोले—"सोसाइटी की नजरों से गिर जाना उचित नही है। ऐसे लोगों के साथ रहना अपना अपमान है, बेटी। ये गदे गरीब किसान—सुसाइटी के योग्य नहीं हैं।"

बेला बोली—"पप्पा, क्षमा करें, सच्ची बात तो यह है कि यहाँ के गरीब किसान हमारे जैसों के सम्पर्क में रहना अपना अपमान समझते हैं। ये धन को नहीं, संस्कृति को महत्व देते हैं—जिसे हम पूरी तरह गॅवा चुके।"

(१६)

शहर के अंतिम छोर पर, जिसे म्युनिसिपैलिटी का त्यक्त पुत्र कहना ही अधिक उपयुक्त होगा, एक ऐसा मकान था जिसकी दीवारें मैली, टेढी और मनहूस दिखलाई पड़ती थीं। जिस पतली, ऊबड़ खाबड़, गदी गली में वह घर था उस गली में नये और कीमती जूते पहन कर शायद ही कोई घुसने का साहस करता हो। दोनों ओर के पुराने और नमी से भरे हुए अंधकार-पूर्ण घरों की नालियाँ गली में से होकर बहती थीं और मुर्गे-मुर्गियों का झुंड उन नालियों में हर घड़ी दौड़ा करता था। न तो उस गली में प्रकाश का कोई प्रबन्ध था और न सफाई का। वहाँ के निवासी थे मजदूर, आवारे, और गाड़ी-एक्कों के साईस-कोचवान! थोड़ी दूर पर ही एक विशाल जूट मिल थी, जिसकी गगन-स्पर्शी चिमनियों का काला धुआँ उस अभागे मुहल्ले पर घटा की तरह हर घड़ी छाया रहता था—वहाँ के निवासी क्षयी, साँस और इसी तरह की गदी बीमारियों से हर घड़ी घिरे रहते थे। स्त्रियाँ और बच्चे बिना किसी समारोह के मरते थे, तथा पुरुष रात को शराब और ताड़ी पीकर घर में लौटते ही दगा, मारपीट, उपद्रव शुरू कर देते थे। उस गली का जीवन केवल रसहीन गद्य था, वहाँ पद्य का नामोनिशान भी न था। सध्या होते ही उस गली में चहल-पहल बढ़ जाती थी। नगे रोगी बच्चों के रोने-चिल्लाने से शुरू करके अपने-अपने कामों से छुटकारा पाकर जीवन से ऊबे हुए मजदूरों के लड़ने-झगड़ने आदि तक के कोलाहल से वहाँ का वातावरण क्षुब्ध हो जाता था। थोड़ी देर तक शान्ति छा जाती, जब मजदूर फिर निकट के कलवरिया में चले जाते और तब तक वह शांति रहती जब तक फिर वे लौटकर शराब के नशे में गिरते-पड़ते न आते। इन मजदूरों और गरीबों की रहन-सहन अत्यत निम्नकोटि की थी तथा इनका सारा जीवन उच्चकोटि के पूँजी-वादियों के सुख-साधन प्रस्तुत करने में ही लगा होता था। इस मुहल्ले की बेहद सस्ती और गंदी कोठरियों में रहने वाले मजदूरों का जीवन उन चूहों से तनिक भी अच्छा न था जो मोरियों में आराम से रहते हैं और नाबदान में बहने वाले अन्न के दानों को चुन-चुनकर अपना और अपने परिवार

का पेट भरा करते हैं। वे कब मरते हैं, कैसे मरते हैं इसका लेखा-जोखा कोई नहीं रखता। इसी तरह जब शहर में महामारी फैलती तो इस मुहल्ले में इतनी मौतें होतीं कि म्युनिसिपैलिटी कूड़े फेंकने वाली गाड़ियों को मुर्दे फेंकने के काम में देने की दया दिखलाने के लिए बाध्य हो जाती। कभी किसी ने इस मुहल्ले में किसी डाक्टर को जाते नहीं देखा—केवल मुर्दे निकलते ही देखने के सभी आदी हो गये थे। इतना होने पर भी यहाँ की आबादी ज्यों की त्यों बनी रहती, क्योंकि मिल के अनुभवी अधिकारी बीमार और मर जाने वाले मजदूरों की जगह पर नये-नये मजदूर भर्ती करने में जरा-सी भी सुस्ती नहीं दिखलाते और नये स्वस्थ मजदूर इसी मुहल्ले के किसी पुराने घर की अन्धकारपूर्ण कोठरी में आश्रय ग्रहण करते। मिल से नजदीक और सस्ते घरोंवाला एक यही मुहल्ला था।

वर्षा की सध्या समाप्त हो गई और घटाओं से लदी हुई अन्धकारपूर्ण रात आई। इस भयंकर मुहल्ले की पतली गली में कीचड़ और अन्धकार का साम्राज्य फल गया। धीरे-धीरे रात ने गम्भीर रूप धारण किया। शराबखाने से लौटने वाले कुली शोर मचाते हुए अपने-अपने 'दरबे' में घुस गये। स्त्रियों का रोदन क्रन्दन मारपीट के उत्तेजक उपद्रव के साथ बन्द हो गया तथा रोने-चिल्लानेवाले बच्चे भी निद्रा की गोद में सो गये। गली के इस छोर से उस छोर तक भयानक निर्जनता छा गई। दो व्यक्ति चुपचाप गली की मोड़ पर आकर रुके और इधर-उधर देखकर उस कीचड़-सागर में घुस गये। एक व्यक्ति बोला—"मार डाला—राम, राम! सभी कपड़े गंदे हो गये। छिः-छिः कैसी दुर्गन्ध है। देखकर नहीं चलते।"

किशोर बोला—"मैं कोई उल्लू हूँ जो इस घनीभूत अन्धकार में भी मुझे सूझे। मैं तो स्वयम् हैरान हूँ कि गुरुदेव यहाँ क्यों ठहर गये.। अरे विमल—देख तो, वह कौन आ रहा है।" विमल आँखें सिकोड़कर बोला—"अरे यह तो घोड़ा या गधा है। देखो भाई, कहीं शेर-बाघ न हो।" किशोर हँस पड़ा और बोला—"मूर्ख कहीं का, यहाँ शेर-सिंह कहाँ से आये। शहर के तो ये ऊँची-ऊँची इमारतों में रहने वाले ही बाघ-भेड़िया हैं। जंगल वाले बाघ · !"

ठीक इसी समय आनेवाला 'गधा या घोड़ा' अपनी आवाज़ में बोला—"कौन किशोर बाबू, आइए। मैं तो प्रतीक्षा कर रहा था। ब्रह्मचारी जी विशेष उत्सुकता······।"

विमल खिन्न होकर बोला—"जहन्नुम में जाय यह उत्सुकता। साक्षात् नरक है—नरक !"

वह अनजान व्यक्ति बोला—"नारायण को पृथ्वी-उद्धार करने के लिए वाराहरूप धारण करना पड़ा था। भैया, जरा यह तो सोचो कि इस गली में तुम्हारे ही जैसे मनुष्य रहते हैं—हे भगवान् !"

मार्ग-प्रदर्शक के साथ किशोर और विमल चुपचाप चले। उस गली में भी एक सुरंग जैसी पतली गली थी। उस गली में घुसते ही दोनों के रोंगटे खड़े हो गये। थोड़ी देर कई गलियों में चक्कर काट लेने के बाद वे एक ऐसे घर के दरवाजे पर पहुँचे जो अत्यन्त पुराना और बाहर से ढहा हुआ था— चन्द्रोदय हो गया था और चाँदनी उस डरावने खँडहर को अपने मटमैले प्रकाश के द्वारा प्रकाश मे लाने का दुःखदायी प्रयत्न कर रही थी। एक बार घर को नीचे से ऊपर तक देखकर किशोर ने विमल की ओर विमल ने अपनी जेब टटोलकर अपने भीतर साहस का संचार किया।

आनन्दस्वरूप ब्रह्मचारी इसी निरानदपूर्ण घर में ठहरे हुए थे। घर के भीतर दो साफ-सुथरे कमरे थे। एक मे ब्रह्मचारी जी का बिस्तर लगा हुआ था, दूसरा था स्नान, भोजन सध्या-वन्दन के लिए सुरक्षित। किशोर को देखते ही ब्रह्मचारी जी का चेहरा चमक उठा। वे सहज स्नेहभरे स्वर में बोले—"आगये बेटा ? विमल भी आया ?—मैं प्रतीक्षा कर रहा था।"

विमल प्रकाश मे अपने कीमती कपड़ों को अत्यत खिन्न भाव से देख रहा था। वह बोला—"गुरुदेव, सारे कपड़े गदे होगये। आप भी कहाँ ठहरे—हे भगवान !"

ब्रह्मचारी जी मुस्करा कर कहने लगे—"बेटा, तुम जानते हो कि मैंने यहाँ ठहरना क्यों पसन्द किया ? अब मैं खुली जगह में साँस लेने का अपना अधिकार खो बैठा। कपड़ों की चिन्ता मत करो—कपड़ों के दाग तो मिट जायँगे पर जीवन के दागों को छुड़ाने का प्रयत्न होना चाहिए। ससार में

इतना दुःख क्यों है—इस गली के निवासियों की ओर तो जरा दृग्पात करो—! क्या इन अभागों ने स्वेच्छा से यहाँ रहना पसन्द किया है ! सोचो तो उन्हें किसने नरक-कुंड में डुबकियाँ मारने को वाध्य किया ! इन गरीबों ने क्या अपराध किया था समाज का !"

विमल का चेहरा उत्तेजना से भर गया। वह श्रीसम्पन्न परिवार का लड़का था, उसने कल्पना भी नहीं की थी कि मानव ऐसी दुर्गति भी भोग सकता है। उसने मानो मानव समाज का यह नया रूप देखा जो हृदय में हाहाकार उत्पन्न करने वाला था। विमल बोला—"गुरुदेव, इन्हें किसने इस स्थिति में में पहुँचा दिया !"

ब्रह्मचारी आह भरकर बोले—"बेटा, इस युग का यही सब से कल्याण-कारी और महत्वपूर्ण सत्य है जिसे मैं आज तीस साल से देश-बंधुओं को बतलाता फिरता हूँ। इसी सत्य के चलते मुझे पर्दे के भीतर रहने को बाध्य होना पड़ा।··· मैं आज कृतार्थ हुआ।"

ब्रह्मचारी जी बहुत देर तक बोलते रहे। उनकी आग भड़कानेवाली बातें सुनते-सुनते विमल और किशोर क्रोध से पागल हो उठे तो ब्रह्मचारी जी ने शात स्वर मे कहा—"बेटा, क्रोध तो तुम्हारे पथ की खाई है। जो कुछ करो, शान्ति और सुव्यवस्थित रूप में—अपना कर्तव्य समझकर। पैरों मे काँटा लगा है, घबराकर पैर काट डालना उचित नहीं। सँभलकर, यत्नपूर्वक काँटे को किसी उचित रीति से निकालना होगा। मैने शान्ति की दीक्षा ली है—सन्यास-धर्म शान्ति का प्रतीक है।"

विमल बोला—"प्रभो, सस्कार ही यदि नष्ट हो गया हो तो क्या किया जाय। इन मानवो को जिन लोगो ने गला सड़ाकर मरने के लिए यहाँ छोड़ दिया है, उनका संस्कार ही नष्ट हो गया है। उन्हे सुधारा नहीं जा सकता, अतएव वे मिटा दिये जायँ—यही मैं सोचता हूँ।"

"नहीं"—ब्रह्मचारी जी ने दृढ़तापूर्वक कहा—"शेर की भयानक वृत्तियों के हम शत्रु हैं। शेर अपनी आदतों से वाज आ जाय तो वह एक सुन्दर जीव है, बन की शोभा है। मै उसका मूलोच्छेद करना नहीं चाहूँगा।"

किशोर ने कहा– "तो क्या सम्भव है कि बिना उचित · खैर, आप ठीक कह रहे हैं ?"

"बोलो-बोलो किशोर"––ब्रह्मचारी जी ने कहा—"बोलते-बोलते रुक क्यों गये भाई ?"

किशोर बोला––"देवता, आप भूत-दया के केन्द्र हैं पर मैं तो यह जानता हूँ कि यदि गले हुए विषाक्त अङ्ग को काटकर शेष स्वस्थ अङ्गों से अलग न किया जायगा तो परिणाम भयङ्कर होगा।"

ब्रह्मचारी जी कहने लगे––"बेटा, तुम्हारा उद्देश्य निर्माणमूलक होना चाहिए। इस शुभकार्य को सच्चाई के साथ सम्पन्न करो। जिस वस्तु का सुधार नही हो सकता वह तो स्वभावतः नष्ट हो जायगी। असाध्य रोग तो रोगी के प्राण ले लेगा ही फिर तुम लम्बी बीमारी से ऊबकर ऐसे रोगी का गला घोंटकर या उसे विप देकर अपने सिर हत्या का पाप क्यों लादना पसन्द करते हो, बेटा। वह रोगी तो असाध्य है और मरेगा ही—कुछ देर और प्रतीक्षा करो, वह मरने ही वाला है।"

किशोर चुप लगा गया।

दो व्यक्ति और आये जो एक तीसरे व्यक्ति को सहारा देकर लिये आ रहे थे। ब्रह्मचारी जी बोले –"किशोर, देखो ! विमल, तुम भी देखो––यह हाथी जैसा जवान मजदूर आज क्षयी का शिकार हो रहा है। मिल वालों ने इसे निकाल दिया और यह मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। किराया न देने के कारण मकान वाले ने भी अपने घर से बाहर कर दिया। यह दो दिनों से गली मे पडा था। इस तरह कितने दिनों तक इसे जीना पड़ेगा––पता नहीं, बेटा।"

सचमुच वह लम्बा-दुर्बल और पुष्ट हड्डियो वाला एक मजदूर था। पर उसकी दशा अत्यन्त हीन हो रही थी। लम्बे और झुके हुए शरीर पर गदे चीथड़े लिपटे हुए थे। कोटरवत् आँखों मे कीच भरी हुई थी। वह बड़े कष्ट से चल रहा था और रुक-रुककर खाँसता था। बड़े यत्न से कपड़े बदलवाकर उसे आराम से लेटाया गया। ब्रह्मचारी जी जब उसके निकट गये तो वह अपने थरथराते हुए हाथ जोड़कर बोला—" ··आप ··साक्षात्

देवता ··· । उन ··लोगों ने मुझे मार ही डाला था ··अब मै नहीं ·· जी सकता । प्रसूती अवस्था में·· मेरी स्त्री मरी । दो बच्चे···एक ही रात में··कॉलरा से···आह ! मैं···जीकर क्या करूँगा ? मेरी ··स्त्री मिल मे ही काम करती थी । वे सात · मास तक उस·· से कठिन काम लेते रहे···बस मर गई · प्रसव होते ही ।"

ब्रह्मचारी जी आँखों में आँसू भरकर बोले--"आराम करो—हम तुम्हारी सेवा करेंगे ।"

ब्रह्मचारी जी ने लौटकर देखा, किशोर और विमल पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े हैं। उनका चेहरा संगमर्मर की तरह सुफ़ेद नजर आता है—मानो रक्त की बूँद भी शरीर में न हो ।

× × × ×

आधी रात हो रही थी । किशोर और विमल दोनों उस गली से निकल-कर सड़क पर आ गये । उनके भावों में ऐसा जान पड़ता था मानो उन्होंने अपने भीतर किसी नये प्रकाश का अनुभव किया—वे दोनों बदल गये थे । सामने मिल की ऊँची चिमनी दिखलाई पड़ती थी। किशोर ने दाँत पीसकर उस काली चिमनी को देखा। दोनों भावों मे डूबने-उतराने से आगे बढ़ रहे थे ।

ठीक इसी समय बेला के कमरे से मि० सेन चोर की तरह निकले और दबे पैरो से मैदान पार करके जब सड़क पर पहुँचे तो किसी मजबूत पंजे ने उनकी गर्दन को कसकर पकड़ा। वे चीखना चाहते थे पर भय से चीख न सके । चटर्जी के बावर्ची 'पीटर' का यह साहस था—कपड़ों से निकलने वाले गरम मसालों की महक से सेन ने भी अनुभव किया कि पीटर ने ही उन पर धावा बोला है । घबराकर सेन बोले—'पीटर' छोड़ो, यह बुरी बात है ।"

पीटर ने शान्त स्वर में कहा—"साहब का हुक्म ही ऐसा है ।"

···इसके बाद पीटर ने मुट्ठी भर रुपये और नोट पाकेट मे रखकर मि० सेन से बेअदबी के लिए क्षमा याचना की। सेन विजयी वीर की तरह फाटक के बाहर हो गये ।"

———

(१७)

यदि उठते हुए अकुर पर भारी पत्थर रख दिया जाय तो उसका पनपना असम्भव हो जायगा। यही दशा उस मनुष्य की भावनाओं की होती है जिस पर भय उत्पन्न करने वाले घृणित कार्यो का भारी पत्थर, किसी प्रकार भी हो, रख दिया जाता है। इसमे सन्देह नहीं कि बेला एक प्रतिभावान नवयुवती थी, पर उसकी भावनाओं पर जो पत्थर जमकर बैठ गया था उसने उसे अपने भार से बुरी तरह दबा लिया। बेला जब-जब इस भार का अनुभव करती, बिकल हो उठती, उसके प्रयत्नमय कमजोर हाथ बार-बार जोर लगाते, पर वह भारी पत्थर हिलता भी नहीं, उठने की बात तो अलग रही। वह मि० सेन से छुटकारा पाना चाहती थी और छुटकारा पाना चाहती थी अपनी घृणित स्मृतियों से। उसने अपने आप से डरकर शराब का आश्रय ग्रहण किया। मि० चटर्जी, जो उसके पिता थे, अपने पेशे में और सभ्य-समाज मे ऐसे तल्लीन थे कि वे कभी भी बेला की ओर ध्यान ही नहीं देते। बेला अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग अपने वर्तमान और भविष्य को पूरी तरह नष्ट करने मे ही करती। उसके आवारागर्द मित्रों की सख्या बढती ही जाती थी तथा धीरे-धीरे सभ्य-समाज में बेला एक अप्सरा के रूप मे विख्यात हो रही थी। जिस जलसे मे वह नही जाती वह अलोना ही रह जाता। मि० सेन भूत की तरह उसके पीछे पड़ गये थे—वह जहाँ भी जाती सेन पीछे-पीछे जाते। कुछ लोगों ने तो बेला को 'मिसेज़ सेन' कहने में भी अपने को कुंठित नहीं समझा।

भोजन की तश्तरियाँ मेज पर रखकर शरारत भरी आँखों से घूरता हुआ पीटर बोला—"मिस बाबा, मि० सेन रोज पिछली रात को कोठी से जाते हैं। साहब ने उन्हें जाते देख लिया है।"

बेला के कलेजे पर मानो किसी ने घूँसे से मारा। वह मूर्छित-सी होकर बोली—"बन्द करो बकवास। यह झूठी बात है। मैं पप्पा से तुम्हारी शिकायत करूँगी।"

पीटर मुस्कराकर बोला—"मैने परसों मि० सेन को फाटक पर पकड़ा

था। आप उनसे पूछ सकती हैं। झूठ क्यों बोलूँगा।" इतना कहकर पीटर ने कनखियों से बेला के आकुल चेहरे की ओर देखा।

बेला घबराकर बोली—"नहीं ···नहीं·····तुम झूठ बोल रहे हो। ऐसा नहीं हो सकता।"

पीटर दृढ़ता पूर्वक बोला—"खैर, अब उन्हें पकड़ूँगा तो साहब के सामने ही पेश कर दूँगा। फिर आप जानें और··· मैं अपनी जवाबदेही समझता हूँ मिस बाबा!"

बेला घबराकर बोली—"तो··मैं समझती हूँ···· उफ्! यह बुरी बात है पीटर।"

पीटर बोला—"मिस बाबा, मैं क्या आपका अहित करूँगा।"

बेला ने आँखों में वेदना और आँसू भरकर पीटर की ओर देखा—वह मुस्कराता हुआ तश्तरियाँ रखकर चलता बना। दरवाजे पर पहुँचकर उसने फिर मुड़कर बेला को देखा जो पत्थर की मूर्ति बनी बैठी थी। बेला के लिए यह विष की नई घूँट थी जिसे पीने को वह बाध्य थी! घोर ज्वालापूर्ण हृदय-मथन से विकल होकर वह अभागी नवयुवती कमरे में टहलने लगी—सुस्वादु भोजन से भरी हुई तश्तरियाँ उसे अपनी ओर आकर्षित न कर सकीं। इस नरक-पथ का अन्त कहाँ होगा, यह समझना बेला की समझ के परे की बात थी। वह खटाई से अपनी रक्षा करने के लिए चूक के कुंड में कूदने को कतई तैयार न थी पर एक अज्ञात अदृश्य हाथ उसे खींचता हुआ किसी ओर लिए जा रहा-था। वह अपने को उसी तरह रोकना चाहती थी जिस तरह साँप के जबड़ों में अपनी टाँगें अड़ाकर मेढक निगले जाने से कुछ क्षण अपनी रक्षा करने का असफल प्रयत्न करता है। बेला के सामने किशोर का चित्र स्पष्ट होगया, फिर उसके सामने अनेक प्रणय-प्रार्थी सभ्य नवयुवकों की मूर्त्तियाँ झलमलाने लगीं। इसके बाद सेन का गन्दा, पीला रूप सामने आया जिसके तैलाक्त चेहरे और पीली धँसी हुई आँखों से गन्दी राक्षसता झाँक रही थी। बेला अत्यधिक विकल होकर कुर्सी पर बैठ गयी—वह पसीने से सराबोर थी। उसे अपने ऊपर झुँझलाहट आती पर जिस पथ पर चलकर वह बहुत आगे बढ चुकी थी, उस पथ से लौटना उसके लिए सम्भव न था।

वह अपने विषय में सोचना नहीं चाहती थी—उसका अतीत ऐसा न था कि उसे याद करके मन को आनन्द-पुलकों से भरा जाय। दलदल में फँसे हुए अभागे जीव की तरह ज्यों-ज्यों बेला अपने उद्धार के लिए हाथ-पाँव मारती, वह और भी धँसती जाती। किशोर से भग्न-मनोरथ होकर प्रतिक्रिया की प्रेरणा से बेला ने सेन का दामन पकड़ा और अब विराट् छिः-छिः, थूः-थूः से अपनी रक्षा करने के लिए उसे गन्दे पीटर का मुँह जोहना पड़ेगा—यह कल्पना भी बेला के लिए विषवत् थी, पर जिस नव्य सभ्यता का वह प्रतिनिधित्व कर रही थी वह उसे बार-बार आश्वासन देती थी कि—"दो दिन की जिन्दगी को मौज उड़ाकर समाप्त करो। कठोर आत्म-निग्रह के लिए मानव पृथिवी पर नहीं भेजा गया। आत्म-निग्रही व्यक्ति 'आत्म-पीड़न' रोग के रोगी हैं।" बेला कुछ उत्साह का अनुभव करती हुई कुर्सी से उठी, पर फिर दुश्चिन्ताओं ने उसे घेर लिया।

ढीठ की तरह पीटर ने कमरे में प्रवेश किया। वह दो बार और भी झाँक गया था। उसने देखा, बेला ने भोजन नहीं किया—मेज पर रक्खा हुआ भोजन ठंढा हो चुका। पीटर ने बेला को लक्ष्य करके कहा—"क्या मिस बाबा की तबियत आज खराब है! खाना ठंढा हो गया!"

बेला का ध्यान भङ्ग हुआ। वह भड़भड़ाकर कुर्सी से उठी और आँचल से मुँह छिपाकर सोने के कमरे में चली गई। उसने भीतर से दरवाजे बन्द कर लिए।

पीटर मेज पर से तश्तरियाँ हटाता हुआ बड़बड़ाया—"छोकरी बड़े-बड़े नखरे करती है।"

धीरे-धीरे दिन का अन्त हुआ और सेंट की महक फैलाते हुए मि० सेन अपनी शानदार मोटर पर आये। पीटर ने लम्बी सलाम ठोंककर मुस्कराते हुए कहा—"साहब, मिस बाबा की तबियत खराब है। किसी डाक्टर-वाक्टर को बुलवाइये। आज उन्होंने भोजन भी नहीं किया और कमरे में जाकर सो रही हैं।"

चौंककर सेन बोले—"क्या कहा तुमने! तबियत खराब है! कब से? क्या हुआ?"

पीटर इधर-उधर देखकर बोला—"हुजूर, बड़ों की सभी बाते बड़ी होती हैं। मैं एक मामूली गुलाम क्या जानूँ तबियत की बात। आप अब सब पता लगा लीजिएगा।"

मि० सेन कुछ डरे-से बेला के कमरे की ओर चले और पीटर मुँह बिचकाकर बावर्चीखाने में घुसा, जहाँ मरियम उसकी बाट जोह रही थी।

सेन ने देखा सचमुच बेला कमरे मे नहीं है—उसके सोने के कमरे के दरवाजे बन्द हैं। जरा-सा रुककर सेन ने दरवाजा खटखटाया तो भीतर से साड़ी की सरसराहट की आवाज आई। दरवाजे खोलकर बेला प्रकट हुई; उसकी आँखे सूजी हुई थीं और बाल बिखरे हुए। सेन ने स्नेहभरे स्वर मे पूछा—"तुम्हारी तबियत कैसी है, बेला?"

"ठीक है"—बेला रूखे स्वर मे बोली—"मै तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी।"

सेन विशेष शंकाकुल होकर बोले—"मेरी प्रतीक्षा··· मेरी? स्वस्थ हो लो—मै ·· मैं यहीं हूँ।"

बेला बिना कुछ बोले फिर कमरे में चली गई और सेन हारे-थके-से एक कुर्सी खीचकर बैठ गये। उनकी आँखों के सामने नाना प्रकार की चिन्ताओं का झरना-सा झरझरा पड़ा। वे हाँफने लगे और उनका हृदय अस्वाभाविक रूप से धड़कने लगा।

बेला कपड़े बदलकर थोड़ी देर मे लौट आई। बिल्कुल साधारण साड़ी उसके शरीर पर भी थी और बाल भी खुले थे। आशका-व्यग्र मि० सेन प्रयत्न करके अपने मन मे थोड़ी सी रसिकता उत्पन्न करते हुए बोले—"वाह, शायद शकुन्तला की ऐसी ही सादगी पर रीझकर कालिदास ने दुष्यन्त से कहलवाया था—"इयमधिकमनोज्ञावल्कलेनापि तन्वी।"

रूखी मुस्कराहट बेला के उदास चेहरे पर झलककर विलीन हो गई। वातावरण के दबाव को हँसी-मज़ाक की ये बाते कम न कर सकीं। थकी सी कुर्सी पर बैठकर बेला कहने योग्य बात की खोज मन की खाली झोली मे करने लगी, किन्तु बार-बार उसे विफल होना पड़ा।

सेन बोले—"मै विशेष उत्सुक हूँ—तुम क्या कहना चाहती हो? शीघ्र

कहो।" इतना कहकर सेन अपनी सारी व्यग्रता और उत्सुकता को विस्फारित आँखों में भरकर बेला की ओर एक टक देखने लगे। बेला सिर झुकाकर चुपचाप बैठी थी और अपनी सुन्दर उँगलियों से सारी के पाड़ को इधर-उधर कर रही थी।

सेन ने फिर आकुल स्वर में अपने प्रश्न को दुहराया तो बेला बोली—"मैं चाहती हूँ कि··· !"

"क्या चाहती हो, बेला रानी"—मि० सेन घबराकर बोले—"मेरे पास ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो तुम्हारे लिए अदेय हो। बोलो—।"

अभय वरदान का आश्वासन पाकर बेला तनिक भी प्रसन्न नहीं हुई। उसका खिन्न चेहरा खिन्न ही बना रहा। सेन वरदान देकर निश्चिन्त नहीं हुए। वे फिर बोले—"चुप क्यों हो गई? क्या हो गया? क्या मेरी बातों पर तुम्हें कुछ सन्देह है, रानी? विश्वास करो—मैं अपने वचन को प्राण देकर भी पूरा करूँगा।"

अनावश्यक उत्साह के झोंक में इतना कहकर सेन मन ही मन लज्जित हो गये। जीवन में पहली बार उन्होंने लज्जा का प्रत्यक्ष अनुभव किया। लज्जा, दया, क्षमा, ममता को मि० सेन मानवीय दुर्बलताओं के नाम से घृणा पूर्वक याद किया करते थे। अपने को इसी दुर्बलता का शिकार जानकर उनका छोटा-सा हृदय विशेष संकुचित हो गया।

बेला बोली—"आखिर हम इस तरह कब तक रहेंगे? मैं देखती हूँ लोग हम पर सन्देह··· ·।"

नारी-सुलभ लज्जा के कारण बेला से अधिक कुछ न कहा गया और मर्मान्तक पीड़ा के वेग से उसका गला भी रुँध गया।

चौंककर सेन ने कहा—"सन्देह ····? कौन सन्देह करेगा? पुराने दकियानूसी विचार वाले ही सन्देह करेंगे। सभ्य समाज किसी के व्यक्तिगत जीवन पर दृष्टि डालना पसन्द नहीं करता और मूर्ख दकियानूसों की परवा करना क्या उचित होगा, बेला?"

अपनी वाग्मिता पर स्वयम् पुलकित होकर सेन पूरी ऊँचाई में तनकर

कुर्सी पर बैठ गये। पीले मेढ़क जैसे उनके गन्दे चेहरे पर आत्म-तोष की ज्योति झलक उठी।

बेला सेन के उत्तर से प्रसन्न नहीं हुई। उसे ऐसा लगा कि अनाड़ी डाक्टर ने जख्म की उपेक्षा करके वहाँ पर नश्तर मारा जहाँ जख्म न था। बेला की खिन्नता चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। वह बोली—"सभ्य समाज और दकियानूसी समाज की विवेचना का अब समय नहीं रहा। मैं चाहती हूँ कि लोक-दृष्टि में अपनी स्थिति को सुदृढ़ प्रमाणित करने के लिए हम एक सूत्र मे आबद्ध हो जायँ।"

ऐसा प्रस्ताव प्रायः पुरुष की ओर से कुमारी के सामने पेश किया जाता है—यही नव्य सभ्य समाज की परिपाटी है, पर परिस्थिति की "धुनकी" के नीचे पड़कर बेला की धीरता रूई की तरह धुन गई थी। वह घबराकर अपनी बात—जो उसे नहीं प्रगट करनी चाहिए थी—कह गई और फिर पछताने भी लगी क्योंकि वह बन्दर को अपने फलों के बाग का रखवाला बनाने जा रही थी, जो उसे बिलकुल पसन्द न था। बेला का प्रस्ताव सुनकर सेन ऐसा चौंके मानों उनके भद्दे से गोल सिर पर बम का धड़ाका होगया। वे बोले—"यह तो जरा गम्भीर बात है। उस दिन तुमने विवाह का इतना सुन्दर विरोध किया था कि मुझे अपना निश्चय बदल डालना पड़ा। अब तो मैं एक बार फिर से अपनी मानसिक स्थिति पर गौर करके ही उत्तर देना पसन्द करूँगा। यह कोई लड़कों का खेल तो नहीं है बेला, जो हँसते खेलते 'हाँ' कह दूँ—जन्म भर का सौदा समझ-बूझकर ही करना उचित होता है!"

बेला दुःख भरे स्वर मे बोली—'तुमने सबसे खतरनाक मोर्चे पर मुझे लेजाकर धोखा दिया। यह तो बहुत ही बुरी बात है।"

सेन ने जान-बूझकर परिस्थिति को खराब बनानें के विचार से कुछ रुक्ष स्वर मे कहा —"बेला, तुम मेरा अविश्वास करती हो! यह तो सरासर अपमान करना है—मैंने तुम्हें धोखा दिया?"

सेन का रुख देखकर बेला का खून भी गरम हो गया, फिर भी आत्म-दमन करके वह बोली—"मैं तुम्हारा अपमान करना नहीं चाहती—मैंने तो सीधा-सा प्रश्न तुम्हारे सामने रक्खा।"

सेन ने कहा—"जिसे तुम सीधा-सा प्रश्न कह रही हो वह मेरे सारे जीवन को आच्छन्न करके उसे मिट्टी में भी मिला सकता है। मैं जान-बूझ कर मक्खी क्यो निगलना पसन्द करूँगा!"

बेला का क्षुब्ध दिमाग पागल-सा हो उठा। वह बोली—"क्या कहा तुमने!" मैं तुम्हें मक्खी निगलने को कहती हूँ। मैं मक्खी हूँ! क्या इस तरह तुम मेरे मुँह पर मेरा अपमान नहीं कर रहे हो!"

सेन ने शैतानी भरे स्वर में हँसते हुए कहा—"अपमान! सम्मान रहने से ही तो अपमान हो सकता है, बेला!"

बेला क्रोध के आवेश मे पैर पटक कर बोली—"तो क्या मैं एक जलील औरत हूँ। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि तुम एक भद्र परिवार की कुमारी के सामने बैठे हो होश की दवा करो।"

सेन हँसकर बोले "यह एक ही कही तुमने—'भद्र परिवार की कुमारी।' वाह, बेला, मैं तुम्हारी सूझ की प्रशंसा करता हूँ। ठीक बैरिस्टर की लड़की की तरह बोलीं तुम—क्या बात है!"

मि० सेन की अशिष्टता नीचता के रूप में परिणत हो चुकी थी। बेला का मूल प्रश्न जहाँ का तहाँ दब गया और बातों का प्रवाह एक गलत दिशा की ओर प्रवाहित होता हुआ वहाँ पहुँच गया जहाँ पहुँचने की कल्पना भी बेला नहीं कर सकी थी। मि० सेन ने जानबूझकर ही परिस्थिति को कटु बनाने की चालबाजी की, क्योंकि वह भी बेला के भार से अपने को मुक्त करना चाहता था।

पहले तो क्रोध के मारे बेला को रुलाई भी आ गई पर वह अपने को सँभालकर बोली—"तुम बहुत आगे बढ गये सेन! मैं ऐसी बाते सहन नहीं कर सकती। तुम मुझे निराश्रया जानकर ही ठोकर मार रहे हो। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि बिल्ली तङ्ग आकर कुत्ते का मुँह नोच लेती है।"

सेन एकाएक गरम होकर चिल्ला उठे—"क्या मैं कुत्ता हूँ! मैं तुम जैसी औरतों से घृणा करता हूँ—मै ऐसी स्त्री से कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहता, जिसने अपने आप को कौड़ियो के मोल बार-बार बेचा हो।"

बेला की आँखों के आगे अन्धकार छा गया। वह चीखकर कुर्सी पर

लुढ़क गई तो सेन बोले—"हिस्टिरिया का नाटक मैंने बहुत बार देखा है। अब मैं चला—पीटर को भेज देता हूँ, वह तुम्हें चूना और नशादर सुँघाकर होश में ले आवेगा।"

बेला ने सेन का नीचतापूर्वक वक्तव्य सुना और सुना पीटर का नाम पर वह प्रयत्न करके भी बोल न सकी। वह धीरे-धीरे विस्मृति के शीतल जल में डूबती रही और अन्त में डूब गई।

—•—

(१६)

कमला ने जब बार-बार आग्रह किया तो हरिहर सिंह शहर जाने को तैयार हो गये। किशोर प्रायः छः मास से घर नहीं आया था। वह अपने उद्देश्य से उस इलाके में दौरा करता पर अपने घर की ओर न झाँकता। किशोर की हलचलों का पता हरिहर सिंह को जब-जब लगता, वे दौड़कर थाने की ओर जाते और दारोगा को सारी कहानी सुना देते—"अब चुप लगा जाना खतरे को निकट बुलाना है। किशोर के साथ प्रायः एक सौ नौजवान हैं जो गावों में कुलियों-मजदूरों की तरह घूम रहे हैं। मूर्ख देहाती इनका बड़ा आदर करते हैं। ये छोकरे छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ बाँटते हैं—स्कूल खोलकर वे डोम, चमार के लड़कों तक को पढ़ाने से बाज नहीं आते। अरे आप देखते नहीं, पढ़ाने से चोरी-डकैतियाँ किस अनुपात में हो रही हैं!!'

दारोगा उत्तर देता—"आप पराई पीर से क्यों बेजार हैं? यह मेरा काम है—मैं सब समझ रहा हूँ। आप इस ओर से अपना ध्यान हटा लीजिए।"

झल्लाकर हरिहर सिंह कहते—"मैंने सरकार का नमक जो खाया है—मैं जानता हूँ कि आप • ••।"

दारोगा बिगड़ कर उत्तर देता—"•••तो मैं नमकहराम हूँ! आप भी अजब आदमी हैं—जाइये, अपना रास्ता नापिये।" क्रुद्ध हरिहर सिंह ने फिर उच्च अधिकारियों के पास कुछ पत्र लिखे।

कमला ने जब हठ किया तो हरिहर सिंह किशोर की खोज मे शहर की ओर चले। पहले वे उसके पुराने डेरे पर पहुँचे तो उन्हें पता चला कि अमुक मुहल्ले के अमुक नम्बर के मकान मे किशोर रहता है। वे अपनी शिकायती चिट्ठियाँ पोस्ट करके किशोर के नये डेरे की खोज में चले।

उन्होंने उस मकान को देखा—"एक विशाल बाग है जिसके बीच मे मकान क्या एक बड़ा-सा बँगला बना हुआ है। शहर के बाहर एक छोर पर यह बाग और मकान है। विशाल फाटक पर लिखा हुआ है—"आनन्द-आश्रम।"

हरिहर सिंह का हृदय धड़क उठा! उनका पुत्र सन्यासी हो गया क्या? मठ और आश्रम में गृहस्थ तो रहते नही, रहते हैं फकीर, सन्यासी। उद्विग्न-चित्त हरिहर सिंह फाटक के भीतर घुसे तो उन्होंने देखा कि विमल झाड़ू लगा रहा है। वे विमल को पहचानते थे लखपती का वह लड़का खाकी हाफ पैंट पहनकर झाड़ू लगा रहा है। अवाक्भाव से हरिहर सिंह विमल को को देखते रहे। उत्सुकता का तूफ़ान जब कुछ शान्त पड़ा तो उन्होंने उस कार्य-व्यस्त नवयुवक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। सहज प्रफुल्ल भाव से विमल बोला—"जी, किशोर भैया कल दौरे पर चले गये। शायद अभी एक सप्ताह तक न लौटें—कहिये क्या आज्ञा है? आप कहाँ ठहरे हैं?"

हरिहर सिंह बोले—"विमल बाबू, आप यह क्या कर रहे हैं? यह आश्रम क्या है—मैं हैरान हूँ!"

विमल बोला—'मै ठीक ही कर रहा हूँ बाबू साहब! आप थोड़ी देर ठहरें तो मै आश्रम की पूरी कहानी आपको सुना दूँ—यह आश्रम भूतल पर स्वर्ग है।"

हरिहर सिंह की समझ मे यह बात नहीं आई कि जहाँ मनुष्य को कुलियो और मजदूरों की तरह रात-दिन ऍड़ी का पसीना चोटी पर पहुँचाना पड़े और विमल जैसे उच्चकुल-सभूत बड़े जमीन्दार को एम० ए० पास करके भी झाड़ू लगाना पड़े तो उस स्थान को स्वर्ग कहना अधिक उपयुक्त होगा या जेल! हरिहर सिंह का हृदय नाना प्रकार के विचारों से भर गया।

अपना काम समाप्त करके विमल ने कहा—"आइए, आपको आश्रम की झाँकी करा दूँ। कृपया जूते यहीं उतार डालिए।"

हरिहर सिंह ने घूमकर देखा—सर्वत्र शान्ति है। उच्चशिक्षा-प्राप्त नवयुवक स्वाध्याय, मनन और जीवन के प्रधान लक्ष्य की उपलब्धि में लगे हुए हैं। हरिहर सिंह अवाक् से होगये तो विमल बोला—"हम यहाँ एक सौ से ऊपर 'सेवक' रहते हैं। गावों में संस्कृति और शिक्षा का प्रचार और प्रसार करना हमारे जीवन का व्रत है। हम देश की जड़ को ही अपने रक्त से सींचना चाहते हैं और सींच भी रहे हैं।"

हरिहर सिंह ललाट का पसीना पोंछकर बोले—"मैं क्या बतलाऊँ। आप जैसे श्रीसम्पन्न परिवार के लाड़ले यहाँ के कठोर जीवन को कैसे ग्रहण कर सके, यह आश्चर्य की बात है। मैं देखता हूँ····।"

विमल बोला—"देखिए, सुख और आनन्द में प्रभेद है। सुख तो बाह्य साधनों से प्राप्त किया जाता है पर आनन्द का केन्द्र है हमारा अन्तर! हम सुख को लात मारकर ही आनन्द की झलक प्राप्त कर सकते हैं—सुख तो गल-सड़कर नष्ट हो जाता है पर आनन्द आत्मा को प्रकाश से सदा के लिए भर देता है।"

हरिहर सिंह विस्मय-विमुग्ध होकर विमल की बातें सुनते रहे। वे आनंद और सुख का प्रभेद तो नहीं समझ सके पर उनके मन में एक तूफान-सा उठा जो उनकी रग रग में व्याप्त होगया। वे मन ही मन हारे थके-से बोले—"भाई, तुम लोगों ने यह कौन सा तमाशा खड़ा किया है! सुख को लात मारकर स्वेच्छा से गरीबी को अपनाना कहाँ की समझदारी है? इतना पढ़ लिखकर आप को सरकारी उच्चपद और सम्मान प्राप्त करना चाहिए, न कि झाड़ू लगाना, जूठे बर्तन माँजना, देहातों की धूल फाँकना।"

इतना कह लेने के बाद हरिहर सिंह को स्वयम् विश्वास हो गया कि वे हल्की बात कह गये। विमल कुछ बोलने ही जा रहा था कि उसने देखा, उसके प्रोफेसर साहब कूड़े की टोकरी उठाये सामने से चले आरहे हैं। उन्होंने आकर विमल के द्वारा बुहारकर एकत्र किये कूड़े को उठाया और अपनी टोकरी में रक्खा, फिर बाहर जाकर उसे निश्चित स्थान पर फेंक

दिया। विमल प्रोफेसर की ओर इशारा करके बोला—"देखिए, ये हमारे प्रोफेसर साहब हैं। आक्सफोर्ड में इन्होंने शिक्षा पाई है और डी० लिट् भी हैं पर इन्होंने हजार रुपये का मासिक वेतन त्यागकर जन-सेवा का व्रत लिया है। हमारे गुरुदेव की शिक्षा का यही प्रभाव है। आप अभी सौ साल पीछे हैं—आगे बढ़ियेगा तो हमारे उद्देश्य के प्रति आपसे आप श्रद्धालु हो जाइएगा। मानव ससार में चाँदी के तुच्छ ठीकरों के लिए नहीं आया है—!"

"हजार रुपये मासिक !"—चीख़कर हरिहर सिंह ने कहा—"यह प्रोफेसर पागल तो नहीं हैं !"

विमल हँसकर बोला—"बिना पागल बने चरम लक्ष्य की सिद्धि प्राप्त नहीं होती, बाबू साहब! बुद्ध, ईसा, मसूर सभी एक कतार में पागल ही तो थे—खैर, आप किशोर के विषय में कुछ पूछ रहे थे? वे एक सप्ताह तक नहीं लौटेंगे।, आप फिर दर्शन दीजिएगा।" इतना करकर विमल ने नमस्कार किया और हरिहर सिंह विस्मय-विस्फारित नेत्रों से विमल की ओर देखते रह गये—आखिर इन होनहार नवयुवकों को हुआ क्या है! वह ब्रह्मचारी निश्चय ही कोई जादूगर है जो उसने विद्वान प्रोफेसरों तक को नचा डाला!

खुली सड़क पर आकर हरिहर सिंह ने एक बार फिर आश्रम की विशाल इमारत की ओर लौटकर देखा। वह आश्रम उनके लिए गोरखधन्धों वाला एक तिलस्म था जिसे समझना उनके लिए कठिन हो रहा था। वे इस आश्रम को भी षड्यन्त्र का केन्द्र समझकर मन ही मन कठोर हो गये!

× × ×

ठीक जिस समय हरिहर सिंह विमल से बातें कर रहे थे उसी समय शहर से ३०।३५ मील दूर, निर्जन खेतों को पार करते हुए ब्रह्मचारी जी ने किशोर से कहा—"किशोर, तुमने कछुआ देखा है!"

दोपहरी का समय था और फागुन की धूप सोना बरसा रही थी। पके हुए गेहूँ-जौ की बालियों पर सर्वत्र निर्जनता थी, अलसित हवा डोल रही थी पतझड़े वृक्षों में। किशोर चुपचाप ब्रह्मचारी जी के पीछे-पीछे चल रहा था।

उसने उनके प्रश्न की ओर ध्यान नहीं दिया तो ब्रह्मचारी जी ने फिर अपने प्रश्न को दुहराया। किशोर चौंककर बोला—"जी हाँ, देखा है!"

"उसकी पीठ कितनी कड़ी होती है"—ब्रह्मचारी जी कहने लगे—"उसकी पीठ को ही कच्छप नहीं कहा जा सकता, वह भले ही कच्छप का एक अंश हो पर कच्छप का मूल रूप तो उस कठोर ढक्कन के नीचे छिपा होता है।"

किशोर सभक्ति बोला—"ठीक है।"

ब्रह्मचारी जी ने फिर कहा—"यह जो आश्रम वगैरह हैं, इन्हें ही तुम लोग अपने कर्तव्य का मूल रूप समझकर अपने को धोखा मत दो। आश्रम कच्छप की पीठ है जो उसकी आत्म-रक्षा के उपयोग में आती है—तुम लोगों का गम्भीर कर्तव्य तो भिन्न प्रकार का है, जिसकी उपेक्षा करके केवल आश्रम की धुन में लगे रहना मुझे नहीं रुचता, बेटा!'

किशोर सहसा गम्भीर होकर बोला—"तो क्या आश्रम तोड़ डाला जाय, गुरुदेव!"

ब्रह्मचारी जी बोले—"बेटा, मैं देख रहा हूँ कि हमारे नवयुवकों को उनके आश्रम ने मोह लिया है—वे आश्रम से रहित संसार की कल्पना करना ही पसन्द नहीं करते। यह तो बुरी बात है। आश्रम को रहने दो—कच्छप पीठ को तोड़कर अपने को जीवित नही रख सकता। आश्रम तो निमित्त मात्र है, बेटा! आश्रम को ही सब कुछ समझ लेना भारी भूल है। यदि तुम लोग आश्रम में ही उलझे रहे तो प्रधान लक्ष्य का नाश हो जायगा।"

किशोर का हृदय धक् से करके बैठ गया। उसने रात-दिन एक करके आश्रम की स्थापना की थी और उसकी शुभ कल्पना का केन्द्र आश्रम बन चुका था, पर ब्रह्मचारी जी की बातों ने उसके सुख-स्वप्न पर वज्रपात कर दिया। वह इतना बड़ा हृदय-विदारक त्याग करने में सफलता पा सकेगा?

किशोर रुआँसा-सा होकर बोला—"और यह शिक्षा-प्रचार!"

"यह भी निमित्त मात्र ही है"—दृढ़ स्वर में ब्रह्मचारी जी ने कहा—इससे आगे बढ़ना होगा। आश्रम मे झाड़ू लगाना और गाँवों में 'बाल-बोध' का प्रचार करना मानव-जीवन का लक्ष्य नहीं है। मैं कहता हूँ आगे

की सीढियों को पीछे की ओर छोड़ते हुए ही तुम ऊपर चढ़ सकोगे न कि किसी खास सीढी पर ही खड़े रहकर--तुम लोग तो चार सीढी चढ़कर ही उस सीढ़ी पर ऐसे मुग्ध हुए कि आगे बढ़ने की प्रवृत्ति से ही हाथ धो बैठे—अभी सैकड़ों सीढियाँ सामने पड़ी हैं, बेटा! तुम्हारा यह 'शान्ति आश्रम' करोड़-करोड़ मुरदों में अकेले जान नहीं फूँक सकता।"

सहसा किशोर के आगे से मानो पर्दा-सा हट गया। वह घबराकर बोला—"देव, मैं भ्रम-रहित हो गया। सचमुच हम अपने निर्मित मोह-जाल में स्वयम् फँसते जारहे हैं।"

किशोर की बात सुनकर ब्रह्मचारी जी मुस्कराये--"उनके चेहरे पर सन्तोष की बिजली-सी कौंध गई।"

———

(२०)

बेला को जब यह पता चल गया कि कुत्ता अपनी पूँछ के इशारे पर चलने को बाध्य होता जा रहा है तो उसके हृदय के किसी कोने से विद्रोह की आग भड़की। नारीत्व ने जागकर उसके अन्तःकरण को क्रोध और हाहाकार से भर दिया, पर नयी सभ्यता के संस्कारों ने उसे जङ्गली आग की तरह भड़कने से रोक रक्खा। मि० सेन उस दिन के अप्रिय काण्ड के बाद एक मास नहीं आये। बेला ने भी उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। रङ्गमच से लोप हो जाने वाले पात्रों को भूल जाने का जो अभ्यास उसे नयी सभ्यता से प्राप्त हुआ था उस अभ्यास ने ठीक मौके पर साथ दिया। एक दिन सेन अपने घृणित व्यक्तित्व का भार लादे उसके सम्मुख खड़े हो गये। वह किसी बड़े आफिसर की विदाई के भोज में गई थी। उस जैसी बहुत-सी परियाँ वहाँ अपने रङ्ग-बिरङ्गी साड़ियों की छटा विकीर्ण करती हुई प्रस्तुत थीं। बेला अपने रूप-यौवन की धाक सब पर जमाकर किसी नौजवान आई० सी० एस० की बगल में बैठी हँस रही थी कि उसकी दृष्टि सेन पर पड़ी। वही पीला सूजा हुआ तैलाक्त चेहरा, वही टेढी-मेढ़ी गन्दी दतपंक्ति, वही पीली-

पीली शरारत भरी आँखें, वही पतली गर्दन और तङ्ग झुकी हुई छाती। बेला ने एक बार घृणा से भरकर सेन को देखा पर सेन की बेशर्म आँखें बेला पर चिपकी हुई थीं। उत्सव समाप्त हो जाने के बाद जब बेला अपनी मोटर के निकट पहुँची तो सेन किसी ओर से आकर अचानक उसके सामने किसी दुष्ट देवता के अभिशाप की तरह खड़े हो गये। शुद्ध भारतीय सस्कार-सम्पन्न कोई स्त्री होती तो सेन के मुस्कराते हुए चेहरे पर वह दो-चार तमाचे जड़ देती, पर एक सभ्यताभिमानी बैरिस्टर की कन्या होने के कारण वह ऐसा असभ्य (!) व्यवहार करने से वञ्चित रही। सेन ने बहुत ही विनय से कहा--"मैं अपने इलाके पर चला गया था। बड़ी गड़बड़ी थी—खैर, फिर पीछे बाते होंगी। आप मेरी गाड़ी पर आइए।"

एक बार 'नहीं' कहकर बेला चुपचाप जाकर सेन की गाड़ी पर बैठ गई और अपने शोफर को खाली गाड़ी लेकर कोठी पर जाने का आदेश भी देती गई।

गाड़ी चलाते हुए सेन बोले—"क्या बतलाऊँ हृदयेश्वरी बेला! मनस्ताप के मारे उस दिन मैं आत्म-हत्या कर लेता पर · । मैं सचमुच पीता हूँ तो अनर्थ कर बैठता हूँ—मैंने कसम खा ली है, अब इस जीवन में शराब नहीं छुऊँगा।"

आत्म-हत्या का नाम सुनते ही बेला सिहर उठी और बोली—"क्यों, क्या हुआ था?"

मि० सेन ने अनुभव किया कि उनका विष-बुझा तीर ठीक निशाने पर बैठा। आँखों में आँसू भर कर मि० सेन बोले—"क्या बतलाऊँ रानी! याद करता हूँ तो कलेजे में हूक-सी उठने लगती है। मैं अपराधी हूँ देवी, मै क्षमा-भिक्षा के योग्य भी नहीं हूँ।"

इतना कहकर एक हाथ से मोटर की 'स्टेयरिङ्ग' सँभाले हुए दूसरे हाथ से मि० सेन बेला के जूतामंडित चरण छूने का हठ करने लगे। बेला घबराई-सी सेन के उन हाथों को जो उसके चरणों की ओर बलपूर्वक बढ़ रहे थे, पकड़कर कहने लगी—"हाँ, हाँ, यह क्या कर रहे हो, सेन!"

सेन वाष्परुद्ध कंठ से बोले--"मैं अपराधी हूँ। आत्म-हत्या करने के

पहले एक बार तुम्हें इन अभागी आँखों से देख लेना चाहता था—यह साध भी आज पूरी हो गई। अब मैं इस संसार मे रहकर क्या करूँगा मैंने तुम्हारा जी दुखाया है रानी।" इतना कहकर एक कुशल अभिनेता की तरह सेन रोने लगे।

वेला विकल स्वर मे बोली—"पागल मत बनो, सेन! मैं तुम पर नाराज तो नहीं हूँ—तुम स्वयम् ही नहीं आये तो इसमे मेरा क्या दोष है।"

"नाराजी की बात नहीं है"—सेन ने रोकर कहा—"मैंने बहुत बड़ा अन्याय किया है। उस पाप का, अपराध का प्रायश्चित्त किये बिना मुझे चैन नही। मैं अब तुम्हारी मूर्ति को हृदय में धारण करके ससार से विदा होऊँगा—आह, मै ...।"

वेला विनय-भरे स्वर में बोली—"तुम्हे मेरी कसम, ऐसी बात मुँह पर लाना भी बुरा होता है। मैं अब कुछ नहीं कहूँगी। यदि तुमने फिर आत्म-हत्या की बात कही तो मैं बेहोश होजाऊँगी—मेरा सिर चकरा रहा है।"

सेन ने तृप्ति की साँस ली। उन्हें विश्वास हो गया कि बिगड़ी हुई बात थोड़े प्रयत्न के बाद ही बन गई। अपनी उद्देश्य-सिद्धि से उत्साहित होकर सेन ने कहा—"तुम" तुम . साक्षात् देवी-स्वरूपा हो, वेला!...मैं...तुम्हारे .. जूतों के निकट खड़ा होने योग्य भी......।"

वेला भी भावावेश में बोली—"मुझे और काँटों में मत घसीटो, मैं पैरों पड़ती हूँ।"

आँसू भरी आँखों से एक बार वेला की ओर देखकर सेन ने दीर्घ निश्वास त्याग किया। गाड़ी कोठी पर पहुँच गई तो अत्यन्त आदर से हाथ का सहारा देकर वेला को उतारते हुए सेन ने कहा—"मै विदा चाहता हूँ, मेरा शरीर तुम्हारा है—मैं इसे हार गया वेला!"

वेला अपनी शर्मीली आँखों को नीचे करके बोली—"अच्छी उलटी गङ्गा बहाई तुमने।"

सेन अत्यन्त उत्साहित होकर बोले—"सचमुच आज मैं धन्य हूँ। मेरा आज का दिन चिरस्मरणीय होगा। अच्छा विदा, मैं जरा डाक्टर के यहाँ जाऊँगा।"

बात यह थी कि मि० सेन को नगर की प्रसिद्ध नर्तकी मि० रौशनजहाँ का नृत्य देखने जाना था। यह नृत्योत्सव उनके एक मित्र के बँगले पर होने वाला था। साथ ही अपनी नई चहेती मि० स्वर्णविभा के साथ भोजन करना भी उनके लिए आवश्यक था। मिस स्वर्णविभा नव्य-समाज की लाड़िली थी और अपने पिता के साथ विलायत-भ्रमण भी कर आई थी, याने तितकरेली तो थी ही नीम पर भी चढी हुई थी। सेन को विदा करके बेला अपने कमरे मे आई। उसने अपने आपको विशेष आनन्द-मग्न और प्रफुल्लित पाया, पर उसके अन्तर मे विषाद और मनस्ताप का जो काँटा रह-रहकर कसक पैदा कर देता था, उसका ज्ञान भी उसको था। हाँ, प्रयत्न करके अपने आपको वह उस कसक से दूर रखना चाहती थी।

थोड़ी देर के बाद पीटर ने कमरे में प्रवेश किया। बेला का सारा अन्तःकरण एक अज्ञात घृणा से भर गया—यह घृणा अपने प्रति थी। पीटर छिपी नजरों से बेला की ओर देखकर बोला—"मिस बाबा, सेन साहब आज यहीं खाना खायेंगे ?"

बेला बोली—"इस बेहूदे सवाल को मैं सुनना नहीं चाहती।"

पीटर बोला—"साहब ने महँगी के कारण या न जाने क्यों आँटा, चावल, घी, माँस आदि का खर्च कम कर दिया है—यदि मि० सेन यहीं खाना खायेंगे तो बाजार से सभी चीजें मँगवानी पड़ेगी—बड़े साहब खुद हिसाब जाँच करते हैं और मुझे हुक्म हुआ है कि बिना उनसे पूछे किसी भी बाहरी आदमी के लिए अधिक खाना न पकाया जाय। मैं मि० सेन के विषय में साहब से कुछ भी पूछना उचित नहीं समझता !"

बेला अपने पिता को इस हरकत पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोली—"राशनकार्ड मे से मेरा नाम भी हटा दो—मैं भी पैसे देकर अलग भोजन बनवाऊँगी। पप्पा का दिमाग फिर गया है। मैं ऐसी असभ्यता सहन नहीं कर सकती।"

"जो आज्ञा"—कहकर पीटर रुकता हुआ बेमन-सा होकर चला गया और बेला पैर पटकती हुई अपने सोने के कमरे में चली गई। रात हो चुकी थी।

सर्वत्र सन्नाटा छा गया था। थोड़ी देर के बाद किसी ने उसका दरवाजा खटखटाया। वह पीटर था जो मिस बाबा को भोजन करने के लिए मनाने-समझाने आया था। बन्द कमरे के भीतर से ही बेला ने गुर्राकर उत्तर दिया—"मैं नहीं खाती ‥ ·।"

× × × ×

बेला बहुत दिन चढ़े उठी। अलसाई हुई जब वह कमरे में आई तो उसने देखा कि पत्थर की अचलमूर्ति की तरह मि० सेन चुपचाप एक कुर्सी पर बैठे हैं। सेन को देखते ही वह लज्जा, आनन्द और उल्लास से चिल्ला उठी—"तुम ! कब आये ?"

खीस काढ़कर मि० सेन बोले—"बेला रानी, रात भर नींद नहीं आई—एक नजर देखना चाहता था तुम्हें।"

---

(२०)

आखिर ज्वालामुखी पहाड़ फूट पड़ा। शान्त ज्वालामुखी के मुहाने पर सुन्दर बँगले बनवा कर आराम की नींद लेनेवालों ने व्यग्र होकर देखा कि उनके बँगले की ईंट-ईंट हवा में उड़ रही है अणु-परमाणु बनकर—उनके सुख की लंका घास-फूस की तरह जल रही है। वे भीत हुए और कानून, कानून चिल्लाते हुए इधर-उधर नंगे पाँव, नंगे सिर दौड़ने लगे। घटना इस प्रकार है—

जिस जूट मिल की चर्चा ऊपर की गई है उसमें एक नये मैनेजर आये मि० सेन गुप्ता ! सेन गुप्ता विलायत से बड़ी-बड़ी दुर्लभ डिगरियों के साथ दूसरों को तुच्छ समझने, घृणा करने और उन पर रोब गाँठने की नव्यसभ्यता-पूर्ण रीति भी सीख आये थे। वे प्रायः कुलियों को पीट भी दिया करते थे और इन अभागे सत्तूखोरों को कान पकड़कर निकाल भी देते थे। सेनगुप्ता की अपकीर्ति फैली कुलियों में और सत्कीर्ति फैली मि० चटर्जी, मि० सेन, मि० मजूमदार, मि० दामिनी, मिस बेला जैसों की सभ्यताभिमानी

सोसाइटी में। इनकी अपकीर्ति का मुँह कुछ इतना चौड़ा था कि कीर्ति की नन्हीं-सी दुधमुँही बच्ची उसमे अनायास ही समा गई। नये मैनेजर ने आते ही बाबू शकरदयाल एडवोकेट को हटाकर अनायास मि० चटर्जी को अपना कानूनी सलाहकार बनाया और मिस बेला को दिमागी साथी। दोनों पिता पुत्री ने मिल-जुलकर सेनगुप्ता के दिमाग को सातवे आसमान पर पहुँचा दिया। सत्तूखोर अपवाद का प्रचार कुलियों से होता हुआ क्लर्को तक पहुँचा, पर मि० सेनगुप्ता अपनी महत्ता के सामने इन सारी बातों को हेय ही समझते रहे—वे सत्तूखोरो की परवा क्यो करते जब कि वे स्वयम् सभ्यता के और सस्कृति के उन्नायकों में से ही थे। वे विलायत की हवा खा चुके थे और अग्रेजी, बँगला, हिन्दी यानी तीन-तीन भाषाओं मे गालियाँ दे सकते थे। एक जमादार था जगरूप! वह एक दबग व्यक्ति था और कुलियो का मेट भी, एक ही छटा हुआ और पक्का बदमाश। एक दिन सेनगुप्ता ने जगरूप से कहा—"बाजार से मछली ले आओ।"

जगरूप सलाम करके बोला—"हुजूर मैं वैष्णव हूँ—मछली-माँस नही छू सकता।" यद्यपि ताड़ी पीने में जगरूप की विशेष ख्याति थी, पर अपने गले की कठी की लाज रखने के लिए वह माँस-मछली कभी नहीं छूता था। उसने साहब को अपनी कंठी दिखला दी। अत्यन्त गरम होकर साहब बोले—"मेरी तरफ के वैष्णव माँस खाते हैं—तू झूठा है, तुम हिन्दुस्तानी सत्तूखोरों में कर्म, धर्म नहीं होते।"

जगरूप चिढ़कर बोला—"समुद्र तट पर बसने वाले वैष्णव माँस-मछली खाते हैं हुजूर! मैं गङ्गा और यमुना के बीच मे रहता हूँ—हम कट्टर वैष्णव हैं।"

अभ्यासानुसार घृणा से मुँह बिचकाकर सेनगुप्ता ने कहा—"साला सत्तूखोर।"

जगरूप के रोम, रोम मे आग भड़क उठी, पर वह बड़ी कठिनाई से अपने को रोककर हट गया। दो दिनों के बाद एक मजदूरिन जो गर्भवती थी सीढ़ियों पर से लुढ़क गई और मरणासन्न हो गई। मैनेजर ने उसकी ओर

ध्यान नहीं दिया ! मजदूरों में असन्तोष की आग भड़की और यह आग उस समय चरम सीमा पर पहुँच गई जब मि० सेनगुप्ता ने अपने हाथों से दो मजदूरिनों को बेंत से मारा और उन्हें 'सत्त ख़ोर' कहकर मिल के हाते से भी निकाल दिया। जगरूप मैनेजर के सामने हाजिर हुआ और बोला—"हुजूर, ऐसा अन्याय कभी नहीं हुआ था।"

मैनेजर ने डाँटकर कहा—"मैं सत्त ख़ोरों की शकल भी देखना नही चाहता—तुम लोग खान्दानी कुली—मजदूर हो। तुम्हारी औरतें·· ·।"

जगरूप ने गरम होकर कहा—"आप बहुत आगे बढ रहे हैं। हुजूर ! हमने नौकरी की है तो आप भी नौकर हैं—हम अपनी प्रतिष्ठा के लिए जान भी दे सकते हैं।"

मैनेजर ने गुर्राकर कहा—"प्रतिष्ठा ! हुँ··प्रतिष्ठा की बात बोलता है ! जमींदारों के लात जूते खाते जिन्दगी बीती, आज प्रतिष्ठा की बात समझाने आया है—हटो तो सामने से ······।"

जगरूप डर गया और उसने चुपचाप हट जाने में ही कल्याण समझा। दूर से खड़े-खड़े बहुत से मजदूर जगरूप और मैनेजर का उत्सुकतावर्धक वार्तालाप सुन रहे थे—वे हँसते हुए तितर-बितर हो गये। जगरूप को अपने साथियों की हँसी गोली-सी लगी—वह भीतर ही भीतर छटपटा उठा। वह कुलियों को क्षुब्ध नेत्रों से देखता हुआ बड़बड़ाया—"साले अपाहिजो, तुम मर ही क्यों नहीं गये।"

जगरूप के अभिशाप से कोई मरा या नहीं यह तो विधाता जाने, पर लज्जा, क्रोध और मनस्ताप से जगरूप स्वयम् अधमरा होकर जब डेरे पर पहुँचा तो उसे किशोर मिल गया। मजदूरों के आवारा लड़कों के लिए जो दो स्कूल खोले गये थे उन स्कूलों का भार किशोर पर ही था। जगरूप अत्यन्त खिन्न स्वर में बोला—"भैया, आप ध्यान नहीं देने और यह मिल हमारी हड्डी-पसलियों को चूर करती जा रही है। अपमान की तो सीमा ही नहीं है।"

किशोर मन-ही-मन प्रसन्न होकर बोला—"क्या अपमान से तुम्हें भी कष्ट होता है ?"

जगरूप क्रोध से पागल होकर चीख़ उठा—"आप लोग भी तो उसी वर्ग के हैं जिस वर्ग के ये मिल वाले हैं। क्या हम मनुष्य नहीं हैं?"

'हाँ, तुम मनुष्य हो'—किशोर शान्त स्वर में कहने लगा—"पर मनुष्य होने से ही कोई मानवोचित अधिकारों का अधिकारी नहीं कहा जा सकता। मनुष्य से बड़ा दिमाग हाथी का होता है, पर उसमे बुद्धि नाम की चीज किस अनुपात में होती है, यह तुम भी जानते होगे। अपमान से दुःख होता है, पर अपने बल की ओर भी तो ध्यान देना होगा। जिस वस्तु की हम रक्षा नही कर सकते, उसे अपने पास रखने का आग्रह भी नहीं करना चाहिए। तुम मान की रक्षा जब नहीं कर सकते तो फिर 'मान' का त्याग करो।"

जगरूप हक्का-बक्का-सा किशोर की ओर देखने लगा। एक दूसरा मजदूर, जो खड़ा था, बोला—"हम केवल मरना ही जानते हैं, भूख से मरें या रोग से, मिल में कटकर करे या मिलवालों की गोलियों से, एक ही बात है। मरना जब निश्चित है तो इन कई प्रकार की जघन्य मृत्युओं मे से एक को चुन लेना होगा, जो सब से अच्छी हो।"

किशोर ने कहा—"मरना ही ससार मे सबसे श्रेष्ठ कला है। यदि तुमने यह सोच लिया है कि हमें येनकेनप्रकारेण मरना ही है तो बस समझो कि तुम्हारी ओर गरम आँखों से देखने की हिम्मत सूर्य को भी नहीं हो सकती, जो ज्वाला का एक पिण्ड है।"

जगरूप बोला—"अन्याय और अत्याचारों का अन्त नहीं है। हम ऊब उठे हैं। मन में झुंझलाहट पैदा हो गई है, पर हमारी शक्ति सीमित है और हमारे प्रतिद्वन्द्वी बलवान हैं।"

किशोर ने सोचकर उत्तर दिया—"सुनो, अन्यायी को बलवान स्वीकार करना भूल है। उसमे अन्याय करने की जो प्रवृत्ति है, वही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। जिसमें किसी प्रकार की भी कमजोरी है वह जीवन-संघर्ष मे टिक नहीं सकता। तुम एक लाठी को ही ले ले—लड़ाई मे वह वहीं से टूटेगी जहाँ से कमजोर होगी और लाठी टूटी नहीं कि वह इंधन के ही उपयोग मे आने लायक रह जायगी। उसका प्रधान गुण "लाठीत्व" समाप्त हो जायगा, वह बाँस का एक टुकड़ा मात्र रह जायगी।"

जगरूप तृप्त होकर बोला—"तो हम क्या करें ?"

किशोर बोला—"जब तक मनुष्य अपनी स्थिति से ऊबता नहीं, उससे अपने को अलग नहीं कर सकता या उस स्थिति का खात्मा नहीं कर सकता। यह तो अपाहिजों का लक्षण है कि बैठकर बुरे दिन समाप्त हो जाने की राह देखी जाय। बलवान व्यक्ति अपने योग्य परिस्थिति पैदा करते हैं और प्रतिकूल परिस्थिति को रौंदकर समाप्त कर देते हैं। बलवान तटस्थ नहीं रह सकता, वह पक्ष ग्रहण करता है।"

जगरूप चिन्ता के सागर में पड़कर आत्म-विभोर-सा हो गया। किशोर जब चला गया तो वह अपने साथी कुली से बोला—"भैया, हम गरीबों और आवारों से क्या हो सकता है। ये बातें तो बड़ी-बड़ी बोलते हैं, पर देखते नहीं हो, दामी-दामी कपड़े पहनकर घूमते हैं और हम इनसे अपनी तुलना करके लज्जित होते हैं। ये हमारे अपने साथी कैसे हो सकते हैं जब कि हमारे और इनके बीच में सामाजिक और आर्थिक खाई अपनी पूरी गहराई और चौड़ाई के साथ वर्तमान है ?"

जगरूप का साथी बोला—"किसी व्यक्ति को क्यों देखते हो, कपड़ों को तो व्यक्ति नहीं कहा जाता भाई! उसकी बातों से लाभ उठाओ, वह स्वयम् कैसा भी क्यों न हो, पर जो कुछ कह रहा है वह सही या गलत है, यही हमें सोचना है। ब्रह्मचारी जी हमें लगातार यही शिक्षा दे रहे हैं।"

दीर्घ निश्वास त्यागकर जगरूप अपने गन्दे घर की ओर चला गया।

किशोर का दिमाग इस नयी समस्या से उथल-पुथल में पड़ गया। एक ओर हजारों कुली मजदूर, दूसरी ओर दो-चार मिल-मालिक! इतनी बड़ी जन-शक्ति को नाकोदम कर देने के लिए क्या दो-चार व्यक्ति ही पर्याप्त हैं ? इन मजदूरों ने ही मिल खड़ी की, फिर भी इनका ही नित्य बलिप्रदान क्यों किया जाता है और किया भी जाता है तो ये क्यों सहन करते हैं ? इत्यादि प्रश्नों ने किशोर के दिमाग को मथ डाला। वह घबराया-सा स्वामी जी के निकट गया, पर वहाँ उसने देखा, मजदूरों के मुखिया एक भारी संख्या में पड़े हैं और बातें हो रही हैं। ब्रह्मचारी जी कह रहे हैं—"अन्याय सहन करने वालों को भी गोली मार देनी चाहिए, क्योंकि उसी की गदाई नीति

के चलते अन्याय को प्रश्रय मिलता है और निरपराध चक्की मे पिसे जाते हैं। अत्याचार करने वालों से भयानक अपराधी तो वे हैं जो अत्याचार सहन करके अत्याचारी की हिम्मत बढाते हैं, पर मै कहूँगा कि उचित से कम नहीं और उचित से अधिक नहीं—' अपनी एक सीमा बना लो।"

किशोर ने पहली बार ब्रह्मचारी जी को रोषपूर्ण भाषा काम मे लाते देखा—वह सन्नाटे मे आगया।

---

(२२)

हरिहर सिंह जब अपने घर लौटे तो उन्हे पता चला कि वे कुछ खो चुके हैं। जाड़ा ज्वर जब हठात् उतर जाता है तो रोगी को कुछ सूना-सूना-सा लगता है, उसे ऐसा अनुभव होने लगता है कि उसके शरीर पर कुछ भार था, जो अब नहीं रहा। शहर से लौटने पर हरिहर सिंह को ऐसा ही लगा। वे आश्रम की बात सोच रहे थे और अपने को यह समझाना चाहते थे कि वह चोरों और डकैतों का गुप्त अड्डा है। वहाँ नाना प्रकार के गैरकानूनी काम किये जाते हैं, जैसे खून, जुआ, पाकटमारी, भारी निर्यातन आदि-आदि। वे इन बातों पर विश्वास करने का प्रयत्न करते, पर बार-बार उनका मन फिसलकर नीचे लुढ़क पड़ता। वे अपनी इस धारणा पर स्वयम् ही झुँझला उठे कि वह 'आनन्दाश्रम' सच्चे सेवकों का पवित्र आश्रम है। किसी भी अच्छाई को भले आदमी की तरह स्वीकार करने की आदत न रहने के कारण हरिहर सिंह को यह बहुत ही बुरा मालूम होने लगा कि 'आनन्दाश्रम' ठेलते-ढकेलते रहने पर भी उनके मन मे घुसता ही चला जा रहा है। अपने आप से लड़ते-झगड़ते जब हरिहर सिंह घर लौट आये तो कमला ने पूछा—"किशोर से मुलाकात हुई?"

हरिहर सिंह ने चेष्टा करके अपने आपको गरम किया और कहा—"वह आवारा हो गया।"

विस्मय-विस्फारित आँखों से पति के खिन्न चेहरे की ओर देखकर कमला

ने कहा—"क्या कहा तुमने ! इतना पढ-लिखकर किशोर आवारा होगया—यह कैसी बात है !?"

अपने दीर्घ-श्वास को छाती मे ही दबाकर हरिहर सिंह बोले—"पगली तो नहीं हो गई, मै कोई झूठ बोलूँगा। मैने बहुत से बी० ए०, एम० ए० और प्रोफेसरो तक को इस बार आवारों की तरह जीवन-यापन करते देखा है—वहाँ आवारो की एक बस्ती है।"

इतना बोलते ही हरिहर सिंह की आँखों के सामने आश्रम का भव्य चित्र झिलमिला उठा। वे एक बार अपने सिर को झटका देकर अपने आपको स्वस्थ करने लगे, पर वैसा कर न सके।

'आवारो की बस्ती'—अत्यधिक विस्मयाकुल होकर कमला बोली—"एम० ए०, बी० ए० पास करके लड़के आवारो की बस्ती मे क्यों रह जाते हैं, उन्हें तो दारोगा, लाट होना चाहिए।"

हरिहर सिंह ने कहा—"यही तो विचित्रता है। मैंने अपनी आँखो से देखा है—एक बहुत बड़ा बॅगला है, जिसमे एक से एक विद्वान रहते हैं। वे झाड़ू लगाते हैं, वर्तन माँजते हैं और अपने को 'सेवक' कहते हैं—बड़े-बड़े जमीन्दार और धनियों के लड़के हैं। हजार रुपये मासिक वेतन पानेवाले कालेज के प्रोफेसर कुली-मजदूरों की तरह दिन-रात काम करते हैं। मैने देखा है कमला! अपनी इन्हीं आँखों से देखा है—यह आठवाँ आश्चर्य है। मै दारोगा था और सारी दुनिया घूमकर मैंने देखी है, पर ऐसी विचित्रता आज तक देखने मे नहीं आई।"

इतना बोलते-बोलते हरिहर सिंह का गला उनके अनजानते भर आया। उन्होंने खाँसकर गला साफ किया और फिर कहना शुरू किया—"कमला, इन होनहार नवयुवकों को क्या हो गया है ! किशोर—तुम्हारा किशोर उसी आश्रम मे रहता है। अपनी पवित्र सेवाओ के चलते वह आज आश्रम का हृदय बना हुआ है।"

कमला ने आँखो में आँसू भरकर और दोनो हाथ जोडकर कहा—'भगवन्, मेरे लाल की रक्षा करो, उसे जीवन मे पूरी सफलता प्रदान करो—वह कही भी रहे, कुछ भी करे।"

आपसे आप हरिहर सिंह का हृदय उमड़ आया। मन ही मन उन्होंने भी ईश्वर से यही विनय की। कमला ने आँचल से आँखों को पोछकर कहा—"एक बार उस पवित्र आश्रम को देखना चाहती हूँ। चलो न—एक बार वहाँ की धूलि हृदय मे लगाकर • • •।"

हरिहर सिंह सोच्छ्वास बोले—"मैं भी यही कहना चाहता था। किन्तु एक बात मै कहूँगा—वह आश्रम पक्के छँटे हुए आवारों का उपनिवेश है। मैं ऐसे खतरनाक व्यक्तियों को पसन्द नही करता, पर यह बहुत ही आश्चर्य की बात हे कि किस जादू के जोर से इतने बड़े आदमियों ने ऐसा कठोर व्रत लिया। सुना है, कोई ब्रह्मचारी जी हैं जो इनके गुरु हैं। ब्रह्मचारी जादूगर जान पड़ता है, उसने सबकी बुद्धि को मोह लिया है।"

कमला अपने पति की इस निन्द्य बुद्धि से खीझकर बोली—"तुम ससार मे केवल दोष ही देखते हो और इस तरह जीवन भर अपने को दोषो के बीच मे ही रक्खोगे। जो जैसा चिन्तन करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। सदा बुराई का चिन्तन करनेवाला बुराई प्राप्त करने का ही अधिकारी रह जाता है। फूल मे काँटे भी होते हैं, हमे काँटों के झंझट मे पड़ना नहीं चाहिए। तुम रात-दिन काँटों का ही रोना रोया करते हो, अतएव तुम्हारे हाथ-पाँव मे काँटे चुभा करते हैं।"

हरिहर सिंह बोले—"क्या कहा तुमने ? मै दोष देखा करता हूँ—ऐसा अपवाद ! मै जानता हूँ कि एसे आश्रमो की ओट मे बैठकर आवारे क्या किया करते हैं। दो हजार मासिक आय की आशा से ही एक हजार की नौकरी छोड़ी जा सकती है—मैंने देखा, वहाँ एक प्रोफेसर भी है जो कूड़े फेंका करता हे। वह एक हजार प्रतिमास सरकार से लेता था, पर आज दुनिया की दृष्टि में एक कुली बना हुआ है। भीतरी बातों को मै या मेरे जैसे व्यक्ति ही जान सकते हैं, जिन्होने १८ साल तक दारोगा की वर्दी पहन कर चारों ओर बदमाशो • • •।"

दोनो कानों पर हाथ रखकर कमला बोली—"बस करो, पैरों पड़ती हूँ—उफ्, तुम इतना नीचे उतर पड़ोगे, यह मुझे आशा नहीं थी।"

क्रोध के आवेग को न रोक सकने के कारण चिल्लाकर हरिहर सिंह

बोले—क्या क्या मै पतित हो गया हूँ ? चलो तुम्हें उसी आश्रम के दरवाजे पर छोड़ आऊँ। मैं वहाँ के डकैतों को जेल भेजवाने की व्यवस्था कर चुका हूँ—मैने जिसका नमक १८ साल तक आराम से बैठकर खाया है, उसका अहित · समझ लो···मैं ।"

कमला अचानक पूरी ऊँचाई मे तन कर खड़ी हो गई और बोली—"मै तैयार हूँ, चलो। मेरा किशोर आश्रम मे रहकर 'सेवा' का पुनीत व्रत धारण कर चुका है। मै यहाँ रहकर क्या करूँगी ? मै जानती हूँ कि मेरा बच्चा तुम्हारे चलते भरी जवानी मे आश्रमवासी हुआ । तुम सोने-सी गृहस्थी को अपनी दारोगा-बुद्धि के चलते एक दिन खाक मे मिलाकर ही दम लोगे। मैने बहुत सहा—अब मुझे वहीं पहुँचा दो ···।"

आवेग मे आकर कमला इतना बोल गई और फिर रोती हुई घर के भीतर चली गई। हरिहर सिंह खड़े-खड़े क्रोध के आवेग मे बेंत की तरह काँपने लगे—साहबी का अभिशाप उनकी आँखो के सामने एक बार झलक कर लुप्त हो गया। क्या वे अपने ही हाथो अपना विनाश कर डालेंगे ! कमला ने क्या कहा ? भय से हरिहर सिंह का हृदय पत्ते की तरह काँप उठा।"

दिन का अन्त हो चुका था और सध्या गोधूलि के रूप मे परिणत हो गई थी। खेतों के उस पार से रात धीरे धीरे गाँव की ओर बढती चली आ रही थी और उस रात के साथ ही साथ किशोर भी अपने गाँव की ओर बढ़ता चला आ रहा था। वह अकेला था, और ब्रह्मचारी जी के आदेशानुसार माता के चरण स्पर्श करने आया था, क्योंकि अब उसे जीवन के सबसे खतरनाक मोर्चे का भार लेना था —वह प्रसन्न था, आनन्द-विभोर था।

—•—

(२३)

मजदूरों के प्रति मिल के अधिकारी धीरे-धीरे कठोर होते गये और उनकी कठोरता यहाँ तक बढी कि मिल के असंगठित मजदूर आत्मरक्षा की भावना से विकल होकर एक दूसरे के साथ हो गये। मिल मालिको के कानो

में जब यह बात पहुँची तो उन्होने इसे एक क्रान्ति का रूप दे देना उचित समझा। गरीब कुलियों की इस आत्म-रक्षात्मक भावना को किसी भयङ्कर सज्ञा से विभूषित किये बिना अवसरवादी मिलमालिकों के लिए यह असम्भव था कि वे दमनकारिणी नीत का आश्रय ग्रहण करते। मामूली-सी बात को विप्लव, क्रान्ति और न जाने इसी तरह के कितने भयानक नाम देकर उन्होंने अपने मजदूरो के मूक असन्तोष को महत्व दे दिया। एक बात जो सबसे बुरी थी, वह थी मजदूरों की शान्ति। इस शान्ति की दीवार को तोड़ना मिल-मालिको के लिए इसलिए आवश्यक था कि उन्हे अन्धाधुन्ध बल-प्रयोग के द्वारा बदला लेने का अवसर मिले। मजदूरो को भड़काने के लिए विविध उपाय सोचे जाने लगे। मूक, शान्त और भीतर-ही-भीतर उग्ररूप धारण करने वाले उस असन्तोष को, जो मजदूरों में फैल रहा था, मिलमालिक डरी हुई दृष्टि से देखते थे, क्योंकि इस असन्तोष को वे दबा नही सकते थे। मिलमालिकों में एक थे सुखमनदास—त्रिभुवन लाल! सुखमनदास पढे-लिखे लखपती थे और सभ्य समाज में इनका अत्यन्त सम्मान था, क्योंकि शहर की नामी-नामी तर्तकियाँ इनके बँगले पर आया-जाया करती थी और इनके धनी मित्र नृत्य-सङ्गीत का सुधापान प्रायः किया करते थे। अपनी चचल बुद्धि के कारण मि० सुखननदास अधिकारियों में भी समादृत थे। आप कई कन्या-पाठशालाओं और जनाना अस्पतालो के सेक्रेटरी भी थे। इन ललचा देनेवाले कारणों के चलते मि० सुखमनदास की सर्वत्र धाक थी। मि० सेन-गुप्ता आपके विशेष कृपापात्रो मे थे। एक दिन उन्होंने मि० सेनगुप्ता से कहा—"मै समझता हूँ, अब अवसर आ गया है कि मजदूरों के हौसले को ठिकाने लगाया जाय। उन्हें जब तक भड़काया न जायगा, कानून की फाँसी उनके गले को कैसे घोंट सकेगी। वे चुप्प हैं और मैं देखता हूँ कि उनका रुख भयानक होता जा रहा है।"

सेनगुप्ता ने सोचकर उत्तर दिया—"आपने ठीक ही सोचा है। वे जब तक भड़ककर गलत स्थिति मे अपने को नही पहुँचा देते, हमारा प्रत्येक प्रहार व्यर्थ जायगा।"

गम्भीर मुद्रा बनाकर सेन गुप्ता बोले—"आप ठीक ही सोचते हैं, पर

कुलियों का गठन बहुत ही दृढ़ होता जारहा है। वे कुछ बोलते नहीं, ऊपर से पूर्ण शान्ति झलकती है, पर यह शान्ति विकार से रहित नहीं कही जा सकती। भीतर जो ज्वालामुखी पहाड़ी उमड़-घुमड़ रही है वह भयानक है। कुलियों मे शिक्षा-प्रचार का कार्य कुछ नवयुवक कर रहे हैं जिनमे एक किशोर नाम का बहुत ही दृढ व्यक्ति है।"

"किशोर !"—सुखमनदास इस तरह बोले मानो वे अपनी स्मृति मे इस नाम को खोज रहे हो—"यह नाम तो कुछ परिचित-सा जान पड़ता है। इसने गाँवो मे शिक्षा-प्रसार का जो काम किया है, उसकी प्रशसा अखबारों मे प्रायः पढ़ता हूँ। आश्चर्य तो यह है कि सरकार तक ने भी उसके प्रयत्न में हाथ बँटाया है। यहाँ के उच्चाधिकारी भी किशोर का और उसके कार्यों का आदर करते हैं।"

सेनगुप्ता कहने लगे—"यही किशोर है। इसे किसी तरह अपनी ओर किया जाय तो सारा झंझट समाप्त हो जाय, पर इसका चरित्र इतना कठोर और दृढ है कि मै तो प्रायः निराश-सा होगया हूँ। इस प्रान्त मे किशोर ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। यह भाषण देना नहीं जानता, शोर-मचाना इसे प्रिय नहीं है, हलचल नहीं करता, पर इसका प्रत्येक कदम इतना दृढ और सकारण होता है कि हमारी सारी चालबाजियाँ इसके निकट पहुँचते-पहुँचते व्यर्थ हो जाती हैं। यह एक भी काम छिपाकर या चक्करदार तरीके से नही करता—बिलकुल तीर की तरह सीधी मार करता है, जिसका कोई प्रतिकार नजर नही आता। यह प्रान्त भर के किसानों और मजदूरों का सबसे अधिक विश्वास-पात्र और साथी है।"

सुखमन दास हठात् कुछ उत्तेजित-से होकर बोले—"जो भी हो यह मानव है और मानव तो सदा से आवश्यकताओं का गुलाम रहा है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि रुपयों से ससार की प्रत्येक वस्तु को खरीदी जा सकती है।"

सेनगुप्त ने हाँ मे हाँ मिलाते हुए कहा—"आप ठीक ही कह रहे हैं। रुपयों के सामने ससार ने आत्म-समर्पण कर दिया है, फिर उस छोकरे की क्या हस्ती है !"

"ठीक है"—गम्भीर ध्वनि मे सेठ जी कहने लगे—"तुम प्रयत्न करो कि कुछ मजदूर उसके संगठन से अलग हो जायँ और मैं प्रयत्न करूँ कि किशोर को रुपयों के जाल में फँसाकर जलती हुई रेत मे तड़पकर मरने के लिए छोड़ दूँ। यदि सीधी तरह नही मानेगा तो उसकी हस्ती को ही झाड़-पोंछकर साफ कर दिया जायगा— "न रहेगा बाँस और न··।"

अत्यधिक उत्साहित होकर सेनगुप्ता बोले—"बङ्गाल मे ऐसे-ऐसे छोकरो को पकड़कर वहाँ भेज दिया जाता है, जहाँ से लौटने पर वह किसी अस्पताल या अनाथालय का ही··· ··!"

सेठ सुखमनदास ने बात काटकर कहा—"ठीक है, अब तो काम करना चाहिए। बातो का समय नही रहा। हमारे तीन हजार मजदूरों ने अगर कानून और व्यवस्था को अपने हाथों मे ले लिया तो परिणाम भयङ्कर हो जायगा। अगर हमने कड़ाई की तो ये गन्दे अखबार वाले सिर पर आसमान उठा लेंगे, जिसका असर बाजार पर बहुत ही बुरा पड़ेगा।"

सेनगुप्ता सिगार की राख झाड़कर कहने लगे—"मै तो बहुत ही सशक रहता हूँ, पर इन सत्तूखोरों का विश्वास नहीं करना चाहिए।"

इतना बोलकर सेनगुप्ता मन ही मन डर गये, क्योंकि उनके मालिक सेठ जी भी तो सत्तूखोरों मे से ही एक थे। सेठ जी को भी अपने मैनेजर की यह शोखी बहुत ही बुरी लगी। वे बोले—"मै आपके व्यवहार की प्रशसा नही करता—सुना तो यह जाता है कि आपने भी पाँचवे कॉलम का ही काम किया है। कुलियो मे आज जो विरोधी-भावना काम कर रही है, उस भावना को आपने अपने आचरण से बहुत ही बल प्रदान किया है।"

बेतरह घबराकर सेनगुप्ता बोले—"मैंने ? यह झूठी रिपोर्ट आपको मिली है। मैं तो उन्हें प्रसन्न रखता हूँ, पर वे सदा मुझे · क्या बतलाऊँ !"

अत्यन्त अदब से छः फुट लम्बे दरबान ने आकर सेठ जी को सूचना दी कि बैरिस्टर साहब आये हैं। सेठ जी की बाछें खिल गईं। उन्होंने सेन गुप्ता को विदा देकर अपना पिंड छुड़ाया।

कमरे से बाहर निकलते ही सेनगुप्ता ने विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखा कि मि० चटर्जी अपनी परम रूपवती कन्या बेला के साथ उपस्थित हैं।

मि० चटर्जी से आँख बचाकर सेनगुप्ता ने मुस्कराते हुए बेला को एक हल्की कनखी मारी, फिर बैरिस्टर साहब से बड़े तपाक से हाथ मिलाया। जब सेनगुप्ता ने बेला की ओर हाथ बढ़ाया तो उसके दोनों गाल किसी रहस्य-पूर्ण लज्जा के तमाचा से सहसा लाल हो गये। सेनगुप्ता हाथ मिलाते समय धीरे-से बेला की कोमल हथेली को अपनी एक उँगली से दबाकर चलते बने। बेला पसीने से तर होकर हाँफने लगी।

नवयुवक, सुन्दर और धनकुबेर सेठजी के निकट पहुँचने के पहले ही बेला ने अपने आप को ताजा कर लिया। अभ्यास होने के कारण बेला को इतनी जल्दी अपनी लज्जा से छुटकारा पाने में कोई विशेष अड़चन का अनुभव नहीं हुआ। वह पूर्ववत् प्रसन्न हो गई और हँसती हुई सेठजी की बगल मे—सोफा पर—बैठ गई अपनी कीमती साड़ी सँभालती हुई।

बेला की ओर कनखियों से देखते हुए रसिया सेठ सुखमनदास बोले—"बेला देवी, यदि नाराज न हों तो मै एक बात कहूँ।"

मि० चटर्जी और बेला दोनों एक साथ ही बोल उठे—"कहिए—भला नाराज होने की कौन-सी बात होगी।"

इतना कहकर इस आकुलता-प्रदर्शन के लिए दोनों एक दूसरे का मुँह देखकर लज्जित हो गये। सेठजी ने अपनी उँगली की हीरे की अँगूठी को इधर-उधर घुमाते हुए कहा—"बेला देवी का स्वास्थ्य कुछ खराब-सा नजर आता है। जब मैने इन्हें पहली बार सिटी मैजिस्ट्रेट की कोठी पर देखा था तब बात दूसरी ही थी, अब तो मुझे ऐसा लगता है कि मै कोई पचास साल बाद बेला देवी के दर्शन कर रहा हूँ।"

बेला सहम उठी। एकदम पचास साल! तो क्या मै पूरे पचत्तर साल की बुढिया-सी दिखाई पड़ती हूँ—हे भगवन् ऐसा वज्रपात्!!!

चटर्जी अत्यन्त अपनापन दिखलाते हुए बोले—"मै भी यही सोचता हूँ। किसी योग्य-चिकित्सक को दिखलाना अच्छा होगा। समय ही कहाँ मिलता है हुजूर!"

सेठजी ने कहा—"डाक्टर-वाक्टर की आवश्यकता नही है। इन्हें किसी स्वास्थ्यप्रद पहाड़ पर भेज दीजिए।"

"पहाड़ पर—?" मुँह फाड़कर मि० चटर्जी ने कहा, तो मुस्कराकर सेठ जी कहने लगे—"इस बार हम श्रीनगर जाना चाहते हैं, अच्छा हो कि आप भी चलिए। गर्मियों में आपका हाईकोर्ट भी बन्द ही रहेगा—यहाँ बैठे-बैठे क्या कीजिएगा। रात-दिन काम करने का नाम ही जीवन नहीं है—दो घड़ी मौज भी तो चाहिए।"

मि० चटर्जी कृतज्ञतापूर्ण स्वर में बोले—"जैसी आज्ञा होगी। विलायत मे तो यह नियम है कि छुट्टियों के दिनों को लोग····।"

बेला बोल उठी—"मैं भी भ्रमण को पसन्द करती हूँ, पर पप्पा को अपने पुस्तकालय से सुन्दर स्थान ससार मे कोई दूसरा नजर नहीं आता। मैं तो इस एकरसता से तङ्ग आ गई।"

मि० चटर्जी स्नेहभरे स्वर में बोले—"तू पगली है बेला, कहाँ जाऊँ—अकेला आदमी ठहरा। छुट्टियों में भी मवक्किलों का ताँता लगा ही रहता है। बड़े-बड़े मुकद्दमे छुट्टियों में ही आते हैं।"

"ठीक है"—सेठजी ने कहा—"आप को मालूम ही होगा कि मिल के कुलियो में असन्तोष फैला है। वे कानून को अपने हाथ मे लेना चाहते हैं। कुछ कुचक्रियां ने उन्हें बरगलाया है और वे गन्दे कीड़े मरने पर उतारू हैं।"

चटर्जी ने गम्भीरतापूर्वक बैरिस्टर की तरह 'उत्तर दिया—"आप अपनी दिक्कतें जिलाधीश के सामने रक्खे। मि० मैक्सवेल अब नहीं रहे—वे बड़े ही हठी प्रकृति के थे। मेरे साढू के भानजे हैं, जो बदलकर आ गये हैं। वे एक कठोर शासक हैं मैं इस मामले मे आपकी सहायता करूँगा। क्या आपने रायबहादुर सत्येन्द्रचन्द्र मजूमदार का नाम नहीं सुना। वे पहले आपके यहाँ सीनियर मैजिस्ट्रेट भी तो थे। उनके नाम से आज सारा जिला थर-थर काँप रहा है।"

सेठजी ने कहा—"हाँ, उनसे तो मेरा भी परिचय है—यह तो सौभाग्य की बात है जनाब।'

यह सुनकर कि सेठजी से भी मजूमदार साहब का पुराना परिचय है, चटर्जी कुछ उदास हो गये। उन्हें ऐसा लगा कि पूरी तरह कृतज्ञता का भार लादते अब न बनेगा, क्योंकि सेठजी मजूमदार के परिचितों में से हैं। रोगी

द्वारा सेवन की हुई दवा का नाम बड़े समारोह के साथ रोगी को फिर से बतलाना कोई विशेष महत्व नहीं रखता।

× × × ×

सेठ सुखमनदास की कोठी से प्रायः सत्तर मील की दूरी पर, अपनी माँ के निकट बैठा हुआ किशोर बोला—"माँ, अब विदा दो। पता नही फिर कब चरण-स्पर्श कर सकूँ।"

कमला विकल होकर बोली—"बेटा, मै भी चलूँगी। आश्रम मे मुझे भी स्थान दो।"

किशोर बोला--"माँ, अभी समय नही आया है। समय स्वयम् तुम्हे पुकारेगा—मै जानता हूँ, तुम्हें सब कुछ ज्ञान है—अभी प्रतीक्षा करो।"

हरिहर सिंह ने कहा—"मै तो वह पुकार सुन रहा हूँ किशोर, फिर प्रतीक्षा क्यों करूँ।"

किशोर पिता के चरणों पर सिर रखकर रुद्ध कठ से बोला—"मेरे देवाधिदेव, आज मैं धन्य हुआ।"

जब किशोर ने पिता का चरण स्पर्श किया तो उन्हें एकाएक अपने उन पत्रों की याद आ गई जो उन्होंने उच्चाधिकारियो के पास भेजे थे--वे सिहर उठे।

———

(२४)

मिल के अधिकारियों ने मजदूरों के असन्तोष को दबाने का तो प्रयत्न किया पर असन्तोष के मूल कारणो पर ध्यान देना कभी भी उचित नही समझा। उन्होने उन कारणों को अपनी जगह पर कायम रहने दिया जिनके चलते मजदूरों मे रोष फैल रहा था। बल्कि बदला लेने की जो घृणित भावना मिल-मालिको मे पैदा हो गई थी, उसने परिस्थिति को विषाक्त बनाने मे भरपूर भाग लिया। अत्यन्त ऊबकर मजदूरो ने ब्रह्मचारी जी की सेवा मे उपस्थित होना उचित समझा। मजदूरों का मुखिया था जगरूप। वह बाहर

से पूरी तरह शान्त था, पर भीतर ही भीतर उसका हृदय चूने का भट्ठा बना हुआ था।

ब्रह्मचारी जी ने कहा—"भाई, मैं तो यही पसन्द करूँगा कि तुम लोग पूर्ण शान्त रहो, पर तुम्हारी शान्ति बलवानों की शान्ति हो। उमड़ उठना अपने क्रोध से स्वयम् पराजित हो जाना है। तुम अजय बनो—यही मेरी कामना है। अपनी बुराइयों को आत्म-समर्पण मत करो।"

जगरूप ने कहा—"आप देवता हैं और हम हैं मनुष्य। हमें मनुष्यों की तरह रहने की शिक्षा दीजिए—क्रोध, लोभ आदि विकारों को जीतना हमारा काम नहीं है।"

"है क्यों नहीं"—ब्रह्मचारी जी दृढ़ स्वर मे कहने लगे—"मनुष्य को तुम लोगो ने समझा क्या है, क्या मनुष्य-शक्ति से परे भी कुछ है?"

एक दूसरा मजदूर बोला—"गुरुदेव, हम अपमान सहते-सहते मानवता खो बैठे। गरीबी ने जीवन भर एक क्षण के लिए भी स्थिर बैठने नहीं दिया—हम मानवता की बात सोचते कब?"

ब्रह्मचारी जी चिन्ता में डूब गये। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उपस्थित मडली मे सन्नाटा छा गया। कुछ क्षण ठहरकर जगरूप कहने लगा—"गुरुदेव, देखिए, वह सामने जो गरीब बैठा है उसको जमादार से इसीलिए पिटवा दिया गया कि उसके पास आपका एक पर्चा था। वह पर्चा हमारा दैनिक पाठक्रम का एक अश था। हम दिन भर काम करते हैं और रात को पढ़ते हैं। अपना पाठ याद करते हैं और फिर आगे पढ़ते हैं। छपा हुआ जो अगले दिन का पाठ हमे मिलता है, वह खतरनाक चीज नही है पर मिल वाले हमें पढ़ने देना नही चाहते। हमारी मूर्खता ही उनकी रक्षा करती है, उनकी तिजोरियाँ भरती हैं, उन्हें मनमानी करने का अवसर देती है। सच्ची बात यह है कि वे हमारे तो शत्रु हैं पर हमारे परिश्रम के मित्र। आज तक हमने उनका हित ही किया है, पता नहीं हमारी सेवाओं का बदला वे हमारा और हमारे बच्चों का गला घोटकर क्यों दे रहे हैं।"

ब्रह्मचारी जी ने दोनों कान पर हाथ रखकर कहा—"शिव, शिव, शान्ति, शान्ति!"

जगरूप चुप लगा गया, पर उपस्थित-मडली में जो क्षोभ फैला, दब न सका। भीड़ में से एक मजदूर उठकर बोला—"हम शान्ति पसन्द करते हैं, क्योंकि हम यहाँ जीने आये हैं, मरने नहीं, पर जरा मेरी ओर देखिए।"

इतना कहकर उक्त मजदूर ने अपना गन्दा और फटा हुआ कुर्ता उतार डाला और दोनों हाथ ऊपर उठाकर वह खड़ा होगया। दबी हुई छाती और हड्डियों का एक दयनीय ढाँचा—माँस का निशान भी नहीं। अपना प्रदर्शन करके वह बोला—"भाइयो, भट्ठी मे काम करते-करते मेरी यह दशा हुई—तीन महीने से ज्वर भुगत रहा हूँ। मिल का डाक्टर कहता है कि—"मलेरिया है" और बड़े अस्पताल का डाक्टर कहता है—क्षयी! मै सोचता हूँ कि यह मृत्यु है।"

मिलवालों की सेवा मे प्रार्थना-पत्र भेजने का परिणाम यह हुआ कि कल मैनेजर के सामने मै बुलाया गया और मुझे आदेश मिला कि मैं मिल के हाते मे प्रवेश न करूँ नहीं तो मेरा चालान कर दिया जायगा"—इसके बाद दो-चार गालियाँ भी मिलीं और धक्के मारकर मैं निकाल दिया गया। मैनेजर मुझे षड्यन्त्री समझता है, पर मै अपने को काल का कौर समझ रहा हूँ।

सम स्वर मे बहुत से मजदूर चिल्ला उठे—"ऐसा क्यों हुआ?"

वह मजदूर बोला—"मैंने प्रार्थना की थी कि इस विषम अवस्था में मुझे आधे वेतन के साथ छुट्टी दी जाय—यही मेरा अपराध था। दया की भीख माँगना भी इस युग मे अपराध है।"

जगरूप बोला—"वेतन? मिल वाले कभी भी मजदूरों को स्थायी नौकरी नहीं देते। तुम जीवन भर काम करके भी रोज-रोज के मजदूर रहोगे—वे थोड़े-से मजदूरों को वेतन-भोगी नौकर के रूप मे रखते हैं और शेष को रोज-रोज की मजदूरी पर। वे चालाक हैं।"

कुछ मजदूर बोले—"यह तो बेईमानी है।"

जगरूप ने कहा—"चाहे जो समझो, पर होता यही है। हमारे मिल मे तीन हजार मजदूर हैं, पर स्थायी वेतन-भोगी मजदूर होंगे दो सौ से भी कम।"

"और बाकी ?"—चिल्लाकर कुछ मजदूर बोले।

जगरूप ने कहा—"राम भरोसे हैं। तुम्हारा कोई दायित्व मिल वालो पर नहीं है। तुम्हारे हाथ पाँव कटें या तुम्हारा भुरता बन जाय। रजिस्टर पर तुम्हारा नाम ही नही है—तुम मिल के लिए खून पानी एक करके भी मिल के लिए कोई नहीं हो।"

सभी मजदूर आवेश मे आकर चिल्ला उठे तो ब्रह्मचारी जी ने कहा—"भाई, शान्ति! किसी भी बात को शान्त-बुद्धि से समझना चाहिए। आँखे बन्द करके दौड़कर चलने वाला ही प्रायः गिरता है। तुम्हें व्यक्ति को छोड़-कर उसकी व्यवहार-पद्धति का ही विरोध करना चाहिए। मै देखता हूँ कि तुम व्यक्ति की ओर झुक रहे हो, यह बुरी बात है और तुम्हारे दावे को निर्बल बनाने वाली है।"

जगरूप हाथ जोड़कर बोला—"प्रभो, हम साधारण मजदूर केवल इतना ही जानते हैं कि हमें जीवित रहने दिया जाय—तात्विक-विवेचन हमारे द्वारा संभव नही है। हम जीने के लिए ही आज मरने को प्रस्तुत होगये हैं। हम किसी का अहित क्यों सोचेंगे; हम तो संसार के निर्माण मे अपने आपको खपाने वाले हैं, खपा चुके हैं। हम किसी से कुछ भी आशा नही रखते—हम अपने परिश्रम की ही गुलामी करते हैं, करते आ रहे हैं। हम दुनिया मे किसी के गुलाम नहीं हैं।"

क्रुद्ध मजदूरों की भीड़ जब चली गई तो ब्रह्मचारी जी ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा—"हे नारायण! इनकी रक्षा करो।"

विमल ने कहा—"क्या होगा गुरुदेव! मै देखता हूँ कि धीरे धीरे परिस्थिति जटिल होती जा रही है—क्या हमे इन मामलों मे हाथ डालना चाहिए?"

ब्रह्मचारी जी बोले—"यही सोच रहा हूँ—हमारा उद्देश्य बहुत ही ऊँचा है, इन छोटी बातों में अपनी शक्ति को लगाना उचित होगा या नहीं, यही सोच रहा हूँ।"

विमल विकल स्वर मे बोला—"तो क्या इन्हें अरक्षित अवस्था में ही

छोड़ देना उचित होगा ! इनके सहज विश्वास के प्रति इतनी निष्ठुरता करना...... ...।"

ब्रह्मचारी के शान्त ललाट पर चिन्ता की रेखाएँ झलककर तत्काल मिट गई । वे शान्त स्वर म बोले—"बेटा, भावुकता और सत्य म बड़ा अन्तर है । इन मजदूरों को बुरी तरह पिसने दो, इन्हें कीड़ों-मकोड़ों की तरह मरने दो, इन्हें समाप्त होने दो—इनका बलिदान व्यर्थ नही जायगा । आज ससार की आँखे दूसरी ओर लगी हुई हैं—इनकी चीख़, पुकार और इनका भयकर आत्म-विसर्जन उन पत्थर के कलेजावालों को भी दहला देगा । इन्हें साध्य का रूप मत दो, साधन के रूप मे इनका उपयोग करो ।"

विमल सिहर उठा । ब्रह्मचारी जी फ़िर बोले—"अपने उद्देश्य की पूर्ति में इन मजदूरों को हम सहायक बनावे । इनके दुःख दूर हो जाने के मानी है कि हमने एक सुअवसर गँवा दिया ।

विमल बोला—"इनकी कुगति का अन्त नजर नहीं आता । मैं तो चाहता हूँ, इन्हें जीवित रहने का अधिकार दिला दिया जाय—ये अपनी मौत मर न कि कुत्तों की मौत !"

ब्रह्मचारी जी बोले—"तुम ठीक ही सोच रहे हो बेटा, इन्हें मरने से बचाया जाय, पर मै तो दूसरी ही बात सोच रहा हूँ !"

विमल विनय-भरे स्वर मे बोला—'क्या मै सुन सकता हूँ, गुरुदेव !

'हाँ सुनो'—ब्रह्मचारीजी अपने को अत्यन्त स्थिर करके बोले—'मैं किसी की रक्षा करना पाप समझता हूँ, यह मेरा अटल सिद्धान्त है । मेरा उद्देश्य है कि प्रत्येक को ऐसा बना दिया जाय कि वह अपनी रक्षा स्वयम् करने मे पूर्ण समर्थ हो जाय । हमारी भीख देने की प्रवृत्ति ने, अनावश्यक दान देने की मूर्खता ने ससार के इस छोर से उस छोर तक भिखारियों से भर दिया है । मानव स्वभाव से काहिल होता है, उसे सहारा दोगे तो वह अपने पैरों से एक कदम भी चलना पसन्द नहीं करेगा । उसमे चलने की प्रवृत्ति ईश्वर-दत्त है, वह पगु प्राणी नहीं है—उसे दो मजबूत पैर परमात्मा ने दिये हैं । वह चल सकता है और अच्छी तरह चल सकता है ।"

विमल चुप लगा गया, पर उसका मन भीतर-ही-भीतर हाहाकार करता रहा। वह पर-दु:ख-कातर स्वभाव का नवयुवक था। साथ ही उसमें 'प्रमुख' बनने की भी छिपी हुई प्रवृत्ति थी। ब्रह्मचारी जी से छिपे-छिपे वह मजदूरों मे जाता और उन्हें प्रत्येक प्रकार की सम्भव सहायता भी प्रदान करता। ब्रह्मचारीजी को उसकी हरकतो का पता चलता रहता था, पर वे चुप रहते थे। धीरे-धीरे मजदूरों मे विमल का श्रेष्ठ स्थान हो गया। जब वह नेता बनने की अपनी छिपी प्रवृत्ति का शिकार हो गया तो एक दिन ब्रह्मचारी जी ने उदास स्वर मे कहा—"बेटा, मै देखता हूँ कि तुम चलनी का रूप ग्रहण करते जा रहे हो—आटा तो दूसरों के लिए गिरा देते हो और अपने लिए भूसी का सग्रह कर रहे हो। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि 'सेवको' के लिए कुछ भी 'बनना' उचित नही है। यह 'बनने' की विडम्बना किसी दिन हमारे मुख्य उद्देश्य को अपने-साथ लिये-दिये रसातल पहुँचा कर ही दम लेगी। मैं कहता हूँ अपने को अब मानव ही रहने दो—यही उचित भी है। विमल मन-ही-मन डरकर बोला—"मैं तो कुछ बनता नहीं गुरुदेव !"

ब्रह्मचारी जी कहने लगे—"बहुत से कार्यों का सुनिश्चित परिणाम होता है। जो तुम कर रहे हो उसका भी एक ही सुनिश्चित परिणाम है—नेता बनना ! सेवक मुखिया बनकर रहना पसन्द नहीं करता। मुखिया बनते ही उसका प्रधान गुण नष्ट हो जायगा।"

विमल की आँखे सहसा खुल गई, पर वह काफी आगे बढ़ चुका था। मजदूर सघ का अधिनायक बनकर उसने मिलमालिकों और मजदूरों के बीच संयोजक कड़ी के रूप में अपने को बनाकर जो गलती की थी उसकी ओर उसका ध्यान न था। वह अनजानते बँध चुका था। किशोर जब दौरा करके देहात से लौटा तो उसने विमल को उसकी गलती के लिए समझाया, पर परिणाम उलटा ही हुआ। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया, विमल की की स्थिति देखने वालों के लिए सुदृढ ,पर समझदारों के लिए नाजुक बनती गई। किशोर अत्यन्त व्यग्र-दृष्टि से विमल की गति को देखता, पर उसका एक भी बस नही चलता। ब्रह्मचारी जी ने भी किशोर को आदेश दिया—"प्रतीक्षा करो और देखो, क्या होता है।"

मजदूरों की स्थिति भी ऐसी हो गई कि विमल के साथ ही उनका भविष्य जुड़ गया। मिलमालिकों में बेचैनी के बदले शान्ति छा गई, क्योंकि उन्हें एक ऐसा कठपुतला चाहिए था जो मजदूरों को अपने साथ नचाता फिरे, साथ ही वह कठपुतला मिलमालिकों का अपना हो।

किशोर ने अपना सिर पीटकर ब्रह्मचारी जी से कहा--"गुरुदेव, कैसा अनर्थ हुआ।"

शान्त ब्रह्मचारी जी बोले—"बेटा, हमारा कार्यक्षेत्र इतना सकुचित नहीं होना चाहिए। विमल अब बुरी तरह फँस गया। वह एक श्रीसम्पन्न परिवार का है—उसके भीतर बड़ा बनने का सस्कार कायम है। घर-द्वार छोड़कर वह बड़ा बनने की प्रवृत्ति नहीं छोड़ सका—अन्त में वही प्रवृत्ति उसे ले डूबी! आज वह नेता है, सुखमनदास की कीमती गाड़ी उसकी सेवा मे उपस्थित रहती है, इधर सरकारी अधिकारी भी उसकी पीठ ठोंक रहे हैं--वह पहले तो मजदूरों की सेवा करने गया, उनकी विपत्तियों से पसीज कर, पर अब वह अपने बड़प्पन के जाल में फँस गया। वह लौटता नजर नहीं आता बेटा, सच्ची बात तो यह है कि ऐसे व्यक्ति का अन्त बहुत ही करुणापूर्ण होता है, ये मरते नही समूल नष्ट हो जाते हैं।"

किशोर आँखो में आँसू भरकर बोला—"हायरे मानव! तेरा अन्त कहाँ होगा?"

---

(२५)

धीरे-धीरे विमल का साथ आश्रम से छूट गया। वह प्रायः अपने सङ्गठन न ही व्यस्त रहता। कुछ ऐसे साथी भी उसे मिल गये जो नेताओं की तरह उठना-बैठना जानते थे, वे नेताओं की तरह कपड़े पहनते थे और गम्भीर मुद्रा बनाकर मुस्कराना भी जानते थे। कुछ ऐसे भी साथी विमल को मिल गये जो बाहर से देखने में बड़े ही भद्र जान पड़ते थे, पर भीतर ही भीतर पक्के आवारा तथा लालची थे, क्योंकि आवारापन के चलते उन्हें

बराबर अभाव सताया करता था। एक ओर मिलमालिक, दूसरी ओर उच्चाधिकारी, तीसरी ओर मजदूर और चौथी ओर आवारागर्द साथी—इन चारों विपत्तियों से घिरा हुआ विमल मानो मौत की घड़ियाँ गिन रहा हो। वह इनमें से प्रत्येक को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता हुआ ऐसी दिशा की ओर अनजानते खिसकने लगा जहाँ पहुँचकर मानव मानवता गँवाकर मानव नहीं रह जाता है। वह अनजाने ही सत्य और आत्म-चेतना से दूर पड़ गया—प्रत्येक प्रकार की चालबाजी और प्रवञ्चना को 'कूटनीति' के रूप में उसने ग्रहण किया।

किशोर ने एक दिन रोकर विमल से कहा—'भैया, इन आवारों का साथ छोड़ो। तुम क्या कर रहे हो—तुम्हें अपने को साग-बैंगन की तरह बेचना नहीं चाहिए था। तुमने अपना शरीर हमें दे दिया है, हमसे छीनकर इसे चील-कौवो को मत दो।"

"क्या कहा तुमने"—चौककर विमल बोला—"क्या मै अपने शरीर को चील-कौवों के हवाले कर रहा हूँ। तुम कैसी बातें करते हो किशोर?'

किशोर सहसा गम्भीर होकर बोला—"भले ही मै चुभने वाली कोई बात कह गया होऊँ जो मुझे नहीं कहना चाहिए था, क्योंकि मै जानता हूँ कि शारीरिक हिंसा से वाचिक हिंसा अधिक बुरी होती है, पर मैंने जो कुछ भी कहा है उसकी सत्यता पर मुझे सन्तोष है भैया!"

विमल असहिष्णु-सा बोला—"मैंने क्या बुरा किया? इन गरीबों का साथ देना क्या अपराध है? हम इन मजदूरों के लिए प्राण तक न्यौछावर कर देंगे।"

किशोर मुस्कराकर कहने लगा—"तुमसे मै ऐसी ही आशा रखता हूँ विमल, पर मैं जानता हूँ कि प्राणों का सौदा लालचियों के लिए बड़ा कठिन होता है। खैर, तुम प्राण दे सकते हो, पर यह तो सोचो कि धीरे-धीरे तुम उद्देश्य से—अपने प्रधान कर्तव्य से—हटते जा रहे हो। इन ऊँची कोठी वालों का जाल बहुत ही खतरनाक होता है—एक बार फँसे नहीं कि फिर उद्धार असम्भव है। तुमने जो रास्ता सीधा समझकर पकड़ा है वह विनाश के गर्त तक तुम्हें अनायास ही पहुँचा देगा।"

विमल कुछ कहना ही चाहता था कि उसके दो तीन कुख्यातिलब्ध त्यागी साथी आये। इन स्वयम्भू नेताओं ने किशोर को देखकर उपेक्षा की हँसी हँसने का प्रयत्न किया, पर उनकी हँसी उन्हीं के लिए लज्जा का कारण बन गई—वे हँसकर स्वयम् लजित होगये। उनमें से एक थे कामरेड रमेश! कामरेड रमेश कालेज से निकाले जाकर दल्लाली करने लगे थे और दल्लाली करते-करते जब दफा ४२० में जेल चले गये तो वहाँ से पक्के कामरेड होकर लौटे। जेल से लौटने पर जब शेयर मार्केट मे मुँह दिखलाने की अपनी योग्यता कामरेड रमेश गँवा वैठे तो उन्होंने एकबारगी ही अमीरों के प्रतिकूल धावा बोल दिया। वे अचानक उग्र कामरेड बन गये और इस नये तरीके की दल्लाली से तृप्त होकर उन्होंने विमल का साथ बड़े नाज से किया। दूसरे कामरेड थे जगदीश। आप अपने नाम के साथ 'आजाद' उपनाम जोड़ते थे। आप किसी स्कूल के शिक्षक थे, पर स्कूल अधिकारियों ने उन्हे जब विवश होकर निकाल दिया तो आप प्रायः एक साल तक नौकरी के लिए एँड़ी चोटी का पसीना एक करते रहे और सफल न होने पर कामरेडी रग मे आगये। तीसरे सज्जन एक नाटे और मोटे से भूतपूर्व जमीन्दार थे, जिनकी सारी जायदाद महाजनो ने आराम से निगलकर डकारा भी नहीं। उनके पिता ने रायबहादुर बनने के भगीरथ प्रयत्न मे जो नाच मुजरे, पार्टियों और चन्दे का तूफान उठाया था, उसका परिणाम यह हुआ कि दरिद्रता-देवी ने झाड़ू लेकर उनके घर को इस छोर से लेकर उस छोर तक अच्छी तरह झाड़-बुहारकर साफ कर दिया। पचासों हजार कर्ज के साथ जब उन्हें रायसाहबी ही मिल सकी तो उनका दिल ऐसा टूट गया कि वे छः महीने के भीतर ही भीतर भले आदमी की तरह चुपचाप मर गये। उनके पुत्र शिवनारायण बाबू समय के प्रवाह मे पड़कर एक कामरेड बन गये।

कामरेड रमेश ने कहा—"हल्लो मि० किशोर, आप आजकल क्या कर रहे हैं?"

किशोर ने उत्तर दिया—"भगवान का भजन!"

कामरेड शिवनारायण बोले—"हम भगवान को नहीं मानते—यह मूर्खों की जमात का खिलौना है। रूस मे भगवान नहीं है।"

भूतपूर्व शिक्षक कामरेड आजाद ने कहा—"हम ईश्वर और धर्म का मुँह देखना भी पसन्द नहीं करते। मार्क्स ने लिखा है कि- "

इतना बोलकर आजाद सोचने लगे कि मार्क्स ने क्या लिखा है, कहाँ लिखा है। उन्हें अचानक याद आ गया कि वे एक ऐसे व्यक्ति के सामने मार्क्स का नाम ले रहे हैं जो मार्क्सवाद का माना हुआ और बहुश्रुत विद्वान है।

निमल बोला—"किशोर भैया पक्के ईश्वरवादी हैं—यही हमसे इनका मौलिक मतभेद है।"

किशोर बोला—"मैं इस विषय को यही पर समाप्त कर देने की प्रार्थना करूँगा। मैंने साम्यवादी साहित्य का थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है—अभी तक मेरा अध्ययन अपूर्ण है। मार्क्स ने क्या कहा, क्या नहीं कहा, यह मैं जानता हूँ, पर बहस करना मेरे बूते की बात नहीं है—इस बुरी आदत को मैं छोड़ चुका हूँ। मैं ईश्वर को तर्कातीत मानता हूँ।"

कामरेड रमेश आनन्द-विभोर होकर हँसने लगे और आजाद रूस का राष्ट्रीय सगीत भारतीय राग-रागिनियों में गाते हुए कमरे मे टहलने लगे।

किशोर ने विदा माँगी जो उसे अनायास ही मिल गई। जब किशोर चलता बना तो कामरेड रमेश बोले—"यह भी परले सिरे का खूसट व्यक्ति है। उस ब्रह्मचारी के चक्कर में पड़कर यह गुमराह हो गया। ईश्वर, धर्म, पूजा—जप—ये सारी बाते मध्यकालीन सभ्यता, जिसे असभ्यता ही कहना उचित है, की देन हैं। आप रूस में अगर ईश्वर का नाम ले तो फौरन गोली खानी पड़े—एकदम फौजी अदालत के सामने खड़ा होना पड़े, जनाब!"

रूस का ध्यान करके, जैसा कि उन्होंने मानचित्र मे देखा था, अत्यन्त गद्‌गद् चित्त से कामरेड आजाद कहने लगे—"मोशिये ··नहीं, नही कामरेड स्टालिन ने जो पुस्तक अभी हाल में लिखी है, उसमें उन्होंने साफ-साफ लिख दिया है कि रूसी सीमा के भीतर गुलामी, गरीबी और ईश्वर का प्रवेश निषेध है।

चारों ओर से कामरेड आजाद की महिमापूर्ण वाणी का समर्थन हुआ। पर स्वयम् आजाद इसलिए प्रसन्न हुआ कि ईश्वर ने उसे ऐसी मण्डली दी

है जिसमें मूर्खों की ही अधिकता है और वह आसानी से लेनिन, त्रात्स्की, गोर्की, स्तालिन के नाम ले-लेकर मनमानी बातें कहकर अपना प्रभाव जमा लेता है।

उत्साहित होकर कामरेड आजाद ने फिर कहा—"भाई, रूस की बात ही अलग रही। वह जादू का देश है। बर्नार्डशा ने एक जगह लिखा है कि रूस संसार का स्वर्ग है।"

विमल बोला—"और भारत क्या ?"

कामरेड सुरेश ने कहा—"नरक ! रूस की तुलना में यह नरक है !"

इसी समय किसी आवश्यक बात के याद आ जाने के कारण किशोर फिर लौट आया। वह कमरे में घुसते-घुसते बोला—"भैया, इस अभागे नरक के कीडा की श्रेणी मे अपने को मत रक्खो। हाँ विमल, ब्रह्मचारी जी ने तुम्हें बुलाया है। समय मिले तो किसी समय आ जाना।"

विमल अस्त-व्यस्त होकर बोला—"आज ?"

नई पद्धति के अनुसार मेज पर पड़ी हुई अपनी Weekly Engagement Diary के पृष्ट उलटकर विमल बोला—"आज मुझे (१) मि० सुखमनदास से मुलाकात करना है। (२) मि० जे० सी० कैम्पवेल के यहाँ जाना है। (३) मि० वाट्सन से मिलना आवश्यक है। (४) रायबहादुर सन्तोषकुमार बसु से भी मिलना तै हो चुका है (५) मजदूर क्लब में ड्रामा के लिए जो सभा होगी उसमें भाग लेना है। (६) अनाथालय की सभा मे सभापतित्व ···और ···और··· ।"

किशोर यह महिमापूर्ण सूची सुनकर शान्त स्वर मे बोला—"आज न सही और किसी दिन कष्ट उठाकर आ जाना। इस सप्ताह गुरुदेव आश्रम मे ही रहेंगे।"

इतना कहकर जब किशोर चला गया तो कामरेड सुरेश बोले—"बिलकुल असंस्कृत ! पुरानेपन की खाल लपेटे यह अभागा अपना जीवन नष्ट कर रहा है। साधु-फकीरों की देश को कोई जरूरत नहीं है। मैं साधुओं से घृणा करता हूँ।"

कामरेड आजाद उछलकर खड़े हो गये और बोले – "दोस्तो, रूस में साधुओं को घुसने भी नहीं दिया जाता। वहाँ भिखमगे नजर ही नहीं आते। गुलाम देश मे ही भिखमगे और 'गुरुदेव' नजर आते हैं।"

विमल ने कहा—"हमे भारत को भी रूस का रूप देना होगा।"

कामरेड आजाद ने कहा—"जरूर! यहाँ की हर एक चीज बुरी है। यहाँ तक कि इस देश का आसमान और यहाँ के वृक्ष, पर्वत सभी संशोध्य हैं। इस भद्दे देश को रूस नही बनाया जा सकता। तुम कच्छप को ऊँट नहीं बना सकते।"

कामरेड सुरेश दहाड़कर बोले—"हम क्रान्ति करके देश का कायापलट कर देंगे।"

विमल ने धीरे से कहा—"सुनो मित्र, आज सेठ सुखमनदास ने पाँच हजार रुपये देने का पक्का वादा किया है। वह है भला आदमी। अब मजदूरों को इसलिए राजी किया जाय कि वे अपने हडताल के निश्चय को बदल डाले।"

कामरेड सुरेश तृप्त होकर बोले—"मूर्खों को बन्दरनाच नचाना मै मैं जानता हूँ। ये मजदूर क्या खाकर हड़ताल करेंगे। सेठ से कहो कि वह मिल के पास एक सिनेमा-घर भी खोल दे। शराब की दुकान और सिनेमा-घर—बस! मजदूरों के मनोरंजन की व्यवस्था कराना हमारा प्रधान धर्म होना चाहिए। वे सिनेमा देखे और शराब के मजे लूटे—उन्हे और क्या चाहिए।"

विमल बोला—"सो तो ठीक है, पर रुपयों का क्या होगा?"

कामरेड सुरेश बोले—"इस कोठी को हम भारतीय क्रान्ति का उसी तरह केन्द्र बना देंगे जिस तरह लेनिन ने "स्मोलिनी" को क्रान्ति का गढ़ बना दिया था। जो हो, पर रुपयों का बँटवारा जल्द हो जाना चाहिए, क्योंकि मैं इसी जून मे अपनी बहन का विवाह करना चाहता हूँ।

विमल बोला—"पिछली बार भी रुपयों का बटवारा शीघ्र ही हुआ था, पर हमें एक अंश भावी क्रान्ति के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।"

"वर्तमान क्रान्ति पर पहले ध्यान दो—" कामरेड आजाद बोले—

"पिताजी के मरने पर घर का लोटा, थाली सभी बिक गई थी। तुम्हें तो सब मालूम है—अगर मिल के मजदूरों का साथ न किया होता तो मेरा परिवार कुत्तों की मौत मर जाता। मैं तो यही कहूँगा कि हमें पूरा-पूरा हिस्सा दिया जाय—हम जन्म भर के निराहारी हैं।"

विमल ने कहा—"मैंने स्वीकार किया।"

अत्यन्त उत्साहित होकर कामरेड सुरेश कहने लगे—"सच कहता हूँ कामरेड विमल! यही मिल ही बनेगी भारत के उद्धार का कारण। यहीं से क्रान्ति की ज्वालामुखी भड़ककर भारत की पूँजीवादी शक्ति को खाक में मिला देगी—हम भावी क्रान्ति मे वही भाग लेंगे जो भाग स्टालिन, लेनिन, गोर्की, त्रात्स्की, मोलोतोव, बुद्धयोनि ने रूसी क्रान्ति में लिया था—हाँ, भैया विमल, तो सध्या समय सेठ से रुपये ऐंठ लेना। कौन जाने उसका दिमाग कोई बहका दे। अवसर से लाभ उठाना चाहिए, मित्र!"

विमल बोला—"मि० सुखमन बचन का पक्का है। कह कर नहीं मुकरता।"

कामरेड सुरेश ने उच्छ्वसित कंठ से कहा—"करोड़पति जो ठहरा—उसे किस बात की कमी है भैया! वह रुपयों की खेती करता है, खेती! बड़ों की सभी बातें बड़ी होती हैं—कोई नंगा-दरिद्र है जो कहकर मुकुर जाय!"

विमल बोला—"अच्छा अब मै मि० कैम्पवेल के यहाँ चला। यह अभी-अभी बदलकर आया है। भला आदमी है। पुलिस विभाग में ऐसा भला आदमी शायद ही कोई नजर आता है।"

कामरेड आजाद ने कहा—"अंग्रेज प्रायः सज्जन होते हैं। अगर कोई हिन्दुस्तानी इस पद पर होता तो पानी में आग लगाता फिरता।" सभी ने इस सारवान उक्ति का समर्थन किया।

———

(२६)

बेला क्रम-विकास के आधार पर कालेज से बढ़ती-बढ़ती नाना पथों से होती हुई अन्त मे, प्रसिद्ध घन-कुबेर मि० सुखमनदास की शानदार कोठी पर जाकर कुछ क्षण के लिए रुक गई। कीच की सीढियों मे मि० सेन, मि० सेनगुप्ता आदि-आदि गिने जा सकते हैं पर इस तरह का लेखा-जोखा सभ्य समाज नहीं रखता। सभ्य समाज को तो अपने वर्तमान से ही लेना-देना है। अतीत और भविष्य के पचड़े मे पड़ना आज-कल का फैशन है भी नहीं। जो हो, फिर भी मि० सेन अपनी आशा का दामन नहीं छोड़ सके। वे बेला के यहाँ आते-जाते और नाना उपायों द्वारा ममता की सड़ी-गली लाश को कायम रखने का प्रयत्न करते रहते। इन दोनों कुमार और कुमारी का जीवन ठीक उस उल्लू की तरह व्यतीत हो रहा था जो जोश में आकर दिन के प्रकाश में अपने अन्धकार-पूर्ण कोटर से निकलकर बाहर आगया हो और कौवों ने उसे देख लिया हो। बेला एक कुमारी कन्या थी, अतएव वह दया और सम्मान की भी अधिकारिणी थी, पर मि० सेन थककर फेन चाटने वाले तैराक की तरह कभी डुबकियाँ खाते और कभी अपने अधम शरीर का भार लहरों पर डालकर निर्जीव लकड़ी की तरह बहते जाने का प्रयत्न करते। वे नयी सभ्यता के समर्थक थे। यदि उनमें पुरानापन होता तो अपने गन्दे जीवन से लज्जित होकर उन्हे एक दिन निश्चय ही आत्म-हत्या करनी पड़ती। होली की सध्या और वसन्त की बयार। पतझड़े वृक्षों के फाँक से पूर्णिमा का चाँद झाँक रहा था। मि० सेन बन-ठनकर मि० चटर्जी की कोठी पर आये। वे सदा सूट में ही रहा करते थे। फाटक के भीतर घुसते ही उन्होंने देखा कि मि० सेनगुप्ता बेला के साथ उसके कमरे से निकल रहे हैं और मि० चटर्जी बड़े अदब से खड़े होकर युगलजोड़ी का यह नयनाभिराम दृश्य लुब्ध दृष्टि से देख रहे हैं। बेला ने सेन की ओर देखकर भी ध्यान नहीं दिया और मि० सुखमनदास की भेजी हुई कीमती गाड़ी पर सँभलकर बैठ गई। सेनगुप्ता ने ड्राइवर का स्थान लिया। फिसलती-सी गाड़ी चली गई और मि० सेन उस कुत्ते की

तरह खड़े ताकते रह गये जिसके आगे की रोटी का टुकड़ा चील झपटकर ले गई हो। खिन्न सेन को ऐसा लगा कि उनकी लालसा रोती-चीख़ती, सिर पीटती चली जा रही है। झल्लाकर वे जाने को मुड़े ही थे कि मि० चटर्जी हठात् सामने आकर खड़े हो गये। सेन अपने बनाव-शृङ्गार को नोच डालने के लिए सन्नद्ध हो गये थे, पर चटर्जी साहब को देखकर रुक गये।

अपनी काली और सिगरेट की दुर्गन्ध से भरी हुई मोटी भद्दी हथेली आगे बढ़ाकर चटर्जी बोले—"हल्लो मि० सेन! बहुत दिनों पर देखा, अच्छे तो थे।"

सेन कुढ़कर बोले—"क्या अच्छा रहूँगा महाशय, डिस्पेप्सिया से मर रहा हूँ।"

मन-ही-मन कुछ सोचकर चटर्जी बोले—"यह रोग अमीरों का रोग है— भोजन की गड़बड़ी होगी।"

सेन झल्लाकर कहने लगे—क्या रोग में भी वर्गवाद है महाशय? आप मुझसे मजाक तो नहीं करते।"

"मजाक क्यों करूँगा भाई"—घबराये-से मुँह बनाकर बैरिस्टर साहब बोले—"मैं स्वयम् इसका शिकार हूँ, खैर यह तो बतलाओ, कैसे भूलकर इस ओर आना हुआ।"

यह कटे पर नमक था। सेन का समस्त अन्तःकरण दुःख, घृणा और क्षोभ से भर गया। वे बोले—"मैं बेला के दर्शनार्थ आया था, पर वे तो हैं नहीं—बहुत बार आया और लौट गया।"

'दर्शनार्थ' शब्द पर विशेष जोर देकर सेन ने कहा था—मि० चटर्जी के हृदय पर अपनी झल्लाहट का असर डालने के लिए, पर चटर्जी का ध्यान दूसरी ओर था। उन्होंने सहज स्वर में कहा—"यह हिन्दुस्तानी तरीका है, बिल्कुल भद्दा और जङ्गली। विलायत में मुलाकात के लिए समय पहले से तै कर लिया जाता है। यदि तुम भी इसी सभ्यरीति को अपनाते तो आज खिन्न होने का अवसर ही नहीं आता।"

सेन अत्यन्त ऊबकर बोले—"मिस बेला अब तो प्रायः मि० सुखमनदास के साथ ही नजर आती हैं—आप शायद इसको नापसन्द भी करते होंगे।"

चटर्जी अनजान-से बोले—"क्या कहा ! मि० सुखमनदास के साथ बेला रहती है । तुम जानते हो, नई मित्रता मे बड़ा वेग रहता है । यह आँधी रुक जायगी । मि० सुखमनदास बहुत बड़ा आदमी है, तीन-तीन मिलों का डायरेक्टर है और सुसंस्कृत भी हैं।"

सेन का यदि वश चलता तो वे बैरिस्टर साहब का मुँह नोच लेते ।

सेन ने कुढकर कहा—"क्या आप हिन्दुस्तानियों पर विश्वास रखते हैं । ये क्या सभ्य और सुसस्कृत कहे जा सकते हैं ! ये खान्दानी जमादार और कुली हैं—धन मिल जाने से क्या होता है ।"

चटर्जी गम्भीर होकर बोले—"यह तुमने ठीक कहा भाई हम ठहरे बङ्गाली और ये हैं हिन्दुस्तानी । इनका आचरण शुद्ध नहीं कहा जा सकता और ये सुसस्कृत भी नहीं कहे जा सकते, पर क्या करूँ भाई, पेट के लिए इनके बीच में जीवनयापन करना पड़ रहा है । मैं तो सोच रहा हूँ कि अवसर मिलते ही बङ्गाल लौट जाऊँगा ।"

बङ्गाल का नाम सुनते ही मि० सेन बेत की तरह काँप उठे । उन्हें याद आ गया अपने विवाहित अनुज का मलेरिया से अकाल निधन और नव-युवती विधवा अनुज-वधू का गले में रस्सी डालकर आत्म-हनन ! इसके बाद उनके सामने उस भयानक डकैती का चित्र उपस्थित हो गया जिस के चलते उनका धन तो गया ही, साथ ही सम्मान को ऐसा धक्का लगा कि देश-त्याग कर देने का केवल एक निश्चित मार्ग उनके सामने शेष रह गया । आस-पास के गाँवों मे बसने वाले बहके हुए मुसलमानों की रसिकता के परिणाम-स्वरूप उन्हें क्या-क्या दिन देखने पड़े, यह बात भी याद आई ।

मि० चटर्जी ने सेन को मौन देखकर कहा—"चुप क्यों लगा गये ।"

सेन दीर्घ श्वास लेकर बोले—"महाशय, स्वर्ण-निर्मित बङ्गभूमि का नाम सुनते ही मुझे तो रुलाई सी आती है—हाय, "धन, धान्य. शस्य भरा, आमादेर एई वसुन्धरा", महाशय, निश्चय ही डी० एल० राय ने बङ्गभूमि की स्तुति में ही यह गौरवगान गाया था, खैर·····।"

टहलते हुए चटर्जी अपने कमरे की ओर चले, पर खिन्न हृदय मि० सेन एक कदम भी आगे बढ़ना नहीं चाहते थे। चटर्जी अत्यन्त प्रान्तभक्ति से आकुल हो रहे थे। उन्होंने सेन को बैठने के लिए बाध्य किया।

सध्या हो गई थी। बिजली की रोशनी से कोठी जगमगा उठी। सेन घड़ी की ओर बार-बार नजर उठाकर मानो मि० चटर्जी को यह बतलाना चाहते थे कि उनके प्राण अब मुक्ति चाहते हैं, पर चटर्जी भक्ति-गद्गद् कंठ से अपने 'सोनार बाँगला' का एक-से-एक बढ़कर गुणगान करते ही जा रहे थे। जैसे-तैसे एक घण्टा समाप्त हो गया और अचानक बेला अपने पिता के कमरे मे आई।

बेला सेन को देखकर डर गई और सहमती हुई कमरे से बाहर जाने लगी तो चटर्जी ने स्नेह-भरे स्वर मे कहा—"बेटी, आओ—मि० सेन हैं! ये तो अपने "प्रान्तीय-बन्धु" हैं, इससे भी बढकर हमारे अति प्रिय बन्धु हैं—क्या इनका परिचय देना होगा?"

प्रान्तीयता की भक्ति ने मि० चटर्जी के मुँह से यह अनावश्यक बात निकलवा दी, यद्यपि पिछले साल से ही सेन उनकी कोठी का एक महत्वपूर्ण कोना बन चुके थे, जिसका ज्ञान चटर्जी को भी बुरी तरह था। बेला का चेहरा फक पड़ गया था वह यह सोच रही थी कि कहीं सेन अपनी गन्दी आदत के अनुसार पिता से मेरी भद्दी-से-भद्दी शिकायत न कर चुका हो। वह सेन की क्षुद्रता से पूर्ण परिचित थी। बेला जोर करके चेहरे पर मुस्कान लाती हुई कुर्सी पर बैठ गई तो मि० सेन ने कहा—"बेला देवी कुछ उदास नजर आती हैं।"

बेला अपने कपड़ो की ओर व्यग्र-दृष्टि से देखती हुई बोली—"नहीं तो—नहीं, मैं तो प्रसन्न हूँ।"

इतना कहकर बेला ने एक बार फिर अपनी साड़ी को सशक भाव से देखा। इससे वह सोचने लगी कि मि० सुखमनदास के साथ उनके बाग मे टहलते रहने के कारण हवा से उसके कपड़ों में अस्त-व्यस्तता आ गई थी और उनका सुथरापन बिखर गया था।

सेन बोले—"मैं एक प्रार्थना करना चाहता हूँ—आप नाराज तो नहीं होंगी?"

इतना कहकर सेन ने एक बार वेला के और एक बार मि० चटर्जी के चेहरे की ओर बड़े आग्रह से देखा—मि० चटर्जी आँखे बन्द किये अपनी 'धन-धान्य शस्यभरा' का ध्यान कर रहे थे और बर्मा चुरुट की सोंधी महक ले रहे थे। वेला का हृदय धक् करके रह गया। वह घबराई-सी बोली—"क्यों? मैं नाराज क्यों होने लगी—आप ··आप ··।"

सेन ने मि० चटर्जी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करके कहना शुरू किया—"आप हिन्दुस्तानियों के सम्पर्क में आना क्यों पसन्द करती हैं—ये सुसंस्कृत नहीं होते।"

प्रान्तीयता की आड़ में मि० सेन अपना उल्लू सीधा करने के लिए कमर कसकर तैयार हो गये।

वेला ने कहा—"इसमें दोष ही क्या है?"

"दोष? दोष? -"चौंककर सेन बोले—"आप भी गजब की भोली-भाली हैं। ये हिन्दुस्तानी संस्कारहीन होते हैं, इन्हें सभ्य नहीं कहा जा सकता—मैं यही कहता हूँ कि··।"

बेला बोली—"महाशय, आप कह क्या रहे हैं—मैं आपकी बातें नहीं समझती।"

चटर्जी अचानक चिल्लाकर बोले—"मि० सेन ठीक ही कह रहे हैं, पर मि० सुखमनदास अच्छे नवयुवक हैं, वे देखने में भी बङ्गालियों से बहुत कुछ मिलते-जुलते··।"

सेन बोले—"यह तो एक ही कही आपने जनाब, "मिलने जुलने" से क्या होता है। यह तो हमारे प्रान्त का अपमान है जो बङ्गाल की लक्ष्मी हिन्दुस्तानियों के सम्पर्क में गौरव माने।"

मि० चटर्जी उत्साहित होकर बोल उठे—"ठीक कह रहे हो—यह आत्म-सम्मान से भी बढ़कर बात है कि हमें प्रान्त के सम्मान का ध्यान हो। मैं तुम्हारे विचारों का आदर करता हूँ।"

बेला भी गरम हो उठी और बोली—"पप्पा, आप के मुँह से ऐसी बात सुनने की आशा मुझे नहीं थी। आपका यह सारा विभव उन्हीं हिन्दुस्तानियों की दया का परिणाम है, जिन्हें बन्द कमरे में बैठकर आप लोग आज कोस रहे हैं—यह कृतघ्नता है।"

सेन बोले—"झूठी बात, यह मि० चटर्जी के गम्भीर ज्ञान की देन है, उन्हें भीख में या दान में यह सम्पत्ति नहीं मिली।"

बेला बोली—"आप मेरे पिता को पथ-भ्रष्ट कर रहे हैं। मैं आप की प्रान्तीयता की भक्ति का हाल जानती हूँ। मैं ऐसी बातों से घृणा करती हूँ—आप अपने इन विषाक्त विचारों को अपने ही तक सीमित रखिए।"

मि० सेन सन्नाटे में आ गये और नरम स्वर में बोले—"तो क्या आप मि० सुखमन का साथ छोड़ना नहीं चाहती?"

'कोई कारण तो नजर नहीं आता'—बेला रूखे स्वर में बोली और उठकर कमरे से बाहर हो गई। बेला ने अपने कमरे में पहुँचकर दरवाजे को जोर से बन्द कर लिया, जिसकी आवाज सुनकर मि० सेन को फिर उनकी डिस्पेप्सिया याद आ गई। वे रुआँसे-से होकर मि० चटर्जी से बोले—"देखा आपने, बेला एक प्रकार से हमारा अपमान कर गई।"

चटर्जी अचानक नींद से चौंककर मानो बोले—"ठीक है, यह अपमान है, पर मैं समझता हूँ, हिन्दुस्तानियों से घृणा करना अपने लिए स्वयम् कब्र खोदना है। मि० सुखमनदास एक उच्च कोटि के भद्र और उच्च-शिक्षित व्यक्ति हैं। वे चार बार विलायत हो आये हैं, फिर जाने का विचार है—इस बार शायद बेला भी जायगी।'

सेन ने विस्मय से आँखे फाड़कर कहा—"बे···ला !!!"

---

(२७)

किशोर ने अपने आपको काँटों से घिरा हुआ पाया ! विचारों का दशन वृश्चिक-दंशन से भी दुःखदायी होता है। वह इस उधेड़-बुन में पड़ गया कि मानव सघर्षशील प्राणी है या सहयोगशील। जीवन के लिए, अस्तित्व के लिए सहयोग चाहिए या संघर्ष। उसने अनुभव किया कि उसके चारों ओर संघर्ष ही सघर्ष है—मानव से लेकर क्षुद्रकीट पतंग तक रात-दिन अस्तित्व के लिए घोर संघर्ष कर रहे हैं। सहयोग के लिए भी तो संघर्ष ही करना पड़ता है। ससार के कोने-कोने में जिस विभीषिका का, अत्यन्त कष्ट का, अभाव का नग्न नृत्य हो रहा है, उससे त्राण पाने के लिए न केवल मानव ही, बल्कि जीवमात्र संघर्ष में प्रवृत्त है। जड़ वृक्ष भी तो अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए आस-पास के पेड़-पौधों का रस अपनी जड़ों से सोखकर एक प्रकार का संघर्ष ही कर रहे हैं। प्रकृति का प्रधान गुण ही संघर्ष है, सहयोग नहीं। जङ्गली पशु-पक्षी का जीवन भी सघर्षमय है। प्रत्येक आकारधारी अपने अस्तित्व को कायम रखने की चिन्ता में सघर्ष कर रहा है। यह विश्व विराट् सघर्ष का एक अखाड़ा मात्र है। संघर्ष की व्यापकता से किशोर बेतरह घबरा उठा।

ब्रह्मचारी जी ने कहा—"बेटा, तुम अपने आपको समझा-बुझाकर भले ही ठग लो, पर जीवन के लिए, अपने अस्तित्व के लिए तुम्हें साँस-साँस पर संघर्ष करना पड़ेगा। यह प्रकृति की प्रेरणा है जिससे तुम बच नहीं सकते। तुम्हें परवश होकर संघर्ष करना पड़ रहा है, पड़ेगा।"

किशोर ने कहा—"देव, तो क्या सहयोग की बात निरी थोथी है।"

ब्रह्मचारी जी विश्वासपूर्वक बोले—"थोथी ही नहीं मूर्खतापूर्ण भी है!"

किशोर चुप लगा गया। वह ब्रह्मचारी जी से बहस, तर्क-वितर्क नहीं करता था, पर उसका हृदय बार-बार यही पूछता रहा कि—"आखिर इतना सघर्ष क्यों!"

इस प्रचड 'क्यों' का उत्तर वह ढूँढ़ नहीं पाता था और विकल होकर

बार-बार अपने गुरुदेव के सामने एक ही प्रश्न को अदल-बदल करके दुहराता जाता था। किशोर को ऐसा विश्वास-सा होने लगा कि यह विराट् 'क्यों' उसके समस्त जीवन को आच्छन्न करके पूर्ण जाग्रत है। संघर्ष की कसौटी पर खरा उतरने के लिए मानव को अपना सर्व स्वान्त कर देना पड़ता है, यह तत्व किशोर से छिपा न था--वह पूर्णाहुति का अवसर देख रहा था, हवन-कुंड के सामने बैठकर। वह कभी समिधा की ओर देखता और कभी पूर्ण ओज में भभकने वाले सर्वभुक् की ओर! कभी उसकी आँखें चौंधिया जातीं, हृदय धड़क उठता पर पीछे लौटने के सभी द्वार एक-एक करके बन्द हो गये थे—उन दरवाजों को तोड़ना असम्भव था, कल्पनातीत था। अस्तित्व के लिए संघर्ष – आखिर अस्तित्व की आवश्यकता ही क्या है? उसके इस प्रश्न का किसी के पास कोई उत्तर न था। क्या अस्तित्व के लिए ही अस्तित्व है?"

सन्ध्या हो रही थी, किशोर अपने विचारों में तल्लीन-सा चुपचाप बैठा था कि अचानक विमल ने उसके कमरे में प्रवेश किया। आश्रम त्याग करने के बाद वह प्रायः एक वर्ष बाद आश्रम में आया था। किशोर ने चौंककर अपने बन्धु को देखा। वह विमल को देखकर ठीक उसी तरह चकित हो गया मानो उसके सामने एकाएक उसकी प्रिय कल्पना स्थूल रूप धारण करके खड़ी हो जाय। आश्रम में कुर्सी आदि का नितान्त अभाव था और विमल था कीमती सूट पहने। किशोर को व्यस्त देखकर विमल हँसकर बोला—"मैं कोई अपरिचित हूँ, किशोर! क्या मैं 'बेल' हूँ जो तोड़ने वाले की गलती या उपेक्षा के चलते बहुत दिनों तक डाल में लटके रहने से फिर नया और कच्चा हो गया!"

"नहीं भाई"—किशोर ने कहा—"मैं सोच रहा था, खैर, जाने दो आओ खाट पर ही बैठो। तुम जानते हो हम कुर्सी वगैरह कहाँ से खरीदें—गरीबों की दुनिया ही निराली होती है।"

विमल अपने कीमती कपड़ों को सँभालकर खाटपर बैठ गया और इधर देखकर बोला—"देख रहा हूँ आश्रम ने कोई विशेष उन्नति नहीं की—सर्वत्र

उदासी ही उदासी नजर आती है। मैं सोच रहा था, अब तक तो इसे महान से महत्तम हो जाना चाहिए था।"

किशोर सरलभाव से बोला—"भाई, दान-खैरात पर यह संस्था चल रही है, साथ ही ब्रह्मचारी जी दिखाऊपन से चिढ़ते हैं। उनका कथन है कि जीवन को सरल बनाओ। जीवन को सरल बनाते-बनाते हम अदरख से सोंठ बन गये, पता नहीं अब क्या होंगे।"

विमल बोला—"आश्रम को कुछ स्थायी आय हो जाय तो फिर यह घनीभूत मनहूसी मिट जाय · मैं सोचता हूँ कि····· ।"

किशोर कुछ उत्कंठित सा होकर बोला—"स्थायी आय ? क्या साधु-महन्तों के गन्दे मठों की तरह आश्रम भी जमीन्दारी या महाजनी · ।"

"नहीं, नहीं"—विमल कहने लगा—"मेरा यह मतलब नहीं था। मै सोचता हूँ कि यदि एकाध लाख या इससे भी अधिक स्थायी कोश···।"

घबराकर किशोर बोला—"भाई, ऐसी बात मुँह से भी मत निकालो। रुपयों से गुरुदेव बहुत ही घबराते हैं। पिछले महीने एक सेठ ने एक मोटी रकम देने की इच्छा की। जब यह समाचार गुरुदेव तक पहुँचा तो वे रोने लगे और कहने लगे कि ये मुझे पथ-भ्रष्ट कर देंगे।"

यदि गुरुदेव चाहें तो दो-चार लाख रुपयों की ढेर एक दिन मे लग जाय। विदेश से 'चेक' आते ही रहते हैं पर वे सधन्यवाद लौटा देते हैं। गुरुदेव का कहना है कि जब तक हम चरम-त्याग नही करेंगे तब तक हमें चरम-सफलता मिल ही नही सकती। त्याग में पहले तो मोह सताता है, अन्त मे अशेष आनन्द की उपलब्धि होती है, इसी आनन्द को वेदान्तवादियों ने ब्रह्म-साक्षात्कार कहा है।"

विमल उदास होकर बोला—"मैं वेदान्त के सिद्धान्तों को नहीं समझ पाता, पर मुझे पता चला है कि आश्रम संकट में है, अतएव मेरा हृदय उमड़ आया। मैने अपने एक धनी मित्र से जब इसकी चर्चा की तो उन्होंने एक-दम दस हजार देने की घोषणा कर दी—!"

किशोर शान्त-स्वर मे बोला—"तुम्हें धन्यवाद है भैया, एक दिन तुमने

आश्रम का जीवन व्यतीत किया था, आज तुम आश्रम के हित में सोचकर ही इसके ऋण से मुक्त हो गये—भगवान तुम्हें ऐसी ही सद्बुद्धि दें !"

विमल ने जब किशोर में किसी तरह की चञ्चलता नहीं पाई तो वह अत्यधिक मर्माहत-सा होकर कहने लगा—"एक प्रार्थना मैं करूँगा, तुम आश्रम की ओर से यह दान स्वीकार कर सकते हो ? अपने पास रुपये रखना और आश्रम के हित में, जब जरूरत पड़े, चुपचाप व्यय करना।"

इस प्रस्ताव से किशोर ऐसा चौंका मानों उसके पैरों के नीचे साँप पड़ गया। वह पसीने से तर हो गया और बोला—"भैया, क्या मैं इस योग्य हूँ कि इतनी बड़ी रकम को सँभालकर रख सकूँगा ? मै डरता हूँ, मनुष्य होने के नाते मुझे विश्वास है कि मै फिसल जाऊँगा—मुझे तो जीवित पिशाच बनाने का तुम उपक्रम मत करो—तुम मेरे बन्धु हो और यह तुम्हारे लिए पाप होगा यदि तुमने अपने हाथो से मुझ सहज-विश्वासी भाई का गला काटा या काटे जाने का समर्थन किया।"

किशोर इतना कहते-कहते खाट से उठकर कमरे मे टहलने लगा, मानों अपने भीतर उठने वाले विचारों के आघात-प्रतिघातों से वह त्राण पाना चाहता हो।

विमल ने एकबार दीर्घ-निश्वास त्यागकर कहा—"किशोर ठोस कर्म-भूमि पर तुम काम करने वाले हो, भावुकता का त्याग करो। केवल हाड़-माँस गला देने से देश का उद्धार नहीं होगा। तुम अपने दिमाग को जितना चिंता-रहित रख सकोगे, वह उतना ही मजबूत बनेगा और तेजी के साथ तुम्हारा और देश का साथ दे सकेगा, गरीबी कभी भी खूबसूरत नहीं होती—तुम लोगों ने जान-बूझकर दरिद्रता को अपने गले का हार बनाया है। मैं तुम्हें नष्ट नहीं होने दूँगा—तुम मेरे भाई हो।"

भावुकता का विरोध करके विमल ने भावुकता को ही अपना अन्यर्थ अस्त्र बनाया। किशोर विमल से बोला—"विमल, स्वामी जी का कहना है कि कोई भी काम छिपाकर नहीं करना चाहिए। आश्रम का जीवन आकाश की तरह खुला हो और··· ।"

"यह गलत बात है, किशोर"—विमल गम्भीर स्वर में बोला—"मैं गुरुदेव की बातों की आलोचना करने का अधिकारी नहीं हूँ, पर वे जिस धरातल पर कार्य कर रहे हैं या करने जा रहे हैं, उसका रूप अत्यन्त गम्भीर है और बिना कूटनीति के वे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते—तुम जानते हो कूटनीति किसे कहते हैं? बेईमानी, विश्वासघात, दुष्टता, नीचता, धूर्तता, चालबाजी आदि शब्द अलग-अलग अर्थ के द्योतक हैं, पर 'कूटनीति' एक ऐसा पूर्ण शब्द है जिसके भीतर ये सारे शब्द अपने पूर्ण अर्थ के साथ निहित हैं—इसी कूटनीति का आश्रय ग्रहण किये बिना तुम और तुम्हारे गुरुदेव एक कदम भी अपने उद्देश्य की ओर नहीं खिसक सकते।"

इतना कहकर किशोर की ओर विमल ठीक उसी तरह देखने लगा जिस तरह बिल्ली अपनी स्थिर आँखों से चूहे की ओर यह जानने के लिए देखती है कि वह उसकी मारं के भीतर कब आता है।

किशोर के दिमाग के भीतर मानो गरम तेल खौलने लगा। वह दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर खाट पर बैठ गया और बोला—"मैं अभी घबरा गया हूँ। मुझे सोचने का अवसर दो।"

विमल प्रसन्न होकर बोला—"सोच लो, पर मैं कहूँगा कि तुम सारी बातों पर गौर करके अपना मत स्थिर करो।"

किशोर बोला—"मैं कल तुम्हारे बँगले पर ही आऊँगा—मैं अकेले रहना चाहता हूँ, मुझे एकान्त में रहकर सोचने दो।"

विमल पुलकित होकर बोला—"अच्छी बात। भैया, यद्यपि सालभर से हम अलग हैं, तथापि मैं प्रार्थना करूँगा कि मुझे अब अधिक दूर मत ठेलो। तुमने मेरा निर्माण किया है—यह बड़ी निर्ममता होगी, यदि तुम्हीं मेरा अन्त भी कर दो।"

किशोर की आँखों में आँसू झलकने लगे, जिसे चालाक विमल ने अपनी सफलता का श्रीगणेश समझा।

विमल के जाने के बाद किशोर दीवार से लगे भगवान् बुद्धदेव के

सौम्य-चित्र के सामने बैठ गया और बोला—"तथागत, मुझे प्रकाश दो, मुझे सत्य का बल दो।"

बैठे-बैठे किशोर को मानों नींद-सी आ गई। वह जब चौंककर उठा तो रात आधी से अधिक व्यतीत हो गई थी। आश्रम पूर्ण निद्रामग्न था और आकाश मे तारे जाग रहे थे। किशोर ने अपने को शान्त और हल्का पाया—इतना हल्का कि वह अपनी ही साँसों के झोके से उड़ सकता था। उसने देखा कि जब तक वह बैठा रहा उसकी आँखें रोती रहीं। वह धीरे-धीरे उठा और कागज का एक टुकड़ा निकालकर लिखने बैठा—

"भैया,

मुझे भय है कि तुम इस पत्र को पढ़कर मुझ पर नाराज होगे पर कर्तव्य भावुकता का विरोधी होता है। मैने सोचा और अच्छी तरह सोचा। मैंने अपने को शान्त और स्थिर रखकर सोचा—यह तुम विश्वास करो।"

इतना लिखकर किशोर रुक गया, वह कलम रखकर फिर सोचने लगा कि अब आगे क्या लिखूँ। वह कुछ देर तक फिर मूर्तिवत् बैठा रहा और किसी निश्चय पर न पहुँचने के कारण विकल होकर लेट गया। नींद आ गई और हृदय-मथन से क्षणिक छुटकारा पाकर वह अधकचरी नींद में सो गया। पिछली रात को जब उसकी आँखे एकाएक खुलीं तो उसने देखा, उसका आधा लिखा पत्र और पेंसिल सिरहाने पड़ी है। वह फिर लिखने बैठ गया। उसने लिखा···"मै सदा तुम्हारा हूँ, पर तुमने जिस दान की चर्चा चलाई है, उसका अधिकारी मै नहीं हूँ।"

अन्तिम वाक्य लिखते समय उसे मन का इतना जोर लगाना पड़ा कि वह थककर अर्ध-मूर्छित-सा हो गया। अपने को स्वस्थ करके उस त्यागी नव-युवक ने पत्र को बिना पढ़े लिफाफे मे बन्द किया, विमल का पता लिखा, और बिना एक क्षण रुके जाकर लेटर-बक्स मे डाल दिया। जिस समय किशोर लेटर-बक्स के मुँह में अपना हाथ डाल रहा था उसका हाथ काँप रहा था और वह अपने हाथ को बार-बार लेटर-बक्स के मुँह से पीछे खींच लेता था। उसकी सत्यप्रियता उसे आगे बढ़ा रही थी और मन पीछे खींच रहा था। लेटर-बक्स मे पत्र डाल देने के बाद किशोर ने जिस आत्मानन्द

का अनुभव किया, उसका वर्णन किसी कुशल लेखक के लिए भी सम्भव नहीं है।

ऊषःकाल की ठण्ढी हवा ने किशोर के पसीने से भरे हुए ललाट को स्पर्श किया—वह धीरे-धीरे आश्रम की ओर लौट आया। वह शराबी की तरह डगमगाता हुआ चल रहा था।

---

(२८)

बैसाख की ज्वालामयी दोपहरी !

पृथ्वी से आकाश तक धूलि का जो बवण्डर हाहाकार करता हुआ गरज रहा था, उसकी भयङ्करता को अपने पैरों के नीचे दबा रही थी आनन्द-हीन हरिहर सिंह के हृदय की आकुलता। उन्होंने तुच्छ ईर्ष्यावश उच्चाधिकारियों के पास दो-तीन पत्र लिखकर किशोर आदि नवयुवकों के सेवा कार्यों की भयानक निन्दा करते हुए उन्हें आतङ्कवादी सिद्ध करने का जो प्रयत्न किया था उसका परिणाम धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा। यद्यपि हरिहर सिंह भूतपूर्व पुलिस दारोगा होने के कारण मानवता की सीमा को पार कर चुके थे, तथापि उनके भीतर, उनके अनजाने, लुक छिपकर जितनी भद्रता, सहृदयता शेष बची थी, उसने अवसर पाकर उन्हें विकल कर रक्खा था।

हरिहर सिंह को जब यह पता चला कि उनके पत्र फाँसी का रूप धारण करके किशोर आदि तेजस्वी नवयुवकों का गला घोटने का उपक्रम कर रहे हैं, तो वे विषाद और भय से काँप उठे। उन्होंने कमला से इस सम्बन्ध में, लज्जा के मारे, कुछ भी नहीं कहा। बैसाख की ज्वालामयी दोपहरी थी। आकाश से मानो आग बरस रही थी। शस्यहीन खेतों से धूलि का बवण्डर भीमवेग से उठ रहा था, दिशायें उस बवण्डर से व्याप्त थीं। हरिहर सिंह अपने अशान्त मन को लिये चुपचाप छाता उठाकर चले तो कमला ने कहा—"इस समय ? देखते नहीं, आग बरस रही है ! कहाँ जा रहे हो ?"

पागल की तरह हरिहर सिंह ने उत्तर दिया—"काम है! रुक नहीं सकता।"

कमला बाधा देती हुई बोली—"अचानक कौन-सा काम याद आ गया—दिन ढल जाने दो।"

'हुँ' कहकर हरिहर सिंह चलते बने। कमला ने देखा कि उसके क्रोधी और हठी पति कच्ची सड़क पर चुपचाप चले जा रहे हैं, उनके हाथ में छाता है, किन्तु उसे वे काम में नहीं ला रहे हैं। धीरे-धीरे हरिहर सिंह धूलि की आँधी में छिपकर आँखों से ओझल हो गये तो आँखे पोंछती हुई कमला घर के भीतर चली गई।

किशोर दौरे से लौट कर आ गया था और तीन चार दिनों से तेज़ बुखार मे चुपचाप पड़ा था—वैद्य जी ने कहा था कि लू लग गई है।

किशोर कराह कर बोला—"माँ, बाबू जी कहाँ हैं?"

कमला ने कहा—"बेटा, वे कहीं गये हैं।"

किशोर आश्चर्य और दुःख भरे स्वर मे बोला—"इस समय गये! ऐसी लू-लपट में! वे अभी तो यहीं थे—अचानक ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा।"

कमला बोली—"आज सवेरे थाने का एक जमादार आया था। उससे कुछ बाते करके वह चला गया। उसी समय से उनकी मानसिक शान्ति हवा हो गई—उन्होने न तो स्नान किया और न भोजन! सिर पर हाथ रक्खे चुपचाप बैठे रहे और अभी उठे तो छाता उठाकर कहीं चले गये"

किशोर करवट बदलता हुआ दुःख भरे स्वर में बोला—"थाने ने बाबू जी को छोड़ दिया, पर इन्होंने अभागे थाने का पिण्ड नहीं छोड़ा।"

एक सप्ताह से किशोर अपने गाँव के आस पास सगठन कर रहा था। शिक्षा और संस्कृति-प्रचार का जो कार्य-भार उसने उठाया था वह चरम-सीमा पर पहुँच रहा था। ब्रह्मचारी जी की इच्छा थी कि ग्राम्य-पुस्तकालयो का सुदृढ़ सङ्गठन किया जाय। इसी उद्देश्य से किशोर अपने इलाके का दौरा कर रहा था—उसके सहकर्मी सहायता कर रहे थे। प्रायः पचास चुने हुए नवयुवक किशोर के साथ थे, वे विभिन्न हल्को मे जाते और वहाँ के

लोकमत को जाग्रत करते, फिर अपनी रिपोर्ट किशोर को आकर दे जाते। यद्यपि अचानक खाट पर पड़ जाने के कारण किशोर सक्रिय हलचलों से अलग हो गया था, पर खाट पर पड़े-पडे वह व्यवस्था की सुचारुता को स्थिर रखने मे पूरी ताकत लगाता था। उसके त्यागी, उत्साही, सुशिक्षित और तेजस्वी नवयुवक साथी आँधी-तूफान की तरह अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होते जाते थे। दो-चार नवयुवक हरिहर सिंह के यहाँ आते-जाते ही रहते और कमला उन्हे अत्यन्त प्रेम से खिला-पिलाकर विदा करती। जब वे नवयुवक उसे 'माता जी' कहते तो उसे ऐसा लगता कि उसका आँचल पवित्र दूध की धाराओं से भींग रहा है। वह प्रत्येक नवयुवक को किशोर ही समझती। रात को भी, असमय मे जिस समय किशोर के सहकर्मी आ जाते, कमला उन्हें गरमा-गरम भोजन खिलाती और मातृत्व का प्रसाद दिये बिना जाने नहीं देती—वे थके, विकल, कार्यव्यस्त नवयुवक कमला के स्नेह-यत्न से अत्यन्त तृप्त होकर बार-बार उसके चरणों को स्पर्श करते और आँखो मे स्नेह-नीर भरकर विदा होते समय कहते—"माता जी, आशीर्वाद दो—इस जीवन-संग्राम मे हम विजयी बने।"

कमला रुद्ध कण्ठ से कहती—"बेटा, माता के दूध की लाज रखना।"

किशोर खाट पर पड़ा-पड़ा अपनी माता का मातृत्व देखता और रो देता।"

इधर महीनों से किशोर अपने गाँव के ही आसपास दौरा करता रहा और प्रायः उसे घर की रोटी का टुकडा नसीब होता। हरिहर सिंह कभी तो उत्साहित होकर नवयुवकों से स्नेह-भरी बाते करते, और सेवा करते, कभी उनकी आलोचना करते हुए उन्हें आतङ्कवादी, डकैत, छिछोरा आदि कह डालते। किशोर अपने पिता को पहचानता था, उनकी बातों को वह विशेष महत्व न देता, पर कमला झुँझलाकर अपना मुँह पीट लेती। वह अनन्यो-पाय थी। किशोर अपनी स्नेहमयी जननी को समझा-बुझाकर शान्त करता। जब उस भयङ्कर दोपहरी को हरिहर सिंह अचानक चले गये तो किशोर को

थोड़ा-सा आश्चर्य जरूर हुआ, पर वह चुप लगा गया। वह अपने पिता जी का स्वभाव भलीभाँति जानता था।

हरिहर सिंह उन्मत्त-से सीधे खेतों से होकर चले और पक्की सड़क पर पहुँचकर यह सोचने के लिए रुक गए कि उन्हें कहाँ जाना चाहिए, थाने पर या सीधे शहर बड़े पुलिस-साहब की सेवा में। वह कुछ निश्चय नहीं कर सके। सड़क की दोनों ओर महुआ, नीम, बड, पीपल, तूत आदि के सघन वृक्ष कतार में लगे हुए थे, जिनमें नये-नये कोमल पत्ते अपनी स्निग्ध छाया नीचे डालकर पथिकों को अपनी मूक पुकार से रुकने का आग्रह करते थे। हरिहर सिंह एक घने नीम-वृक्ष की छाया में बैठ चिन्ता में निमग्न हो गये। मन्द-मन्थर गति से एक लदी हुई बैलगाड़ी आई और चली गई, एक बड़ी-सी मोटर तीर की तरह एक झपट्टे में पार हो गई। बकरियों का झुंड आया और वह भी चला गया। हवा के झोंकों से धूल उड़-उड़कर हरिहर सिंह पर बरस रही थी और नीम की डाली पर बैठकर एक कौवा अकारण काँव-काँव कर रहा था। दीर्घ-श्वास लेकर हरिहर सिंह उठे और चल पड़े। सड़क की दोनों ओर उजाड़ खेत और खेतों में कहीं-कहीं ऊँचे लाल वृक्ष नजर आते थे।

थाने के नये दारोगा थे मजहरअली। पुराने नवयुवक दारोगा बदल गये थे और उनकी जगह पर आये थे मजहर अली। ये अपने क्रूर कर्मों के चलते जनता में काफी कुख्यात हो चुके थे, पर पुलिस-विभाग में उनका यश दिन दूना, रात चौगुना फैल रहा था। दारोगा जी अधबूढ़े थे। शायद ही किसी ने उन्हें हँसते देखा होगा। वे सदा दाँत पीसते रहते और किंवदन्ती तो यह थी कि मजहर अली ने अपनी पहली स्त्री को केवल इसीलिए पीटते-पीटते प्रायः मार ही डाला था कि उसने ठण्डी चाय देकर अपनी लापरवाही का ढीठ परिचय उस समय दिया जब खान साहब किसी गम्भीर मुकदमे की जाँच में, पिछली रात तक, बन्द कमरे में तथाकथित अपराधियों के रिश्ते-दारों से विचार-विनिमय कर रहे थे।

मजहर खाँ से हरिहर सिंह का पुराना परिचय था, पर उन्हें शायद यह

मालूम नहीं था कि परिचय ऐसी गाँठ है जिसे प्रतिक्षण कसते रहना चाहिए, तनिक भी लापरवाही हुई कि वह ढीली पड़ी।

धड़कते हुए हृदय से हरिहर सिंह ने थाने मे प्रवेश किया—दारोगा साहब अपनी मेज के सामने बैठे गालियाँ बक रहे थे। हरिहर सिंह सलाम करके जब कुर्सी पर बैठने का उपक्रम करने लगे तो दारोगा दाँत पीसकर बोले—"यह क्लब नहीं है जनाब, थाना है। जो कहना हो कहिए और रास्ता लीजिए।"

हरिहर सिंह के सिर पर मानों वज्रपात हुआ। उनका मुँह सूख गया। वे बोले—"आपने शायद मुझे नहीं पहचाना—मैं · ।"

"पहचानता क्यों नहीं"—दारोगा रोष भरे स्वर मे बोला—"बकवास करने का फालतू समय मेरे पास नहीं है। आप क्या कहना चाहते हैं? कहिए।"

हरिहर सिंह डर गये और विनय भरे स्वर मे बोले—'मै किसी निजी-विशेष प्रयोजन से आया था। आप शायद बहुत ही व्यस्त हैं।"

दारोगा झल्ला उठा और मेज पर हाथ पटककर बोला—"हरिहर बाबू, आप अगर मेरे पुराने दोस्तों मे से नहीं होते तो मै आपको निकलवा देता। मुझे फुर्सत नही है—आप जा सकते हैं।"

यह याद आते ही कि वे भी भूतपूर्व दारोगा हैं, हरिहर सिंह का खून अचानक गरम हो गया। वे भी पुलिस की शान से ही बोले--"आप गलती कर रहे हैं जनाब, मै भी सरकार की उसी कुर्सी पर बैठ चुका हूँ जिस पर आप इस समय बैठे हुए हैं—दो भले आदमियों में इस तरह की बातचीत को मैं शोभनीय नहीं समझता।"

दारोगा इस तेजस्वितापूर्ण उत्तर से घबरा उठा, पर अपनी घबराहट को सफाई के साथ छिपाकर बोला—"मैं कहता हूँ, आप मुझे काम करने दे—मैं·····।'

"मैं जा रहा हूँ'—हरिहर सिंह ने गुर्राकर कहा—"इस उम्र मे भी आपको भलमनसाहत नही आई तो अब आशा भी नहीं है।"

दारोगा का चेहरा फक पड़ गया और हरिहर सिंह तत्काल थाने से

बाहर यह कहते हुए निकले—"तुम्हें धन्यवाद है मजहर भाई, आखिर तुमने मेरी आँखे खोल दीं।" हरिहर सिंह का हृदय आत्मतोषपूर्ण अनिवर्चनीय आनन्द से भर गया। वे इस तरह तनकर चलने लगे मानों उनका सिर आसमान से टकरा रहा हो, उन्होंने अपने को एकाएक पूर्ण समझा।

भावावेश मे हरिहर सिंह घर की ओर चले।'धूप चाँदनी-सी उन्हें जान पड़ी और लू मानों वसन्त का मलयानिल हो। वे उमङ्ग में, आवेश में, इस तरह चले जा रहे थे मानों उन्होंने आपने आप को प्राप्त कर लिया हो। वे जानते थे कि उनके पत्रों का परिणाम क्या होगा और दारोगा का क्रोध उस परिणाम मे कितनी तिक्तता मिला देगा, पर वे पूरी तरह परिणाम भोगने के लिए सन्नद्ध हो गये। वे किशोर का बलिदान और उसके महत्वपूर्ण कार्यों के सत्यानाश का दृश्य अपनी आँखों से देखने के लिए कमर कसकर प्रस्तुत हो गये—निराश व्यक्ति, जिसकी आशा समूल नष्ट हो गई हो, भयङ्कर हो उठता है, निर्मोही हो जाता है, अगर, मगर, किन्तु, परन्तु के मोह से छुटकारा पा जाने के कारण पत्थर का हो जाता है।

घर पहुँचते ही हरिहर सिंह का हृदय जरा-सा धड़का—दूर से ही अपने घर को देखते ही वे घबरा गये, पर फिर उन्होंने अपने को स्थिर किया।"

किशोर यद्यपि बीमार था, तथापि वह अपने आपको एक-न-एक काम मे उलझाये रखना पसन्द करता था। उसकी इसी प्रवृत्ति ने उसे घोर कर्मठ बना डाला था। वह जब बेकार रहता तो उसके अतीत की स्मृतियाँ उसकी बेकारी के भीतर से झाँकने लगतीं, और उनके उस रूप को देखना किशोर कभी भी पसन्द नहीं करता था।

हरिहर सिंह अचानक किशोर के सामने विक्षिप्त की तरह खड़े हो गये। वे धूप से इतना तप्त हो गए थे कि उनके कपडों से गरम भाप-सी निकल रही थी। वे धूलि से भरे हुए थे। किशोर अपने दो-तीन साथियों को कुछ आवश्यक सलाह दे रहा था और कमला चुपचाप एक किनारे बैठी थी। सब हरिहर सिंह की ओर भीत दृष्टि से देखने लगे। सभी चुप हो रहे। निस्तब्धता भंग करते हुए किशोर ने कहा—"बाबू जी आप कहाँ गये थे—इस समय!"

हरिहर सिंह आवेश में आकर बोले—"बेटा, मैंने पाप किया है, प्रायश्चित असम्भव है—मेरा हृदय जल रहा है, शान्ति नहीं मिलती।"

किशोर घबराया-सा उठ बैठा और बोला—"बाबू जी, आपको सर्वान्तरयामी प्रभु से क्षमा याचना करनी चाहिए, वे ही आप को शान्ति प्रदान करेंगे।"

हरिहर सिंह ने कहा—"मैं ईश्वर का स्मरण करते भी डर जाता हूँ; वे न्यायी हैं और न्याय कभी भी प्रिय या सुन्दर नहीं होता बेटा!"

"वह प्रिय या सुन्दर न हो"—किशोर बोला—"पर दयापूर्ण अवश्य कहा जा सकता है। आप प्रत्यक्ष को देखते हैं और सुन्दर-असुन्दर का निर्णय करते है, पर ध्यान रखना चाहिए परिणाम पर—न्याय को 'कठोर कृपा' के रूप में स्वीकार करना चाहिए! बाबू जी, जो न्याय से आँख चुराता है वह अपने भविष्य को नष्ट कर डालता है।"

हरिहर सिंह गम्भीर होकर बोले—"अब मैं आँख नहीं चुराऊँगा, बेटा! मै उस सर्वोच्च सत्ता के सामने आत्म-समर्पण कर दूँगा—मुझे विश्वास है, वह क्षमाशीलता का उपयोग करेगा।"

किशोर प्रसन्न होकर बोला—"आपसे ऐसी ही आशा थी बाबू जी।"

हरिहर सिंह पागल की तरह उलटे पाँव कोठरी से बाहर होगए। जब आधी रात हो गई तो कमला ने रुआसी-सी होकर किशोर से कहा—"बेटा, वे कहाँ चले गये, पता नहीं!"

किशोर का हृदय धड़क उठा। वह जानता था, उसकी अनुभवी आँखे जानती थीं कि भावावेश में मानव क्या नहीं कर बैठता। उसे पता नहीं था कि किस घटना ने उसके पिता को इतना मथ डाला है। वह खाट से उठा, पर कमला ने उठने से रोक दिया।

किशोर ने माता को संतोष देने के लिए कहा—"माँ, शायद शहर की ओर गए होंगे। मै सोचता हूँ ···!"

कमला विकल होकर बोली—"नहीं बेटा, मेरा हृदय धड़कता है। वे बहुत ही विकल और आवेश-ग्रस्त-से दिखलाई पड़ते थे। मुझे भय है कि झोंक मे आकर वे कुछ अनर्थ न कर बैठे। पता नहीं क्यों····!"

"माँ, मानव बहुत ही रहस्यपूर्ण प्राणी है—"किशोर बोला—"उसके मन की जामातलाशी नहीं ली जा सकती। स्वयम् मानव भी नहीं जानता कि उसके भीतर क्या-क्या रहस्य छिपे हुए हैं।"

कमला - मितभाषिणी कमला—चुप लगा गई, पर उसका हृदय विकल होकर रोता रहा। कभी वह अपने पुत्र की ओर देखती और कभी पति की ओर, पर उस साध्वी का हृदय अपने आराध्यदेव के लिए विकल हो रहा था।

किशोर ने अपने साथियों को भी चुपके से कह दिया कि वे उसके पिता का पता लगावें, पर जब एक सप्ताह तक हरिहर सिंह का कोई पता न चला तो किशोर का धैर्य भी छूट गया। उसने अपनी माँ से कुछ नहीं कहा—कमला मानो पथरा गई थी, वह चुप थी, बोलना ही भूल गई थी। यन्त्र-चालित पुतली की तरह गृह कर्म करती जाती थी।

---

(२६)

धीरे-धीरे मजदूरों का विश्वास विमल और उसके कामरेडों पर से उठता गया, क्योंकि उनके कष्टों का अन्त नजर नहीं आता था। मैनेजर मि० सेनगुप्ता का रुख भी अपमानजनक होता गया। बात-बात पर कुली निकाले जाने लगे और ऐसे कुलियों को बुरी तरह सताया जाने लगा जो कुछ तेजस्वी जान पड़ते थे। मैनेजर ने अपने हाथों से जब दो कुलियों को पीट दिया तो उनमें भयानक रोष फैल गया। उस रोष के भीतर भय और अव्यवस्था भी थी। कामरेड आजाद और कामरेड रमेश ने अपने ही जैसे साथियों से मन्त्रणा करके यह निश्चय किया कि यदि कुली थोड़ा-सा उपद्रव कर दे तो काम बने। मि० सुखमन दास भी धीरे-धीरे देने-लेने से हाथ खीच रहे थे और इन कामरेडों से उपेक्षापूर्ण व्यवहार करते थे। क्रान्ति के इन अग्रदूतों का रोष सुखमन दास के प्रतिकूल भड़क गया। रमेश ने विमल से कहा—"मित्र, मैं कुलियो को समझाकर हार गया पर

उनमें दृढ़ता नहीं आती। वे हड़ताल करने की इच्छा तो प्रकट करते हैं, पर अपनी हड़ताल को सफल बनाने के लिए काफी दिनों तक अड़े रहना पसन्द नहीं करते—कहते हैं, खायेंगे क्या ?"

सोचकर आजाद बोला—"किशोर कहाँ है, वह यदि हमारा साथ दे तो फिर सफलता मिल जायगी और इस बार कम से कम पन्द्रह-बीस हजार सुखमन दास से वसूल किए जायें। सेठ एक ही छँटा हुआ है, अब तो सीधे मुँह बात भी नहीं करता।"

कामरेड आजाद बोले—"साम्यवाद का यही सिद्धान्त है कि अवसर से लाभ उठाना चाहिए। कामरेड लेनिन ने रूस की मदुंमशुमारी में काम करना इसीलिए स्वीकार किया था कि उसे जनता के सम्पर्क में आने का अवसर मिल रहा था, जो दूसरी तरह संभव न था।"

विमल ने जगदीश की बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। वह आजाद से बोला—"मैं तो किशोर का अभाव अनुभव करता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि उसकी कार्य-पद्धति बहुत ही ठोस है। मजदूरों में जो आज सतेज जाग्रति है, वह किशोर के प्रयत्नों का ही फल है और उनमें जो अव्यवस्था है वह हमारी नालायकियों के चलते। हमने आज तक मजदूरों की मूर्खता से ही लाभ उठाया। यह एक अवसर है कि उनका कुछ हित भी करें, नहीं तो समाज हमें सभ्य डकैत कहकर दुत्कार देगा।"

कामरेड रमेश ने मेज पर हाथ पटककर कहा—"समाज ! समाज कहते किसे हैं ! समाज में मूर्खों की अधिकता होती है और मूर्खों पर शासन धूर्तता से किया जाता है। यदि मूर्खों की राय से हम आचरण करेंगे तो परिणाम भयंकर होगा।"

लेनिन, स्टालिन, मोलोटोव, लिटविनाफ आदि के वाक्य कामरेड आजाद सोच रहा था। जब उसे एक भी आर्ष प्रमाण नहीं मिला तो अपने ऊपर झुँझलाकर बोला—"हम क्रान्ति के अग्रदूत हैं, हमें कोमल भावनाओं का शिकार नहीं होना चाहिए। कामरेड लेनिन संगीत से दूर भागते थे, क्योंकि संगीत उनकी भावनाओं में कोमलता पैदा कर देता था और वे थे क्रूरकर्मी। क्रान्ति में दया-ममता को स्थान नहीं देना चाहिए।"

विमल बोला- "दया, ममता की बात नही है, भलमनसाहत, ईमानदारी और सच्चाई के विषय मे 'तुम क्या सोचते हो—क्या तुम्हारी क्रान्ति मे इनकी आवश्यकता भी नहीं है ?"

आजाद विज्ञ की तरह सिर हिलाकर बोला—"बिल्कुल नही, कामरेड। हम उद्देश्य की सिद्धि को ही प्रधानता देते हैं, सिद्धान्तो का कोई महत्व हमारे सामने नहीं है। हमारा उद्देश्य जिन उपायो से सिद्ध होता हो उन्ही उपायों को हम काम मे लावेंगे—उपायो के औचित्य या अनौचित्य की ओर ध्यान देना हम अपनी कमजोरी समझते हैं।"

विमल सिहर उठा और बोला—"यह तो बहुत ही घृणित तरीका है मित्र! मै ऐसे गलित विचारो का साथ नही दूँगा—मै चाहता हूँ कि मानवीय सद्गुणों को प्रथम स्थान देना चाहिए। मै मानवता से रहित मानव के अभ्युदय की कल्पना भी नही कर सकता।"

आजाद बेशर्म की तरह दाँत निपोड़कर बोला—"रूसी साम्यवाद·····।"

विमल सहसा उत्तेजित होकर कहने लगा—"तुम कुछ भी नहीं जानते। यदि तुम्हारे ऐसे अधकचरे व्यक्तियो को काम करने की पूरी स्वतन्त्रता मिले तो संसार को रसातल जाते देर नहीं लग सकती। तुम समाज के लिए अभिशाप हो—मै ठीक कह रहा हूँ। मैं तुम्हारी पार्टी के प्रति निराश होगया हूँ—तुम जैसों के गिरोह से जो दल बनेगा वह···· ·।"

आजाद क्रोध मे पागल होकर बोला—"तुम विश्वासघात कर रहे हो पार्टी के साथ, तुम्हें इसका दंड भुगतना होगा। समाजवाद के उद्देश्यों के प्रतिकूल आचरण करते हुए तुम पार्टी में नही रह सकते। मैं व्यक्ति से पार्टी को विशेष महत्व देता हूँ।"

विमल ने आत्मविश्वासपूर्वक कहा—"जहन्नुम मे जाय तुम्हारी पार्टी। मै सत्य का साथ नहीं छोड़ूँगा। आज तक तुमने जैसा चाहा, मैने किया, पर अब मुझसे मजदूरों का बलिदान करते नहीं बनेगा। इन भोलेभाले गरीबों का विश्वास यदि नष्ट हुआ तो उनकी आह से हम खाक में मिल जायँगे।"

आजाद नरम होकर कहने लगा—"यह कौन कहता है कि मजदूरों का तुम गला काटो, पर पार्टी के उद्देश्यो की रक्षा · ·।"

"पार्टी के उद्देश्यों की रक्षा"—विमल व्यंग्यभरे स्वर में कहने लगा—"हमने खूब की। बात-बात पर मिलवालों से रुपये एेठकर मजदूरो को धूल फॅकाते रहे। पार्टी को क्या लाभ हुआ हमसे? हम पचीसो हजार रुपये लूट कर अपनी जेब भरते रहे और मजदूरो को उनके भाग्य पर छोड़ दिया गया। अब मैं ऐसे कामो से हाथ खीच लेने मे ही अपना और पार्टी का परमहित समझता हूँ।"

आजाद डरकर बोला—"तो क्या हमारी मित्रता समाप्त हो गई, भैया।"

"मित्रता?"—विमल बोला—"हमारी मित्रता डकैतों की मित्रता थी, जो दूसरों को लूटने के लिए ही कायम रहती है। यह तो तुम्हारी सहायता होगी यदि तुम मुझे अब भी अपना मित्र समझो। मै बहुत ही तङ्ग आ गया। आज मजदूरों के कष्टों का अन्त नही है, पर तुम चाहते हो कि सुखमनदास से फिर कुछ रुपये वसूले जायॅ। यह भी कोई भलमनसाहत है। सभाओं में भाषण देते हो, लम्बी-लम्बी दलीलों से साम्यवाद के सिद्धातों की सार्थकता सिद्ध करते हो और मेरे कमरे में बैठकर सुखमनदास से रुपये लूटने की योजना बनाते हो—सोचो तो यह कितनी बुरी बात है। मजदूर जायॅ चूल्हें में या पार्टी जाय भाड़ मे, तुम लोगों को रुपए चाहिए। इस नारकीय लूट की कहीं सीमा भी है या यह अनन्त काल तक तुम्हारे द्वारा चालू रक्खी जायगी।"

ऐसी बातें सुनकर कामरेडों को भड़क उठना चाहिए था, क्योंकि उनमे सहनशीलता का अभाव था, क्योकि वे सहनशीलता को साम्यवादी दृष्टि-कोण से कमजोरी कहते थे, पर रमेश और आजाद ने विचित्र सहनशीलता का परिचय दिया वे दोनों इस प्रयत्न मे लगे कि विमल का गरम दिमाग किसी प्रकार भी शीतल हो। रमेश बोला—"मित्रो मे झगड़ा होना स्वाभाविक है। एक बार लेनिन और हमारे कामरेड स्तालिन मे भी झगड़ा हो गया था, पर मूलसिद्धान्त के दोनों कायल थे। हम भी जब मित्र हैं तो फिर झगड़ा होना स्वाभाविक है।"

विमल बोला—"झगड़ा तो नहीं है भैया, यह तो मूल-सिद्धान्त मे ही हमारा मतभेद है। तुम लोग धोखाधड़ी का व्यवसाय कर रहे हो और मैं

अब तुम्हारा साथ देना नहीं चाहता। मैं अब नीचता को अधिक प्रश्रय नहीं देना चाहता—मुझे क्षमा करो।"

विमल की बातें सुनकर दोनों कामरेड उदास होकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। कुछ क्षण कमरे में सन्नाटा रहा, मानों सभी एकाएक बोलना भूल गए। सबसे पहले जँभाई लेकर आजाद बोला—"तो अब हम चले, फिर कल इसी समय दर्शन करेंगे—तुम इस समय उत्तेजित हो गये हो, क्रोध शान्त होने दो, तब नये सिरे से हम अपने कार्यक्रम पर विचार करेंगे।"

विमल ने कोई उत्तर नहीं दिया। जब दोनों कामरेड झूमते-झामते चलते बने तो विमल ने मेज के सामने बैठकर लिखना शुरू किया। लिखते-लिखते दिन समाप्त हो गया। उसने प्रायः २० पृष्ठों का एक पत्र ब्रह्मचारी जी के नाम लिखा और उस पत्र को लिफाफे में बन्द करके अपने नौकर को देकर आश्रम का पता बतला दिया। एक साँस मे इतना काम समाप्त करके विमल स्नान-घर में घुसा और बहुत देर तक स्नान करता रहा।

बिजली जलाकर नौकर चला गया और खिन्न-हृदय विमल कुर्सी पर बैठकर एक पुस्तक पढ़ने लगा। इसी समय ब्रह्मचारी जी ने कमरे में प्रवेश किया।"

अचानक चौंककर विमल ब्रह्मचारी जी के चरणों पर जब गिरा तो बीच मे ही रोक कर उन्होंने उसे हृदय से लगाते हुए कहा—"बेटा, मेरा चश्मा खो गया है। मै तुम्हारा पत्र पढ़ नहीं सका। बड़ी दया होगी यदि तुम स्वयम् उसे पढ़कर मुझे सुना दो।"

विमल का चेहरा लज्जा के मारे मुर्दे-जैसा हो गया। उसने अपने पत्र में अपने एक-एक पाप को साफ-साफ लिखकर प्रायश्चित के लिए अपने गुरुदेव से आज्ञा माँगी थी।"

विमल विकल होकर बोला—"गुरुदेव, यह दण्ड न दिया जाय—मैं पैरों पड़ता हूँ।"

ब्रह्मचारी जी विमल के माथे पर हाथ रखकर बोले—"अपने को सबल बनाओ—यही तुम्हारा प्रायश्चित्त है बेटा, अपने पत्र को पढ़कर मुझे सुना दो—बस।"

विमल ने काँपते हुए स्वर में पत्र पढ़ना आरम्भ किया। आँखे बन्द किये ब्रह्मचारी जी सुनते रहे, पर उनकी दोनों आँखों से गङ्गा-जमुना की धारायें बह रही थीं और उन पवित्र धाराओं मे विमल के पाप धीरे-धीरे धुल रहे थे।

पत्र जब समाप्त हो गया तो ब्रह्मचारी जी उठे और विमल का हाथ पकड़ कर बोले—"कोठी के इन सामानों को, यदि तुम्हारे हों तो, घर भेजवा दो और चलो मेरे साथ। आश्रम तुम्हारे अभाव मे जीवनहीन-सा हो रहा है—वह तुम्हें बुला रहा है, चलो।"

विमल बिना एक शब्द बोले ब्रह्मचारी जी के साथ हो गया। चलते समय उसने नौकरों से कह दिया कि वे कोठी की रक्षा करें और जब उसके बड़े भाई आ जायँ तो सारे सामान उन्हें देकर वे छुट्टी ले ले।"

रात काफी हो गई थी। आगे-आगे ब्रह्मचारी जी थे और पीछे-पीछे विमल चल रहा था—प्रकाश और छाया की तरह। दोनों चुप थे, हवा चुप थी, आकाश के तारे चुप थे और रात भी चुप थी। इस असीम नीरवता के बीच में दोनों मानव चुपचाप जा रहे थे, उस सुनसान सड़क पर दोनों पार्श्व में पंक्ति-बद्ध वृक्ष चुपचाप खड़े थे।

---

(३०)

कमला बीमार पड़ी। उसके शरीर ने जिसे वह पैंतालिस वर्षों से लगातार ढो रही थी—विद्रोह आरम्भ कर दिया। गर्मी भयङ्कर रूप से पड़ रही थी। रात दिन लू चला करती थी और धूलि का बवंडर रह-रहकर आकाश को ढक लेता था। बिजली की तरह चमकती हुई धूप आग बरसाती थी तथा हवा के तप्त झोंको से वृक्ष के नये-नये पत्ते भी झुलस से गये थे। शस्यहीन उजाड़ खेतों मे धूल उड़ा करती थी। प्रकृति का रूप डरावना और रूखा-सूखा था।

दिन समाप्त हो गया और रात भी अधिक व्यतीत हो गई। दूर-दूर गाँवों का दौरा करके किशोर हारा-थका-सा घर लौटा। वह दिन भर गाँवों में घूम फिर कर सगठन करता और रात को घर लौट आता। न तो कमला कभी अपने पति की चर्चा अपने पुत्र के सामने करती और न किशोर को ही हिम्मत पड़ती कि वह अपनी गम्भीर माँ के सामने पिता की कोई चर्चा करे। किशोर अपनी माँ के हृदय की निगूढ वेदना का अनुभव करता था और बहुत ही विकल होकर अपनी चुप्पी को कायम रखने का प्रयत्न करता था। कमला जब तक स्वस्थ रही अपने आपको रात-दिन कामों में उलझाये रही, पर जब शरीर उपवास और पीड़ा से जर्जर होकर खाट पर पड़ा तो उसकी छिपी हुई वेदना हजार-हजार श्रोतों से फूट पड़ी। वह चुप-चाप आँख बन्द करके रोती और जब किशोर को अपने सामने पाती तो रुलाई को मुस्कान मे बदलकर पुत्र को प्रसन्न करने का प्रयत्न करती थी। किशोर अपनी माता का मुस्कान से भरा हुआ चेहरा देखकर रो देता, क्योंकि वह जानता था कि ऐसी मुस्कान के भीतर कितनी मर्मान्तक पीड़ा छिपी होती है। माता और पुत्र—दोनों एक दूसरे की पीड़ा की कल्पना करते थे, पर दोनों अपने-अपने मनोभावों को छिपाने का ही विकल प्रयत्न करते ही रहते थे।

हाँ, दिन समाप्त हो गया और रात भी अधिक व्यतीत हो गई। किशोर के निरानन्दपूर्ण घर मे केवल कमला थी और एक थी बहरी बुढिया महरी। किशोर थका-सा लौटा तो कमला ने कराहकर महरी से कहा—"अरी देख तो कौन है?" किशोर का पद-शब्द उसके पिता के पद-शब्द से कुछ-कुछ मिलता था। कमला का हृदय अचानक धड़क उठा, यह सोच-कर कि कहीं उसके पति देव तो नहीं आये।

महरी ने कहा—"छोटे बाबू हैं।"

कमला ने दीर्घश्वास ली और करवट बदलकर दीवाल की ओर पहुँच कर लेट गई। धीरे-धीरे किशोर माँ के निकट आया और बोला—"तबियत कैसी है माँ, आज लौटने में देर हो गई।"

कमला स्नेहभरे स्वर में बोली—"अब अच्छी होगयी बेटा, कल परसों तक और ठीक हो जाऊँगी।"

किशोर माँ को प्रसन्न करने के लिए कुछ ऐसी बात कहना चाहता था जो हास्योत्पादक हो, पर उसे एक भी ऐसी बात याद नहीं आई। उसको चुप देखकर कमला ने उठने का उपक्रम करके कहा—"क्या रात अधिक होगई? अब मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे आश्रम में पहुँचा दो। अकेलापन बुरा होता है, यहाँ कोई काम भी तो नहीं है।"

किशोर के हृदय पर मानो किसी ने कसकर एक घूँसा मारा। वह जानता था कि उसकी माँ घर छोड़कर क्यों आश्रम का जीवन पसन्द करने लगी है। किशोर ने कहा—"माँ, यहाँ कोई कष्ट तो नहीं है—बाबूजी • • •।"

उसके मुँह से अचानक 'बाबूजी' का नाम निकल आया। वह घबरा उठा। कमला बोली—"बेटा, उनकी चर्चा क्यों करते हो, वे हमसे दुःखी होकर ही चले गये—न जाने कौन-सा अपराध हमसे हुआ।"

इतना बोलते-बोलते कमला का गला भर आया। माँ को पीड़ा पहुँचाने के कारण किशोर भी छटपटा उठा। अपने को स्वस्थ करके वह फिर बोला—"माँ, बाबूजी आ जायँगे—मैं अच्छी तरह समझता हूँ—वे शीघ्र ही आ जायँगे।"

कमला ने कराहकर कहा—"बेटा, यह उनका घर है आजायँ, मैं कब चाहती हूँ कि वे न आवें, पर हृदय बैठा जाता है—जीवन से उदासी-सी होगयी है। खैर, उन बातों को जाने दो—बोलो, आराम हो जाने पर तुम मुझे आश्रम में ले चलोगे या नहीं। मैं समझती हूँ, मेरे लिए अब आश्रम ही सब से उपयुक्त स्थान है।"

घर का एकाकीपन कमला को काटे खाता था। जिस घर में वह लगातार तीस वर्ष अपने पति के साथ रही, उसी घर का प्रत्येक अणु उसके सुखद अतीत की याद लिए मानो सदा जाग रहा था। कमला घर के जिस कोने को देखती, घर की जिस वस्तु को देखती उसका अतीत वहीं से पुकार उठता जो उसके लिए असह्य था। वह अपने को भुलाये रखना चाहती थी, पर एक बार अपने को फुसलाने का प्रयत्न करती तो हजार बार

उसका पागलपन उसके सामने उसके सुख—सोहाग के अनगिनत लुभावने चित्र स्पष्ट कर देता। मानसिक मथन से विकल होकर कमला अपने आप को विविध कार्य-कलाप मे लीन किये रहती, पर कभी न समाप्त होने वाले काम देखते-देखते समाप्त हो जाते और वह साध्वी फिर कर्मशून्य स्थिति मे पहुँचकर विकल हो उठती। कमला को ऐसा लगता कि फुर्सत के रूप में भयानक दण्ड उसे दुर्दैव की ओर से मिल रहा है।

किशोर ने सहृदयतापूर्वक माता की मानसिक पीड़ा का अनुभव किया—वह तब से अपनी स्नेहमयी जननी की ऊपर से शान्त दिखलाई पड़नेवाली भयानक पीड़ा का अनुभव करता आरहा था, जब से उसे त्यागकर गृह-स्वामी चले गये थे। कमला की कठोर गम्भीरता के भीतर से उसकी मानसिक व्यथा फूटी पड़ती थी, पर नारीत्व की महान् महिमा उस व्यथा को अपने पैरों से दबाकर वातावरण को प्रसन्न तथा स्वाभाविक रूप में रखने का दुष्कर प्रयत्न करती ही रहती थी। इस घोर सघर्ष का पता किशोर को था, वह इस ओर से उदासीन न था, पर अनन्योपाय होकर वह नवयुवक अपनी असमर्थता को ही लेकर रोया करता था।"

कमला के निकट बैठते हुए किशोर ने कहा—"माँ, आश्रम में रहकर या करोगी—घर का क्या हाल होगा?"

कमला बोली—"यह घर, घर नहीं रह गया—यह तो मिट्टी का एक ढेर मात्र है। मिट्टी का मोह तो त्यागना ही होगा, मेरे लाल। यह किसी का भी न हुआ। बोलते-बोलते कमला की निगूढ वेदना वाष्प-सी बनकर उसके कण्ठ में भर गई।"

किशोर ने भी करुणा के आवेग को रोकते हुए कहा—"पिता जी आ जायँगे माँ, इतना अधीर होने से तो मेरा संचित धैर्य भी छूट जाता है। तुम मुझे सदा ही "फौलादी पुतला" बनने का उपदेश दिया, पर आज तुम स्वयम् मुझे मोम का पुतला बना रही हो।"

"नहीं बेटा"—कमला बोली—"दूसरों की तरह तुमने भी मुझे गलत समझा।"

"भी" पर विशेष जोर देकर कमला बोली तो किशोर रुआँसा-सा होकर बोला—"माँ, मैं तुम्हें गलत समझूँगा ! मैं जानता हूँ माँ, संसार में दूसरी कोई बाधा नहीं है जो हमें किसी विशेष दिशा में अग्रसर होने से रोके —यदि कोई बाधा है तो वह है हमारी ओछी असमर्थता, जिसे कमजोरी भी कहा जा सकता है। मैंने जो व्रत स्वीकार किया है वह मुझे पूरा करना होगा, पर बीच-बीच में जो उपद्रव उठ खड़े होते हैं, उनके चलते मेरा मानसिक संतुलन गड़बड़ा जाता है। मैं समझता हूँ, परिस्थिति-जन्य प्रतिकूलता ही मेरे पथ को दुर्गम बना देती है, पर यह तो अपनी भूलों को दूसरे के सिर पर अन्यायपूर्वक थोपने का निन्दित प्रयत्न है। मुझे कभी भी यह सोचकर लज्जा नहीं होती कि मैं अपने आपसे तङ्ग हूँ—मैं तुम्हें गलत कैसे समझूँगा माँ, जब कि आज तक मैं अपने को भी ठीक-ठीक पहचान न सका।"

बाहर से किसी ने दहाड़ती हुई आवाज लगाई—"किशोर सिह।"

किशोर ने क्षण भर रुककर पुकारने वाले के स्वर को पहचानने का प्रयत्न किया, पर वह असफल हुआ। बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए पुकारने वाले ने फिर हाँक लगाई तो किशोर एकाएक दरवाजा खोलकर बाहर निकल आया।

आते ही उसने देखा, सारा मकान पुलिस से घिरा हुआ है। टार्च की जगमगाती रोशनी उसके चेहरे पर पड़ी—आँखें चौंधिया गईं। एक क्षण के लिए घबराकर किशोर ने अपने आपको स्थिर कर लिया। वह शान्त गंभीर स्वर मे बोला—"क्या है ?"

किसी ने शानदार आवाज में कहा—"हैंड्स-अप।"

किशोर ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर पूछा—"आखिर बात क्या है ?"

उसके इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिला। क्षण भर मे किशोर ने देखा वह विधिवत गिरिफ़्तार कर लिया गया है। तमंचा लिए हुए कई आफिसर उसके घर में घुसे तो किशोर बोला—"देखिए, घर मे मेरी अकेली बीमार माँ है। आप····।"

उसके इस प्रश्न का भी कोई उत्तर न था। ठीक डकैतो की तरह जब पुलिस वाले उसके घरमे घुस पड़े तो कमला खाट से उठकर खड़ी हो गई और दरवाजे पर खड़ी होकर बोली—"आप कौन हैं ? क्या मामला है ?"

कमला की साँस तेजी से चल रही थी, वह मानों पथरा गई थी, एकदम अनुभव-शून्य। एक आफिसर ने उत्तर दिया—"खानेतलाशी होगी—हटो।"

कमला ने तेजी से कहा—"मै नहीं हट सकती।"

उसके स्वर मे दृढ़ता थी और दृढता की दीवार को फाँदकर पुलिस के जवान भीतर नही जा सके। उन्हे सहमकर रुक जाना पड़ा। क्षण भर के लिए बाढ रुक गई। तेज़ ज्वर से कमला झुलस रही थी और प्राय: एक सप्ताह से उसने उपवास भी कर रक्खा था। वह बेतरह कमजोर थी, पर परिस्थिति ने उसमें तूफान भर दिया था। दुःख में ही तो प्रलयङ्कर बल होता है।

दारोगा बोला—"मुझे खानेतलाशी लेने से तुम रोक नही सकती। यदि तुम अपनी इच्छा से नहीं हटतीं तो मैं बल-प्रयोग करूँगा, जिसकी जवाब-देही तुम पर होगी।"

किशोर विनय-भरे स्वर में बोला—"माँ, इन्हें कर्तव्य-पालन कर लेने दो—रोको मत।"

पगली-सी कमला बोली—"मैं हट नहीं सकती ये जो जी चाहे, करे।"

किशोर ने आँखें बन्द करके कहा—"हे भगवान्, तुम्हें क्या हो गया है; मा।"

कमला अच्छी तरह जमकर अपनी जगह पर खड़ी हो गई और बोली—"यह घर मेरा है।"

दारोगा बोला—"मैं कहता हूँ, तुम हटो नहीं तो मुझे सिपाहियों को हुक्म देना पड़ेगा—यदि कुछ दुर्घटना हुई तो उसकी जवाबदेही तुम पर है।"

कमला बोली—"परवा नही। मैं दुर्घटनाओ से नहीं डरती।"

किशोर विकल होकर चिल्ला उठा—"मा, मा, इन्हे अपने शरीर पर हाथ लगाने दोगी ? मेरे ही सामने यह अनर्थ होगा—हट जाओ मा, रोको मत।"

कमला पगली की तरह जोर से बोली—"कभी नही—।"

× × × ×

किशोर को अच्छी तरह बाँधकर जब पुलिस चली गई तो रात समाप्त और पूर्व दिशा प्रकाशित हो रही थी। कमला ने उठकर देखा, उसके सिर से रक्त की पतली-सी धारा बह रही है और शरीर में भी कहीं-कही चोट है। घर मे कोई नहीं है—सारी चीज़ें बिखरी हुई हैं।"

वह कराहती हुई उठी, पर उठ न सकी, ज्वर भी तेज़ था और काफी खून निकल जाने से सुस्ती ने उसे विवश कर रक्खा था।"

कमला किसी-किसी तरह उठकर बैठ गई और खूब जोर से हँसकर बोली—"किशोर को भी ले गये—हटाओ झंझट ही छूटा। अब मैं आज़ाद हुई···घर मे आग लगाकर किशोर जिस पथ से आगे बढ रहा है उसे प्रकाशमान करूँगी। कहाँ गई दियासलाई··अरे मै तो उठ भी नहीं सकती···उफ् हे भगवान्।"

कमला फिर मूर्छित होकर धीरे-से लेट गई। गाँव के इक्के-दुक्के पड़ोसी उस अभागे के घर के निकट मँडराने लगे—कुछ लोगों ने मानो जान पर खेलकर भीतर घुसने का भी साहस किया। सारा घर वीरभद्र के द्वारा तहस-नहस किया गया दक्ष का यज्ञ-मंडप हो रहा था। कुछ लोगों ने दीर्घ-श्वास लेकर कहा—"यह हरिहर सिंह के पापों का फल है।"

---

(३१)

बेला के जीवन का हास-विलास मुखरित-प्रवाह अचानक रुक गया—उसे ऐसा ही लगा। जिस तरह की बाधा-बन्धनहीन रग-रलियाँ वह पिछले चार-पाँच साल से मनाती रही धीरे-धीरे उसका मन उनसे विरत होने लगा। वह न तो मि० सेन की रस-भरी बातों से अपने मन मे गुदगुदी का अनुभव करती और न मि० मनसुखदास की चुहलबाजियों से उसके दिल की कली खिलखिलाकर हँसती। सेनगुप्ता की बगल मे बैठकर भी वह अपने

शरीर में झनझनाहट का अनुभव नहीं करती। उसे अब किसी चीज में भी नूतनता नहीं नजर आती। मि० सेन की सारी विशेषताएँ उसकी आँखों के सामने से लोप होगई थीं और उसका घिनौना ककाल मात्र ही बेला को दिखलाई पड़ता था—यही दशा सब की हुई। वह रहस्यमयी रमणी चाहती थीं कि उसकी रस-भावना किसी तरह दीप्त हो, जिससे वह अपने को आमोद-प्रमोद मे पूरी तरह लिप्त कर सके, पर लाख प्रयत्न करके भी वह अपने लगातार गिरते जानेवाले मन को सँभाल न सकी। बात यहाँ तक बढ़ गई कि उसे अपने मित्रों की पदध्वनि तक से विरक्ति सी होगई—एक ही तरह की आवाज सुनते-सुनते उसका मन थक गया, वह झुँझला जाती जब सेन, सेनगुप्ता या मनसुख के जूतो की आवाज उसके कानों में पड़ती।

बेला ने जब शराब का अभ्यास बढ़ा लिया तो मि० चटर्जी को थोड़ी-सी चिन्ता हुई—चिन्ता हुई बेला के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने से। विलायती दृष्टिकोण से शराब को वे चरित्रघातक नहीं मान सकते थे और कानूनी दृष्टि से बालिग लड़की के आचरण का उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेने की जवाबदेही से चटर्जी साहब छूट ही गये थे, जिससे उन्हें तृप्तिपूर्ण प्रसन्नता थी।

कभी-कभी बेला खूब शराब पीकर अपनी भावनाओं को , बलात् दीप्त करती और मि० सेन या सेनगुप्ता जो भी मिल गया उसके साथ दो घड़ी जी बहलाती, पर नशा उतर जाने के बाद आत्म-ग्लानि या घृणा से उसका मन भर जाता, वह अपने आपको विशेष उदास, खिन्न और अग्राह्यरूप में देखने लगती। यहाँ तक कि बेला को अपने पसीने की गध और अपने हाथ-पावों से भी घृणा-सी होने लगी। कमरे की प्रत्येक वस्तु उसके मन में झुँझलाहट पैदा करती और उस पुरानी घड़ी का अनवरत टिक-टिक करना, जिसे वह १०।१५ साल से लगातार सुन रही थी, बुरा लगता यहाँ तक कि ऊबकर उसने घड़ी को बन्द कर दिया। मेज, कुर्सियों और दूसरे सामानों को इधर से उधर रखकर बेला कमरे मे नयापन लाने का प्रयत्न करती रहती, पर उसे तो ऐसा लगता कि रस-ग्रहण की उसकी क्षमता ही समूल नष्ट हो गई है।

बेला ने—नवयुवती बेला ने—अपने आपसे तङ्ग आकर एक दिन

मि० सेन से कहा—"सुनो जी, न जाने क्यों मै एकबारगी ही सारी दुनिया से ऊब उठी हूँ। मेरे भीतर का रस सूख गया है, याने मैं किसी भी प्रकार का रस ग्रहण नहीं कर सकती। मुझे ऐसा लगता है कि संसार से नूतनता का लोप हो गया।"

सेन ने बेला के मन का रहस्य ठीक-ठीक नहीं समझा, क्योंकि उन्हें ऐसी बातों पर विचार करने का अभ्यास न था। अपने गन्दे, पीले, फूले हुए चेहरे पर दिखाऊ दुःख के भाव लाकर मि० सेन ने कहा—"गीता पढ़ने से ऐसा हुआ होगा—उफ्! गीता का नाम सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मेरे चाचा जी गीता पढते-पढते इस स्थिति मे पहुँच गये कि एक दिन उन्हें पागलखाने में भेजवाना पड़ा। गीता बहुत ही मनहूस चीज है।"

बेला हँसती हुई बोली—"आप दिन दहाड़े पिया करते हैं! ऐसा न कीजिए।"

कुछ घबराकर मि० सेन ने कहा—"नहीं तो, मैंने दो दिनों से छुआ भी नहीं है—तुम जब अपने होठों से छुलाकर जाम देती हो तो वह मेरे लिए ......।"

बेशर्म की तरह बेला विशेष प्रकार से आँखे मटकाकर बोली—"मैं ऐसी बाते सुनना एक दम पसन्द नहीं करती।" उसकी यह मधुर इनकारी भावोत्तेजक थी, न कि अस्वीकारात्मक। सेन ने साग्रह पूछा—"क्यों? वही गीता ....कहाँ है आपकी गीता? देखिए मैं उसे जाकर गङ्गा में डाल आऊँ। नहीं—ऐसी खतरनाक पुस्तक आप नही रख सकतीं।"

बेला बोली—"आज तक मैंने गीता का स्पर्श भी नहीं किया, आप क्या बोल रहे हैं डियर!"

इस बार-बार के रटे हुए बाजारू Dear सम्बोधन ने सेन को फड़का दिया। उन्होंने एकबारगी ही बेला के सुराहीदार गले में हाथ डालकर किसी कुशल अभिनेता की तरह गाया—

"काहे डरसि सखि, चलु हम सङ्ग,
माधव नहिं परसव तुअ अङ्ग।"

दरवाजे का पर्दा हिला और मि० चटर्जी ने अपना भद्दा-सा सिर भीतर डालकर पूछा—"अहा तुम दोनों हो, क्षमा करो—मैं असमय में आगया।"

उछलकर बेला अलग खड़ी हो गई और मि० सेन खीस काढ़कर मि० चटर्जी के उस मुँह की ओर देखने लगे जिसमें एक भद्दी-सी नाक और दो गोल-गोल आँखें थी तथा काले मोटे होठों में एक बड़ा-सा सिगार भी नरकाग्नि की तरह सुलग रहा था।

बेला बोली—"आओ न पप्पा, तुमने हमें डरा दिया।"

हँसकर मि० चटर्जी कमरे मे घुसे और बोले—"बेटा बेला, आज पहली अप्रेल है, इसीलिए बिना पूर्व सूचना दिये आकर मैंने तुम्हें डरा दिया।"

मि० चटर्जी का शान्त और निर्विकार रुख देखकर सेन की जान मे जान आई और बेला के हृदय की उछल-कूद भी शान्त पड़ गई। उत्साह के आवेग को वह नहीं सँभाल सकी और अपने पिता का हाथ पकड़कर बोली—"तुमने हमें सचमुच डरा दिया पप्पा! बैठो न कहाँ चले?"

मि० चटर्जी स्नेहगद्गद् कण्ठ से बोले—"पगली, अभी तक तेरा बचपन नहीं छूटा।"

सेन भी अपने उजड़े मन में बचपन लाने का प्रयत्न करते हुए कहने लगे—"आपके सामने हम तो अभी बच्चे हैं, पप्पा!"

सेन ने पहली बार आनन्दातिरेक से मि० चटर्जी को 'पप्पा' कहा और कह लेने के बाद अपने आपको लज्जित पाया—"लज्जित होने की आदत न होने के कारण लज्जा की यह पहली लहर उन्हें अजीब-सी लगी।"

बाहर मोटर आने की सरसराहट सुन पड़ी, फिर दरवाजा खोलकर बन्द करने की आवाज आई।

सेठ मनसुखदास, मि० सेनगुप्ता और कामरेड आजाद धीरे-धीरे मि० चटर्जी के पुस्तकालय मे जाकर बैठ गये। बैरिस्टर साहब ने भी जल्दी-जल्दी जाकर उनका स्वागत किया। दीर्घश्वास लेकर सेठ जी ने कहा—"हम एक गम्भीर विषय को लेकर ही आपको कष्ट देने आये हैं।"

इतना कहकर सेठ जी ने अपने सहयोगियों की ओर जिज्ञासाभरी

दृष्टि से देखकर मुस्करा दिया। मि० चटर्जी ने स्वर में अत्यन्त आदर और नर्मी भर कर कहा—"मै उत्सुक हूँ, आज्ञा दीजिए—मैं क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

मनसुखदास ने कहा—"आपको मालूम ही होगा कि मिल मे व्यापक हड़ताल हो रही है। बाहर के कुछ षड्यन्त्री भी आये हैं, पर मि० विमल-चन्द्र नाम का एक नवयुवक इस हड़ताल का सफलतापूर्वक सचालन कर रहा है। कुलियो की शान्त की कठोरता सीमा पार कर चुकी है। वे कष्ट सहने को तैयार ही नहीं हैं, बल्कि सह भी रहे हैं। आप जानते हैं कि शान्त कुलियो का दमन असंभव है—मै चाहता हूँ कि ···।"

मि० सेनगुप्ता बोले—"कुलियों को किसी न किसी उपाय से भड़काया जाय। वे यदि तोड़फोड़ पर उतारू होजायँ तो हम सहज ही उनका दमन करके हड़ताल का बहुत दिनों के लिए अन्त कर देंगे। परिस्थिति की अटलता और गम्भीरता मिटाने के लिए हलचल आवश्यक है। आप अपनी सम्मति दीजिए।"

मि० चटर्जी ने गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा—"तो आप इस समय मुझसे कानूनी राय लेने आए हैं—मैं पहले यही जानना चाहूँगा।"

सेठ जी ने कहा—"जी हाँ।"

"अच्छी बात"—अपने को पूर्ण स्वस्थ करके उस अनुभवी बैरिस्टर ने कहा—"मैंने इस मामले के पूर्वापर का विचार कर लिया। आप क्या यह सोच रहे हैं कि कुलिया को भड़काकर उन्हें कानूनी सीमा उल्लघन करने को बाध्य किया जाय और जब वे अपने आपको गलत तथा निर्बल स्थिति मे पहुँचा चुके तो आप उन पर प्रहार करके उनके किये-दिये पर पानी फेर दें—यही आपकी इच्छा है न ?"

विख्यात साम्यवादी कामरेड आजाद ने जल्दी-जल्दी सिगरेट के तीन चार कश लेकर कहा—"जी हाँ।"

मि० सेनगुप्ता बोल उठे—"अगर कोई दूसरा उपाय आपने सोचा हो तो हमें बतलावे।"

मि० चटर्जी ने कहा—"मजदूरों के इस आन्दोलन का सचालन कौन कर रहा है ? वह कैसा व्यक्ति है और……।"

सेठ जी ने दुःख भरे स्वर में कहा—"महाशय, विमलचन्द्र नाम का एक बहुत ही तेज़ नवयुवक है, जो 'आनन्दाश्रम' मे रहता है। वह एक दृढ़ निष्ठावान और कट्टर नवयुवक है। पहले वह हमारे हित की बाते सोचा करता था, पर हठात् उसने अपना रुख बदल दिया। उसका प्रभाव मजदूरों पर है—विमल भयानक व्यक्ति है।"

कामरेड आजाद बोले—"विमल पक्का षड्यन्त्री है महाशय, मैं उसे जानता हूँ। वह किसी भी उपाय से फुसलाया नहीं जा सकता। जब वह हमारा साथी था और पार्टी का प्रधान था, हमारा साथ शायद ही दिल खोल कर देता था। उसके विचार कुछ ऐसे विचित्र हैं कि पार्टी के सिद्धान्तों से उनका मेल नहीं बैठता।"

"मैं इतनी गहराई मे जाना नहीं चाहता"—मि० चटर्जी ने कहा—"अब मैं यह सोचना चाहता हूँ कि बिना किसी उपद्रव के हड़ताल का अन्त हो।"

सेनगुप्ता बोले—"मै ऐसा नही सोचता, इन सत्त्खोरों को उचित शिक्षा भी देनी चाहिए। मै तो हिन्दुस्तानियों से तङ्ग आ गया—ये बात-बात पर भड़क उठते हैं। अपने हाथ-पाँवो का जरा-सा भी मोह इनके हृदय में नही होता। ये अपनी जान पर खेल जाना भी हँसी खेल समझते हैं।"

कामरेड आजाद कहने लगे—"मैं सब सभव सहायता पहुँचाने को प्रस्तुत हूँ। हड़ताल के खिलाफ मै पर्याप्त प्रचार करवा रहा हूँ। मै तो रूस के सिद्धान्तो पर ही काम करूँगा—मैं जानता हूँ कि ऐसी हड़तालों को रूस अच्छी नजरों से नही देखेगा।"

इतना कहकर कामरेड आजाद को अचानक यह बात याद आ गई कि मै एक विख्यात बैरिस्टर के सामने बोल रहा हूँ। वह डर गया और फिर कुछ सोचकर बोला—"सेठ जी मेरे मित्र हैं, मैं इनका साथ दूँगा, पार्टी की परवा नहीं है। मैंने पार्टी को जन्म दिया है, पार्टी ने मुझे‥।"

मुस्कराकर बैरिस्टर साहब चुप लगा गये। कामरेड आजाद मन-ही-मन

अपने आप को ओछा, हल्का और नगण्य अनुभव करके बहुत ही मर्माहत हुए।

बहुत देर तक बातें होती रहीं और अन्त मे यही निश्चय हुआ कि कुछ ऐसे गुण्डों को साधा जाय जो मजदूरों को शान्ति के खिलाफ भड़कावें, ईंट पत्थर फेकना, मिल मे तोड़-फोड़ का प्रयत्न करना और बने तो मिल पर आक्रमण कर देना उन गुण्डों का प्रधान कार्यक्रम होना चाहिए। जब मजदूर उपद्रव करने पर उतारू हो जायँगे तो उनका अमानुषिक दमन कानून की आड़ मे बैठकर करना सम्भव होगा। इन आवश्यक, पर गर्हित, कामों का भार लिया कामरेड आजाद ने।

चलते समय मि० चटर्जी के सामने एक 'चेक' रखकर मनसुखदास ने कहा—"मिस बेला हैं तो स्वस्थ ?"

चेक पर नजर डालते ही मि० चटर्जी उछल पड़े। उन्होंने आनन्द के आवेग में कहा—"जी हाँ, वह तो यहीं है, अपने कमरे में। मैं सूचना भेज देता हूँ, आप मिलते जायँ।"

घण्टी बजाते ही पिटर आया और पूछने पर उसने सूचना दी कि बेला मि० सेन के साथ कहीं गईं। इस सूचना ने सब को मर्माहत कर दिया। कामरेड आजाद ने बेला को दूर से देखा था, उसकी उमड़ती हुई यौवन-नदी के हिलोरों को बहुत दूर से खड़े होकर देखा था—उन्होंने मन-ही-मन अपने को बेला के चरणों का दास मानकर उछल-कूद मचाने वाले हृदय को सन्तोष दिया था। आज आजाद ने सोचा था कि अब उस सुन्दरी को निकट से देखने का अवसर आवेगा, पर पिटर के उत्तर ने सारा गुड़ गोबर कर दिया।

चटर्जी साहब क्रोध से पैर पटककर सबके सामने बोल उठे—"डैम सेन! मैं यह पसन्द नहीं करता। देखो पिटर, अब अगर सेन कोठी के भीतर कदम रक्खे तो उसे कान पकड़कर बाहर निकाल देना—पाजी, उल्लू कहीं का।"

मि० मनसुखराय, सेनगुप्ता, कामरेड आजाद भी एक दूसरे को भेद-भरी दृष्टि से देखकर मुस्करा उठे, जो बैरिस्टर साहब की नजरों से छिपा न

रह सका। सहसा अपनी गलती महसूस करके चटर्जी बहुत ही लज्जित हुए—लज्जा के मारे उनका चेहरा विवर्ण हो गया।

अपनी बिगड़ी हुई बात को बनाने की गरज से चटर्जी बोले—"यह सेन मेरा पुत्रवत् है। मैं इसे मार भी बैठूँ तो बुरा नही मानेगा। इसके पिता और मैं—हम दोनो विलायत मे पन्द्रह साल तक एक साथ ही रहे। वहीं सेन का जन्म हुआ।"

हाथ जोड़कर मनसुखराय ने विदा माँगी और कहा—"मै तो फिर भी आऊँगा, आप मि० सेन पर नाहक नाराज हो गये।"

मि० चटर्जी की चँदुली खोपड़ी पसीने की बूँदों से भर गई—वे हाँफते हुए बैठ गये।

---

(३२)

बेला ने लौटते ही अपने पिता से मुलाकात की। वह भी भाग्यवश अकेली लौटी थी। यदि सेन भी साथ होते तो निश्चय ही पिटर में उनकी विधिवत कुश्ती हुए बिना न रहती। अपनी ओर से भी पिटर सेन के प्रति खार खाये बैठा था। वह बेला के साथ सेन का इतना अपनापन बुरा समझता था, वह जलता था पर अनन्योपाय था। मालिक का हुक्म मिलते ही वह अपने दबे हुए क्रोध को भी व्यक्त करने की राह देखने लगा, पर सौभाग्यवश सेन नही आये।

पिटर ने बेला से कहा—'मिस बाबा, साहब का हुक्म है कि सेन साहब को कान पकड़ कर कोठी से निकाल दिया जाय।"

विस्मय-विस्फारित आँखों से पिटर के शरारत भरे मुँह की ओर देखती हुई बेला बोली—"क्यों?"

पिटर अनजान-सा बोला—"मुझे क्या मालूम—साहब ने ऐसा ही हुक्म दिया है।"

खम्भे की आड़ मे अपने को छिपाकर मरियम सभी बाते सुन रही थीं। जब-जब पिटर बेला के कमरे मे जाता, उससे बाते करता, मरियम छिपकर सुना और देखा करती। आवारा पिटर पर एकाधिपत्य स्थापन करने का जा आग्रह मरियम के लालसापूर्ण हृदय मे था, वह उसे ऐसा करने को वाध्य करता था। वह पिटर को बेला के निकट सम्पर्क मे आने देना नहीं चाहती थी—इस विषय को लेकर वह प्रायः पिटर से लड़ बैठती थी, पर नानाप्रकार की अश्राव्य शपथ खाकर पिटर अपनी डगमगाती हुई स्थिति को सँभाल लिया करता था—वह एक बाजारू धूर्त नवयुवक था और मरियम थी भोली-भाली नवयुवती, जिसमें मूढ विश्वास और अन्ध सन्देह दोनों की ही अधिकता थी।

बेला सीधे पिता के कमरे मे गई। मि० चटर्जी किसी मुकदमे की फाइल देख रहे थे। बेला की आहट पाते ही अपने ललाट पर चश्मा चढ़ाकर उन्होने स्नेह-गद्गद् स्वर में कहा—"क्या है बेटी, तुम्हें सेठ मनसुखदास खोज रहे थे। वे बहुत बड़े आदमी हैं बेला, ऐसों के सम्पर्क में रहने से समाज में शानदार प्रतिष्ठा मिलती है। गवर्नर की स्त्री से पहले पहल उन्होंने ही तुम्हारा परिचय कराया था।"

बेला ने अनसुनी करके पूछा—"आपने उस बेहूदे पिटर से कुछ कहा है?"

"मैंने"—चौंककर चटर्जी बोले—"नहीं तो, मै उससे क्या कहूँगा?"

"यही कि"—बेला दृढ़ताभरे स्वर में बोली—"मि० सेन को कान पकड़कर कोठी से निकाल दिया जाय?"

"नहीं तो"—चटर्जी घबराये-से बोले—"मुझे याद नहीं है। सेन तो अपना आदमी ठहरा। क्या मैं उसके प्रति ऐसी अपमानपूर्ण भाषा काम मे ला सकता हूँ।"

बेला ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मेज पर की घण्टी के बटन को दबा दिया। घण्टी की तेज और देर तक गूँजती रहनेवाली घनघनाहट सुनते ही पिटर दौड़ा आया। वह कुछ घबराय हुआ-सा था।

घण्टी की आवाज से ही चालाक पिटर ने समझ लिया था कि किसी क्रुद्ध हाथ ने घण्टी के बटन को पूरी ताकत से दबा रक्खा है। पिटर को देखते ही बेला ने पूछा—"तू मुझसे झूठ बोलता है। बाबू जी ने कहाँ तुझसे कहा कि - मि० सेन को ' ' '।"

चटर्जी ने भी अपनी कन्या के स्वर-में-स्वर मिलाकर पूछा—"मैंने कब कहा था?"

पिटर घबराकर बोला—"हुजूर· · · ··।"

"हुजूर के बच्चे"—चिल्लाकर कुर्सी से उठते हुए मि० चटर्जी बोले—"हटो मेरे सामने से नालायक, पाजी, झूठा ···।"

इतना बोलकर हाँफते हुए वृद्ध बैरिस्टर धप्प से कुर्सी पर बैठ गये। पिटर अपनी जगह पर स्थिर खड़ा रह गया तो बेला बोली—"तूने झूठी बात क्यों कही मुझसे।"

पिटर ने मन-ही-मन कठोर होकर कहा—"मैं ही नहीं, सेठ मनसुखदास और मि० सेनगुप्त भी तो उस समय वहीं थे, जब हुजूर ने मुझे हुक्म दिया था ···।"

चटर्जी ने शान्त स्वर में कहा—" तू ने समझा नहीं, मैंने दूसरे मतलब से तुझे कुछ कहा था—अकल से काम लिया करो! जाओ अपना काम देखो—।"

"जो हुक्म"—कहकर पिटर जब चला गया तो बेला बोली—"पप्पा, मैं तो विचित्र उलझन में पड़ गई। यह तो पूरा रहस्यवाद है, बेबूझ पहेली!"

"बेटी"—पराजित-से होकर मि० चटर्जी बोले—"सेठ मनसुखदास आये थे मुझसे अपने मिल की हड़ताल के विषय में कुछ कानूनी राय लेने—वह बड़ा आदमी है बेटी, उसे खुश रखना हमारा धर्म है।"

बेला कुर्सी पर बैठती हुई बोली—"सेठ मनसुखदास बड़ा आदमी नहीं है, वह पक्का चोर है। दूसरे का हक अनधिकारपूर्वक हजम करना ही चोरी है।"

"क्यों"—चिल्लाकर चटर्जी ने पूछा—"तुम ऐसी बात क्यों कहती हो?"

बेला बोली—"मैं ठीक ही तो कह रही हूँ, पप्पा। मैं अभी हड़ताल

देखने गयी थी। मैंने अपनी आँखों से जो कुछ देखा वह खून खौला देने वाला है।"

"क्या देखा"—मि० चटर्जी चकित होकर बोले—"ऐसी जगहों मे तुझे नहीं जाना चाहिए, वहाँ कब क्या होजाय, पता नही।"

बेला बोली—"परवा नहीं, मैं नहीं डरती। मैंने देखा मूर्ख, गरीब मजदूर मिल के फाटक पर शान्त भाव से चुपचाप पड़े हैं, उनकी स्त्रियाँ अपने रोगी, दुर्बल बच्चों को लिए एक-एक दाना अन्न के लिए बाजारो में भीख माँग रही हैं।"

बैरिस्टर साहब पैर पटककर बोले—"यह सब प्रपंच है। वे काम पर क्यों नहीं लौट जाते—औरतें अपनी इच्छा से भीख माँगती हैं तो हम लोग क्या करें?"

बेला बोली—"इस तत्व का विवेचन मै नहीं करूँगी, हाँ मैंने यह भी देखा है कि यहाँ के आश्रम के ब्रह्मचारी जी ने मजदूरों के भोजन और आराम का प्रबन्ध कर दिया है, पर तीन हजार व्यक्तियों के लिए समुचित प्रबन्ध करना एक व्यक्ति का काम नहीं है। मैंने देखा है कि मजदूरो को मारा-पीटा भी गया है, बहुतों के सिर और बाहों पर पट्टियाँ बँधी हैं, कुछ स्त्रियाँ और बच्चे भी आहत हैं, पर सभी मजदूर शान्त हैं, उनके चेहरे से पूर्ण शान्ति और दृढ़ता झलकती है। विमलचन्द्र नामक एक नवयुवक ने अपनी दृढ़ता से उन्हें फौलादी पुतलो मे परिणत कर दिया है।'

"विमलचन्द्र, विमलचन्द्र"—मि० चटर्जी ने बड़बड़ाकर कहा—"यह विमलचन्द्र बहुत ही खतरनाक आदमी है, उसे तो गोली मार देना चाहिए।"

बेला दुःख भरे स्वर में बोली—"पप्पा, मैं आपसे निराश होती जा रही हूँ। ससार की सभी अच्छाइयों के खिलाफ आपने मानों विद्रोह कर लिया है।"

चटर्जी चौंककर बोले—"सो कैसे, यह तुमने बहुत ही कड़ी बात कह दी बेला?"

बेला बोली—"इससे भी कड़ी बात कहती, पर मेरा मुँह उतना बड़ा नहीं है। विमलचन्द्र को आपने देखा नहीं है। वह कितना तेजोमय और दृढ व्यक्ति है।"

"तुमने देखा है"--चटर्जी चौंककर बोले--"क्या वह यहाँ कभी आया है?"

"मैंने देखा है—बेला दीर्घ श्वास लेकर बोली--"थोड़ी देर पहले वह मेरी मोटर के निकट आया। हड़तालियों में घूम-फिरकर जब मैं लौट रही थी तो वह मोटर के निकट आया। मै अकचका गई—कैसा प्रशान्त ललाट है, दिव्य गौरवर्ण और चिर-प्रसन्न वदन।"

चटर्जी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"उसने कुछ कहा?"

बेला बोली—"पप्पा, आज तक मैं यही समझती रही कि मै "मिस बेला" या "बेला रानी" हूँ पर विमलचन्द्र ने एक क्षण में ही मुझे ज्ञान करा दिया कि मैं "बहिन" भी हूँ और 'माँ' भी।"

बोलते-बोलते बेला का गला भर आया। वह रुद्ध कंठ से बोली—"पप्पा, विमलचन्द्र ने अचानक मेरे आगे दामन फैलाकर कहा, 'बहिन' अपने इस गरीब भाई को कुछ भीख देकर ही तुम्हें जाना होगा, जब मैंने अपना बटुआ खोलने का प्रयत्न किया तो उन्होंने कहा—बहिन से धन लेना हिन्दू धर्म मे वर्जित है, आप आशीर्वाद दे और अपने इन तीन हजार अभागे पुत्रों का मोह हृदय मे रखकर विदा हों।"

इतना कहते ही बेला की आँखें बरसने लगीं। वह आँचल से मुँह ढाँपकर रो उठी। मि० चटर्जी सिर झुकाकर चुप हो गये—मानो उनके सिर पर काजल बनकर लज्जा बरस रही हो और वे अनन्योपाय होकर उस पुंजीभूत अमिट कालिमा मे अपने आपको डूब मरते देख रहे हों।

अपने को स्वस्थ करके बेला बोली—"पप्पा।'

चटर्जी ने सिर उठाकर अपने काँपते हुए होठों से कहा—"बे⋯ ⋯।" वे भी रो रहे थे।

बेला बोली--"पप्पा, मैंने जीवन मे आज पहली बार एक बहन और

माँ की तरह सोचने का सुख प्राप्त किया है। क्यों पप्पा, क्या पिता होकर भी आप कभी पिता की तरह कुछ सोचते हैं ?"

"नहीं बेटी"—मि० चटर्जी पूर्ण आत्म-प्रकाश करते हुए बोले—'मै आज तक बैरिस्टर की तरह ही सोचता रहा। मैं स्वीकार करता हूँ, मेरा सारा जीवन नष्ट हो गया।"

बेला ने कहा—"पप्पा, मेरे भोलेभाले पप्पा, एक बार पिता की तरह सोचो तो उन अभागे पुत्रों के प्रति तुम्हारा भी कुछ कर्तव्य है या नहीं जो आप जीवन मरण के बीच में ढकेल दिये गये हैं। क्या मनसुखदास मानव है पप्पा ? मैं तुम्हारा निश्चित मन जानना चाहती हूँ—बोलो और अपने हृदय पर हाथ रख कर बोलो।"

भावावेग मे अपने पिता का कन्धा झकझोरती हुई बेला कुर्सी से उठ खड़ी हुई। मि० चटर्जी ने गम्भीर स्वर मे कहा—"बेटी, मैं तुमसे सहमत हूँ।"

बेला छोटी बच्ची की तरह उछलकर पिता के गले मे लिपट गई और रोती हुई बोली—"पप्पा, हमें बदलना होगा—मैं बदल गई। आज से मैं "बेला बहिन" हूँ, "बेला माँ" हूँ, न कि मिस बेला, बेलारानी।"

मि० चटर्जी ने कन्या की पीठ पर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए स्नेहमय स्वर मे कहा—"बेटी, मैं आशीर्वाद देता हूँ, तू सारे ससार की "बेला-बहिन" और "बेला माँ" बन जा। मैं तुझे इसी रूप में देखकर अन्तिम बार आँखे बन्द करना पसन्द करूँगा बेटी। अब मेरी नैया किनारे पहुँच रही है। अतीत मेरा था, भविष्य तेरा है।"

बेला अपने पिता की चौड़ी छाती मे मुँह छिपाकर रोने लगा। वह ज्यों-ज्यों रोती, उसके मन का घनीभूत तम त्यों-त्यों आंसू बनकर बाहर निकलता जाता। मि० चटर्जी की आँखे भी मोती बरसा रही थीं— उनके हृदय का भार भी पिघलकर आँसुओं के रूप मे मिट्टी मे मिल रहा था।

---

(३३)

किशोर के अनायास पकड़े जाने के दूसरे दिन, ब्रह्मचारी जी विमल के साथ किसी देवता के वरदान की तरह, किशोर के दरवाजे पर आये। हक्के-बक्के गाँववालों ने दूर से खड़े होकर इन दोनों नवागन्तुकों को देखा। किसी ने भी निकट जाने का साहस नहीं किया। एक दो वृद्ध सज्जन ब्रह्मचारी जी के निकट गये और उस दुर्भाग्यपूर्ण रात का वर्णन करके चुपचाप चलते बने। पुलिस का आतंक और हरिहर सिंह के कटु-व्यवहार—इन दोनों ने मिलकर उस विशाल गाँव में भी कमला को अकेला ही छोड़ दिया था। गाँव में ऐसों ही की संख्या अधिक थी जो हरिहर सिंह के परिवार की दुर्दशा देखकर मन ही मन पुलकित होते थे। किशोर ने नवयुवकों में थोड़ा बहुत अपना स्थान बना लिया था, जो इस आड़े समय में काम आया। गिरफ्तारी के बाद गाँव के नवयुवकों ने ही कमला की सेवा का भार लिया और उन्होंने ही ब्रह्मचारी जी तक इस अयाचित मनहूस घटना का संवाद भी भेजा। कमला पूरी तरह आत्मस्मृति खो चुकी थी। वह पगली की तरह कभी गाती, कभी रोती और कभी किशोर, किशोर चिल्लाती हुई मूर्छित हो जाती।

ब्रह्मचारी जी ने कमला की दशा देखकर विमल से कहा—"बेटा, हृदय विदीर्ण होता है इस बहिन की दयनीय दशा देखकर।"

विमल का हृदय भी भीतर ही भीतर रो रहा था। वह कातर स्वर में बोला—"जब आपकी यह दशा है तो मैं अपना वर्णन क्या करूँ। किशोर भैया बुरे फँसे।"

ब्रह्मचारी जी ने कहा—"इसकी परवा मत करो विमल। सत्य का मार्ग बड़ा ही बीहड़ होता है। मानव पवित्र बलिदानों से ही अपने अस्तित्व की महान सार्थकता प्रमाणित कर सकता है। जो बहादुर होता है, उसका समस्त जीवन खतरों में ही फँसा होता है। मैं जानता हूँ कि अब शायद ही किशोर की प्राण-रक्षा हो, पर वह वीर है; परिस्थिति के सामने झुकना पसन्द नहीं करेगा। हमें और भी मूल्यवान बलिदान करने पड़ेंगे—यह तो श्रीगणेश मात्र है, बेटा। मैं तो इस बहिन की दशा देखकर घबरा उठा हूँ।"

एक सप्ताह समाप्त होगया। शारीरिक दृष्टि से कमला इस योग्य होगई कि वहाँ से हटायी जा सके, पर उसका दिमाग पूर्ववत् अस्थिर ही बना रहा। गाँव के मुख्य दलपतियो की स्वीकृति लेकर ब्रह्मचारी जी कमला के साथ आश्रम की ओर चले। पागलपन की हालत मे कमला विमल को ही किशोर कहा करती थी। ब्रह्मचारी जी ने भी विमल को किशोर ही कहना आरभ किया। किशोर के अभाव को दोनो दो रूप मे देखते थे। पगली कमला तो स्मृति की खराबी के कारण विमल को किशोर समझ बैठी और कमला की इस मूल धारणा को कायम रखने के लिए ब्रह्मचारी जी विमल को किशोर कहकर ही पुकारने लगे थे, पर उस सर्वत्यागी ब्रह्मचारी के हृदय मे किशोर के अभाव की जो शून्यता हाहाकार कर रही थी वह भी किसी अश तक विमल को किशोर नाम देकर मिटायी गयी थी। न केवल कमला के लिए ही बल्कि, प्रच्छन्न सत्य तो यह था कि अपने लिए भी शान्त ब्रह्मचारी विमल को किशोर कहकर पुकारने लग गये थे।

आश्रम में पहुँचते ही योग्य चिकित्सकों से कमला की परीक्षा कराके ब्रह्मचारी जी ने चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध कर दिया। धीरे-धीरे कमला की स्मृति भी लौटने लगी। पहली बार उसने कुछ होश मे आकर पुकारा—"किशोर" तो पुकार सुनते ही सोल्लास विमल उपस्थित हुआ। कमला ने घबराकर पूछा—"तुम ! किशोर कहाँ है !"

अब विमल किशोर नहीं रहा—ऐसी कल्पना करते ही विमल का भावुक हृदय भीतर ही भीतर कराह उठा। किशोर नाम से बार-बार पुकारा जाना विमल को भी प्रिय था, क्योकि किशोर की महानता, वीरता, धीरता विमल के लिए ललचानेवाली बात थी—साथ ही वह यह सोचकर भी अपने को प्रसन्न करता था कि वह किशोर की जगह पर उपयोग में लाया जा रहा है या किशोर के अभाव की पूर्ति कर रहा है या किशोर के उपयोग मे आ रहा है। ब्रह्मचारी जी जब विमल को विमल न कहकर, किशोर कहते थे तो उनके स्वर मे जो अमृतोपम स्नेह-धारा वह जाती थी, वह यद्यपि किशोर के लिए थी, पर किशोर बनकर विमल उस अमृत की बूँदों का उपयोग अपने लिए करता आ रहा था और वह भी एक दो मास से। क्रमशः

के होश में आने से पदच्युत होकर अपने समस्त काल्पनिक सुख-सौभाग्य से उसे वंचित होना पड़ा, यह भी विमल के लिए कुछ कम परिताप की बात न थी। विमल ने घबरा कर कहा—"माँ, किशोर बाहर गया है।"

कमला तीव्रस्वर मे बोली—"झूठ, एकदम झूठ—किशोर विलायत गया है– मै जानती हूँ।"

कमला की ऐसी उखड़ीउखड़ी बातों से विमल को दुःखपूर्ण संतोष हुआ। अब वह शायद कुछ दिनो तक और किशोर बना रहे।

ब्रह्मचारी जी को जब कमला के कुछ होश में आने की सूचना मिली तो उन्होंने रुआसा-सा होकर कहा—"हे भगवन्, होश में आने पर इस अभागी बहिन को क्या कहकर समझाऊँगा। इस पति-पुत्रहीना की वेदना का प्रवाह हम सब को बहा ले जायगा—हे नारायण, बल दो, ताकि मैं उस भयानक परिस्थिति का सामना करने में समर्थ होऊँ, जिसका भयावना रूप प्रतिक्षण स्पष्ट होता जा रहा है।"

होश मे आना कमला के लिए भी एक भयानक पीड़ा थी। पागलपन ने उसकी अतीत की स्मृतियों को भुला रक्खा था—ज्यों-ज्यो वह होश मे आती, उसकी विकलता बढती जाती, उसकी आकुलता जोर पकड़ती जाती। कमला के लिए पागलपन वरदान था और होश अभिशाप! परिस्थिति के चक्कर मे पड़कर कभी-कभी विष अमृत से भी अधिक मूल्यवान हो जाता है।

एक दिन पूरी तरह होश मे आकर कमला ने चारों ओर देखा और ब्रह्मचारी जी पर दृष्टि पड़ते ही उसने माथे पर आँचल खींचकर खाट से उठने का भी विफल प्रयत्न किया, पर उठ न सकी—कमजोरी बहुत ही बढी हुई थी। पागलपन के आवेग में वह पहले बार-बार उठ बैठती थी। नर्स ने उसे उठने से रोक दिया।

ब्रह्मचारी जी ने स्नेहमय कंठ से कहा—"कमला दीदी।"

कमला का हृदय उमड़ आया। वह आँखे बन्दकर के चुपचाप पड़ी रह गई।

ब्रह्मचारी जी ने फिर स्नेहाकुल स्वर में पुकारा—"दीदी, अपने इस अभागे भाई से एक-दो शब्द बोलो दीदी!"

कमला ने कमजोर दिमाग से यह सोचने का प्रयत्न किया कि यह गैरिक-वस्त्रधारी, महातेजस्वी प्रौढ पुरुष कौन है, जो स्त्रियों के गौरवसूचक सबसे ममतापूर्ण सम्बोन्धन से उसे बार-बार पुकार रहा है? कमला धीरे से बोली—"मैं कहाँ हूँ—किशोर कहाँ है।"

ब्रह्मचारी जी का कलेजा किशोर का नाम लेते ही धक् करके रह गया। वे अपने उखड़ते हुए साहस को सँभालकर बोले—"दीदी, तुम आश्रम में हो—मै हूँ तुम्हारा सेवक और भाई आनन्द। किशोर सकुशल है दीदी।"

किशोर के विषय मे सत्य-मिथ्यामिश्रित बात कहने मे ब्रह्मचारी जी को इतना मानसिक बल लगाना पड़ा कि वे हाँफते हुए निकट ही पड़ी हुई एक चौकी पर बैठ गये।

कमला धीरे से बोली—"मै आपके विषय मे किशोर से प्रायः सुना करती थी। आप देवता-स्वरूप हैं। मेरा किशोर कहाँ है? उसे पुलिस वाले पकड़कर ले गये थे। किस अभियोग मे वह पकड़ा गया, जेल मे है या छूट गया?"

ब्रह्मचारी क्या उत्तर देते? किशोर खून के अभियोग में पकड़ा गया था। अब उसका छुटकारा असम्भव है, क्योंकि पुलिस ने अपना पूरा बल लगाकर उस युवक को कानून के नाग-फाँस में फँसा लिया। घबराकर ब्रह्मचारी जी ने कहा—"दीदी, अभी तुम विश्राम करो और मुझे ही अपना किशोर भी समझो। थोड़ा स्वस्थ हो लो। सारी बातों का पता आप से आप चल जायगा। तुम यह विश्वास रक्खो कि वह सकुशल है, प्रसन्न है, स्वस्थ है • मैं••सत्य ही कह रहा हूँ।"

सहज गम्भीर प्रकृति की कमला ने दीर्घ श्वास लेकर अपनी आदत के अनुसार मौन धारण कर लिया, पर उसका हृदय "हाय किशोर, हाय किशोर" रात-दिन रहता ही रहा। ज्यों-ज्यों उसकी स्मृति लौटती आती, उसकी मानसिक विकलता बढ़ती जाती। उसने बार-बार अपने छूटे हुए पागलपन को पूर्वकृत पुण्य की तरह पुकारा, पर बुरी घड़ी आ जाने से दुःख ने भी उसका साथ छोड़ दिया, सुख की तो बात ही अलग रही।

क्रमशः एक मास और समाप्त हो गया। कमला पूर्ण स्वस्थ होकर आश्रम के कार्यों में योग देने लगी—उसने किसी में भी किशोर के विषय में कभी कुछ भी नहीं पूछा। उसकी इस अस्वाभाविक नीरवता ने ब्रह्मचारी जी को विकल कर दिया। वे बहुत ही अधीर होकर कभी-कभी सहमे-से अपनी कमला दीदी के निकट जाते, पर उसके कठोर, किन्तु प्रशान्त, मुखमण्डल को देखकर डरकर लौट आते, कुछ भी बोलने का साहस ही न करते। सारे आश्रम में "कमला माँ" के नाम से कमला पूजित हो गई। आश्रमवासी नवयुवकों में से प्रत्येक को किशोर समझकर कमला ने उमड़ते हुए मन को किसी-किसी तरह आबाद करने का प्रयत्न किया। वह अपने को आश्रम के कामों में चुप रहकर खो देना चाहती थी, ताकि उसकी वेदनापूर्ण स्मृतियाँ उसके मन में न घुसने पावें।

---

(३४)

एक दुर्भाग्यपूर्ण रात को वेला ने अपनी आँखों से हड़ताल का विधिवत दमन देखा। वह सिहर उठी। उसने देखा कि कुचक्रियों के बहकावे में आकर शान्त कुलियों ने अपने शान्ति-अस्त्र का त्याग कर दिया। वे उपद्रव करने पर उतारू हो गये। तोड़-फोड़ की विभीषिका ने उग्ररूप धारण किया। कुलियों ने मिल की इमारतों को नष्ट करने का जब प्रयत्न किया तो उनका सामना अमानुषिक दमन से पड़ा। मिल का हाता युद्ध-क्षेत्र के रूप में परिणत कर दिया गया। हल्के लाठीचार्ज के फलस्वरूप जो नारकीय दृश्य उपस्थित हुए, वे वेला के लिए महाभीषण थे। वह घबराई, पर भाग न सका। मिल से बाहर निकलना खतरे से खाली न था। वह आँख पसारकर देखती रही। सेठ मनमुखदास भी मिल के ही अन्दर थे—वेला भी थी! चाँदनी रात थी और कुलियों में हाहाकार फैल गया था। भगदड़ सीमा पार कर चुकी थी। स्त्रियों और बच्चों का भी चीखना हृदय-विदारक था। बड़ी-बड़ी लारियों पर लादकर घायलों को अस्पताल के बदले जेल में भेजा

गया। भगदड़ और लाठी चार्ज के फलस्वरूप बहुत से बच्चे कुचल गये और बहुत-सी स्त्रियों के हाथ-पाँव टूटे। साघातिक रूप से आहत हो जाने पर भी विमल पकड़कर जेल भेज दिया गया। मिलमालिकों की चाल काम कर गई और अशान्त मजदूरों को विनाश का मुँह देखना पड़ा। दूसरे दिन अखबारों में इस भीषण काड की रिपोर्ट तीन-चार पंक्तियों मे छपी— '... मिल में उपद्रवी कुलियो पर हलका लाठी चार्ज किया गया। कुछ कुली आहत भी हुए। चोटें हलकी थी। परिस्थिति तुरत काबू मे आगई इत्यादि।" प्रेस रिपोर्टर पहले ही से सेठ जी के साथ उपस्थित था—कार्रवाई पूर्व निश्चय के अनुसार ही हुई थी। बेला घर लौटी और अपने कमरे मे जाकर बिना कपड़े बदले ही खाट पर लेट गई। रात थोड़ी ही बाकी थी—मानसिक उत्तेजना के कारण सो न सकी, आँखे बन्द करके वह उस "दयापूर्ण हत्याकाड" के निर्दय चित्र देखती रही। धीरे-धीरे रात समाप्त होगई। उसने बहुत ही अधीर होकर सोचा कि जिसे वह बहुत दिनों से दुनिया समझती रही, वह दुनिया नहीं है। क्लबों की रंगरलियों को दुनिया नही कहा जा सकता और न रात-दिन के हास-विलास को ही दुनिया कहना उचित है। बेला को विश्वास होगया कि वह अपने जीवन के साथ जो खेलवाड कर रही है, वह कितना हलका, कितना घृणित और कितना अमानुषी है। शानदार जीवन को ही जीवन कहा जा सकता है। जिस समय विमल की जाँघ में गोली लगी और वह चक्कर खाकर गिरा, उस समय बेला चीख उठी थी— वह सहायता के लिए दौड़ना चाहती थी, पर सेठ मनसुख दास ने आगे बढने से रोका। विमल घास पर लोट गया था, पर वह पड़ा-पड़ा कुलियो को शान्त रहने के लिए समझा रहा था। जब उसे उठाया जाने लगा तो उसने कहा— "भाई, पहले उस बच्चे को देखो, उस स्त्री की रक्षा करो, देखो वह घायल बच्चा वहाँ पड़ा है, उसे शीघ्र डाक्टरी सहायता दो।" बेला ज्यों-ज्यो पिछली रात की बाते याद करती, उसका दिमाग उबल उठता। उसने बहुत बार अपने को समझाया, जब उसका खिन्नपन किसी प्रकार भी मानने को प्रस्तुत नहीं हुआ तो वह अपने पिता के कमरे की ओर चली। मि० चटर्जी शान्त भाव से चायपान कर रहे थे, बेला को देखते ही मुस्कराकर बोले—

"बेटी, रात को मिल में दंगा हो गया। तुम भी हड़ताल देखने गई थीं—भगवान् को धन्यवाद। मैंने घबराकर पुलिस को फौरन फोन कर दिया था।"

वेला झल्ला उठी—फिर वही चर्चा! मि० चटर्जी चाय की गरम घूँट गले के नाचे उतारकर बोलने लगे—"मैने तुम्हें बार-बार समझाया कि कुली-मजदूरो का राग न अलापा करो। देखातुमने, इन जगलियो ने रात को कैसा उपद्रव आरंभ कर दिया। यदि ठीक अवसर पर पुलिस न आ जाती तो तुम मे से एक का भी जीते जी घर लौटना सभव न था।"

वेला बोली—"पापा, मैं अपने विचार नहीं बदल सकती। मैंने कई बार तुमसे कहा है। मानवता से हम दूर जा पड़े हैं। कुली और मजदूरो से घृणा करना क्या है, अपनी मानवता का मुँह अपने ही हाथों से काला करना है।"

चाय की प्याली होठों मे लगाते हुए बैरिस्टर साहब बोले—"सो कैसे?"

वेला ने कहा—"यदि ससार में दयनीय प्राणी न होते तो व्यर्थ होकर दया का समूल नाश ही हो जाता और 'दया' का नाश होते ही हम पशुओं की तरह एक दूसरे को फाड़कर खाने लग जाते। कुली-मजदूरों को तुम "दयनीय प्राणी" समझो। इनपर दया करने के बहाने अपने हृदय मे दया की ज्योति जगमगाने दो। इससे तुम्हारा सारा अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा और तुम्हारी भावना मे कोमलता भर जायगी, जिससे तुम्हे अनिर्वचनीय सुख प्राप्त होगा।"

मि० चटर्जी ने कहा—"यह तो तुम सेटपाल की तरह बोल गईं। मै प्रसन्न हुआ—समझाने का तुम्हारा ढङ्ग बहुत ही प्रभावशाली है। मै विशेष प्रसन्न होता यदि तुम फिर से कालेज मे नाम लिखवाकर कानून की परीक्षा पास कर लेतीं।"

वेला अपने पिता की इस तीव्र-कटूक्ति से झल्ला उठी, पर चुप लगा गई। वह अपने विचारों में डूब-उतरा रही थी। कभी वह रात की घटनाओं पर विचार करती तो कभी अपने जीवन के भविष्य के विषय में सोचती। मि० चटर्जी ने पुत्री को चुप देखकर कहा—"क्या सोच रही हो वेला?"

"यही कि"—वेला बोली—"तुम यदि मेरी भावनाओं को समझ पाते पप्पा,

तो मुझे बड़ी शान्ति मिलती। मैं तो ज्यों-ज्यों इन तथाकथित अमीरों के अन्तर्लोक में प्रवेश करता हूँ, मुझे तीव्र घृणा और बर्बरता के अतिरिक्त दूसरी कोई चीज दिखलाई ही नहीं पड़ती। मैं यह सोच भी नहीं सकती कि…………।"

मि० चटर्जी बोले—"तुम अपने भविष्य को अपने ही पैरों से रौंदना चाहती हो, बेटी।" बेला ने दुःखभरे स्वर में कहा—"पप्पा, रौंद चुकी, अब कुछ भी शेष नहीं बचा। मैं अब बच्ची नहीं रही, संसार को कुछ-कुछ समझने के योग्य बुद्धि प्राप्त कर चुकी हूँ, पर समाज से मैं केवल दो-चार सौ तरह के कपड़ों के नाम, सौ दो सौ तरह के सेंट, साबुन, लिपस्टिक के नाम, पचास सौ तरह के गहनों के नाम ही आज तक सीखती रही और मैंने सीखा अपने को सर्वश्रेष्ठ और दूसरों को महातुच्छ समझना।"

मि० चटर्जी ने सोचकर कहा—"हूँ।"

बेला बोली—"क्या भाँति-भाँति की मोटर गाड़ियों, भाँति-भाँति के कटेछँटे कपड़ों, रङ्ग-बिरङ्गे गहनों को ही समाज या दुनिया कहना अधिक उपयुक्त होगा पप्पा? मुझे तो ऐसा लगता है कि संसार भर के भूखे खूँखार भेड़िये मेमने की खाल ओढ़े तुम्हारे तथाकथित भद्रसमाज में सदस्य बनकर अपनी दानवीय इच्छाओं को निष्ठुरतापूर्वक तृप्त किया करते हैं।"

मि० चटर्जी बोले -"छिः बेला, खाट से उठते ही तुमने कटु आलोचना शुरू कर दी। जिस समाज में तुम हो उसके प्रति वफादार रहना तुम्हारा धर्म है।"

बेला कुर्सी से उठती हुई बोली—"मैंने बहुत बार निश्चय किया कि अपना उद्धार करूँ, पर चिरसंचित कुसंस्कारवश मैं वैसा न कर सकी—खटाई से निकलकर बार-बार 'चूक' में गिरती गई, पर आज अन्तिम बार तुमसे यह प्रकट करती हूँ कि मैं अब प्राण रहते तुम्हारे भद्रसमाज का मुँह न देखूँगी। मैं दुष्ट, धूर्त और घातक सभ्यों से कोमल, सरल और विश्वास-पात्र जङ्गलियों को ही व्यवहार और सहयोग का विशेष अधिकारी मानती हूँ। मैं चली।"

बेला ज्यों हीं अपने कमरे के दरवाजे पर पहुँची, सेठ मनसुखदास की गाड़ी ने कोठी के फाटक को पार किया। उसने जलती आँखों से गाड़ी को देखा। यदि उसकी दृष्टि में जला देने की शक्ति होती तो वह उसी क्षण उस अभागी गाड़ी और उस पर के जघन्य आरोहियों को खाक में मिला देती। गाड़ी बैरिस्टर साहब के कमरे के सामने आकर रुकी और सेठ जी के साथ मि० सेनगुप्ता घबराये से उतरे। दोनों को दाँत पीस-पीसकर बेला ने देखा और वह पैर पटकती हुई अपने कमरे में चली गई। अपने मन के उत्ताप को यदि वह किसी दूसरे तरीके से निकाल सकती तो वह बाज न आती। आध घन्टे के बाद मि० चटर्जी के साथ सेठ जी और सेनगुप्ता फिर अपनी गाड़ी पर बैठे और चले गये, तो बेला ने पिटर से कहा—"पिटर, तुम्हें मालूम है, ब्रह्मचारी जी का आश्रम किस मुहल्ले में है।"

पिटर सोचकर बोला—"वह सिविल लाइन की तरफ है। मिल के नजदीक।"

"अच्छा एक गाड़ी ला दो"—बेला गम्भीरता से बोली—"मैं वहाँ जाना चाहती हूँ।"

गाड़ी आई और बेला उसे आश्रम का पता बतलाकर उसमे थकी-हारी-सी बैठ गई। उसके भीतर तरह-तरह के विचारो का मथन हो रहा था, वह यह निश्चय नहीं कर पाती थी कि उसे क्या करना चाहिए। कर्तव्या-कर्तव्य का मोह बेला को विकल कर रहा था। थोड़ी दूर जाने के बाद बेला ने गाड़ीवान से कहा—"आश्रम की ओर नहीं, लौटकर कोठी की ओर चलो!"

गाड़ीवाले ने आज्ञा का पालन किया। जब बेला फिर लौटकर अपनी कोठी मे आगई तो पिटर ने आगे बढ़कर गाड़ी का दरवाजा खोलते हुए कहा—"आप बहुत जल्द लौट आईं?"

बेला ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपने कमरे मे जाकर पहले तो कुर्सी पर बैठ गई, तदनंतर कुछ देर सुस्ताकर वह उठी, फिर कीमती शीशे के सामने खड़ी होकर अपने को देखती हुई बोली—"नहीं··· बेला,···तू आश्रम पवित्र आश्रम के योग्य नहीं है···।" अभागी,

तू आश्रम पर रहमकर। वह पवित्र हुतात्माओं के आत्म-बलिदानों के द्वारा स्वर्ग से भी अधिक पवित्र हो चुका है। अपनी···अपवित्र छाया··· डालकर···स्वर्ग · को नरक···मे परिणत·· करने का··भयानक पाप अपने सिर···मत लाद बेला। तू अपने को··तपाकर पहले खरा सोना··· बना ले, तब कसौटी · पर कसे · जाने का साहस करना। बेला को ऐसा लगा कि धीरे-धीरे उसकी वेदना और मलालों से भरा हुआ अतीत शीशे के भीतर से झलक रहा है—वह अपनी दोनों आँखे बन्द करके औंधे मुँह खाट पर लेट गई।

———

(३४)

सन्ध्या हो गयी थी। अस्पताल के एक शान्त कमरे में, जिसके दरवाजों पर सशस्त्र पुलिस का सतर्क पहरा था, विनय आँखें बन्द किये पड़ा था। उसका एक पैर काट दिया गया था, क्योंकि गोली के घाव से जहर फैलने का खतरा था। कमरा विशाल, स्वच्छ और शान्त था। सन्ध्या की उतरती हुई धूप शीशे के दरवाजों से होकर कमरे को उद्भासित कर रही थी। कमरे में अकेला विमल पड़ा था और दरवाजों पर बन्दूक लिये सिपाही टहल रहे थे। बेला ने उस कमरे में प्रवेश किया, उसके पीछे-पीछे डाक्टर भी था। विमल के यौवन से भरे हुए मुख पर पीलापन दौड़ गया था और उस पीलेपन पर अस्तप्राय दिनकर की सुनहली विभा झलक रही थी। वह शान्त और स्थिर था, मानो मोम का पुतला सफेद चादर से ढका पड़ा हो। सामने ही आलमारी मे नाना आकार प्रकार की शीशियाँ भरी हुई थीं—दवा की गन्ध से उस कमरे का वातावरण भारी और उदास था।

बेला की लम्बी-लम्बी पलकों से छनकर आँसू की दो-चार बूँदें नीचे गिरी। आँखों में झलकनेवाले आँसू को कवि मोती कहते हैं पर नीचे टपक पड़नेवाले आसू को क्या कहना चाहिए, यह आज तक पता न चला।

बेला की ओर उस दृष्टि से देखकर, जिस दृष्टि से प्रायः डाक्टर देखा

करते हैं और जिससे हर्ष, विषाद, या अपनापन कुछ भी प्रकट नही होता, डाक्टर भारी स्वर में बोला—"आप इनसे बाते न करे तो अच्छा।"

बेला बोली—"क्यो ?"

डाक्टर कुछ चिड़चिड़ा प्रकृति का था। उसने कहा—"सरकारी आज्ञा चाहे जो हो पर मै कहूँगा कि मरीज की स्थिति अत्यन्त नाजुक है। आप केवल दूर से देख लें।"

बेला बोली—"महाशय, यह व्यक्ति मेरा भाई है, मै निरीह दर्शक नहीं, इस बहादुर सिपाही की बहन हूँ।"

बेला का सारा अन्तःकरण किसी अनिर्वचनीय आत्मगौरव से सराबोर हो गया। उसने अपनी नसो मे ताजगी और बल का अनुभव किया—वह पूरी ऊँचाई मे तनकर खड़ी हो गई।

डाक्टर झुँझलाया-सा मुँह बनाकर बेला को चश्मे के भीतर से अच्छी तरह घूरता हुआ बोला—"आप तो मि० चटर्जी की ‥ ‥ ‥।"

बेला ने तेजी से उत्तर दिया—"जी हाँ, मैं ‥मै मि० चटर्जी की कन्या हूँ जो इसी वर्ष ओ० बी० ई० भी बनाये गये हैं। मै बगाली हूँ और मेरा भाई हिन्दुस्तानी है। और कुछ पूछना चाहते हैं ?"

वृद्ध बगाली डाक्टर बड़बड़ाया—"आजकी बगालिन लड़कियाँ भी विचित्र होती हैं‥ ‥उफ्, बड़ी मुसीबत है ‥ ‥।"

विमल ने धीरे से कराह कर आँखे खोली तो डाक्टर बोला—"अच्छा अब आप इनसे दो बाते कर सकती हैं—उद्वेग पैदा करने वाली कोई बात ‥ आप समझ गईं न !"

बेला घृणाभरी दृष्टि से डाक्टर की ओर देखकर बोली—"विश्वास रक्खे—आप मुझे जितनी बेवकूफ समझ रहे हैं, उतनी मै नहीं हूँ।"

इतना कहकर बेला विमल के निकट पहुँचकर खड़ी हो गई। विमल ने मानो भूले हुए परिचय को याद कर रहा हो, अच्छी तरह टकटकी बाँधकर बेला को विस्फारित आँखों से देखा और कहा—"कौन बेला‥दी‥दी।"

"हाँ, भैया"—कहकर बेला पास ही की एक कुर्सी पर बैठ गयी और विमल के ललाट पर के बिखरे हुए घुँघराले बालों को हटाती हुई रोने लगी।

विमल बोला—"रोती हो बहिन! तुम्हारा यह भाई अपने··कर्तव्य-भार को तुम्हारे कन्धो पर लादकर··· ··अब·····उस पार·····जाना चाहता है।"

बेला की रुलाई की बाँध टूट गयी। वह ज्यों-ज्यों रोती गई, उसके हृदय का वह दुर्वह भार, जिसे ढोना उसके लिए कठिन था और जिसने उसकी आत्मा के विकास को बिल्कुल दबा रक्खा था, दूर होता गया। एक दो मिनट मे ही अपने आँसुओं से धुलकर बेला बिल्कुल नयी बेला बन गयी। उसकी सारी सुप्त और सकुचित भावनाएँ रुद्र वेग से जाग गईं। उसने अपने भीतर मानवता का अनुभव किया।

विमल फिर अपनी स्मृति को स्थिर करके बोला—"हाय, किशोर भैया इस समय नहीं रहे·· ···नाव बिना पतवार के··कैसे पार ··लगेगी।"

किशोर का नाम सुनते ही बेला चौंक उठी। प्रायः दो साल से उसने किशोर को देखा भी न था। किशोर का लुभावना रूप उसके सामने स्पष्ट हो गया। उसकी एक-एक बात बेला के हृदय मे घुसकर आँधी तूफान की तरह उसकी स्मृति एकाएक हाहाकार करने लगी—जैसे बाँध तोड़कर सागर की उत्ताल लहरे सैकड़ो मील मे हाहाकार मचा देती हैं।

बेला ने विकल स्वर मे पूछा—"किशोर? किशोर कहाँ है भैया?"

विमल आँखे बन्द करता हुआ बोला—"मृत्यु के निकट, जेल मे—वह खून के मुकदमे मे ·····फाँसा गया है। सजा भी सुना दी गई—फाँसी! हुई या··नहीं हे भगवान्!!!"

बेला चीख उठी—"क्या यह सच है?"

डाक्टर, जो निकट ही खड़ा था आगे बढ़कर बोला—"अब आप नहीं ठहर सकतीं। इस तरह आप मरीज की जान ले बैठेंगी—मैंने पहले ही समझा दिया था।"

बेला ने डाक्टर की डाँट-फटकार की ओर ध्यान नहीं दिया। वह विमल की बुरी तरह धड़कनेवाली छाती पर हाथ रखकर बोली—'विमल भैया, विमल भैया, क्या किशोर·····सच बोल रहे हो।"

विमल ने पूरा बल लगाकर अर्धमूर्छितावस्था में ही कहा—"हाँ, !"

वेला कमरे से बाहर हो गई। डाक्टर विमल की जाँचकर जब बाहर निकला तो पगली बेला की ओर देखकर बोला—"आप की तबीयत ठीक नहीं जान पड़ती।"

वेला बोली—"अब मरीज की स्थिति कैसी है।"

डाक्टर रुक्षस्वर मे बोला—"अब शायद आपको उसके साथ मिलकर कभी मिल मे हड़ताल करवाने का या मजदूरों को मिट्टी मे मिलवाने का अवसर नहीं मिलेगा।"

खिन्न और पगली बेला डाटकर बोली—"बन्द करो बकवाद।"

डाक्टर चौंककर बेला की ओर देखने लगा। वह तेज चाल से चलकर अस्पताल के बाहर हो गयी। सध्या होगई थी और सड़क पर बिजली की बत्तियाँ जल गई थीं। बेला मानो आवेश में कोठी की ओर चली।"

---

(३५)

खुली सड़क पर पहुँचकर एक बार बेला ने चारो ओर देखा। दूकानों मे सजाई हुई शीशे की आलमारियों के भीतर जलनेवाले बिजली के बल्वों का प्रकाश बाहर सड़क पर फैलने लग गया था। बेला चुपचाप आत्म-विस्मृता-सी चली। काफी दूर जाने के बाद उसे चेत हुआ। वह रुककर इधर-उधर देखने लगी—सामने एक खाली गाड़ी आ रही थी, दो मरियल घोड़ों की पीठ पर सपासप कोड़े फटकारता हुआ ऊबा हुआ-सा बूढ़ा कोच-वान अपनी पुरानी गाड़ी को खुली सड़क पर लिये जा रहा था—चलने से उस गाड़ी का प्रत्येक टुकड़ा अलग-अलग हिलता था और लोहे के चक्के से कर्णकटु खड़खड़ आवाज भी निकल रही थी। ऐसी गाड़ी पर बैठना बेला कभी भी पसन्द न करती, यदि उसकी सारी बाह्य-वृत्तियाँ सिमिटकर किसी विशेष केन्द्र में केन्द्रित न हो गई होतीं। बेला गाड़ी रुकवाकर उसपर बैठी और बोली—"आश्रम की ओर चलो, सिविललाइन के पास।"

गाड़ी चली और बेला अपने विचारो मे खो गई। थोड़ी देर के बाद गाड़ीवान ने गाड़ी रोककर पूछा—"हुजूर यही तो आश्रम है जरा साइनबोर्ड पढिए तो।"

बेला ने चौककर देखा, वह महावीर जी का मन्दिर था और वैरागियो का विख्यात अखाड़ा, जिसके महत तीन-तीन बार अश्राव्य मुकदमे मे फँस चुके थे, पर देवता के बल से जेल न जा सके।

बेला ने कहा—"यह नही है, आगे बढो।"

गाड़ी खड़खड़ाती हुई फिर आगे बढी। दूसरी बार जहाँ गाड़ी खड़ी हुई, वह एक "कीर्तन समाज" का भवन था। झल्लाकर बेला ने फिर गाड़ीवान को आगे बढने का आदेश दिया तो गाड़ीवान बोला—"आगे तो कच्चा रास्ता है' जो दूर-गाँव मे गया है। हुजूर कहाँ जाना चाहती हैं !"

बेला ने अपने ललाट का पसीना पोछकर कहा—"मै आश्रम मे जाना चाहती हूँ।"

गाड़ीवान कोचबक्स से अपना आधा शरीर नीचे की ओर लटकाकर गाड़ी के भीतर झाँकता हुआ बोला—"किस मुहल्ले में आश्रम है ? आगे शहर नहीं है क्या लौट चलूँ ?"

बेला की स्वीकृति पाकर गाड़ीवान ने गाड़ी को लौटाया, जिसके लिए वह स्वय भी उत्सुक था। प्रायः एक घटे तक चलने के बाद गाड़ी बेला की कोठी पर पहुँच गई। बेला गाड़ी से उतरते ही अपने पिता के कमरे की ओर चली, जहाँ मि० सेन बैठे उसकी आकुल प्रतीक्षा कर रहे थे। बेला ने किसी ओर भी ध्यान नहीं दिया। चटर्जी साहब कागजो, पुस्तकों और मुकदमे से भरी मेज के सामने बैठे चुरुट पी रहे थे। बेला को देखते ही मि० सेन ने कहा—"अहा, आप आ गईं। मैंने आपको अस्पताल से निकलते देखा था।"

मि० चटर्जी घबराये-से बोले—"क्या कहा, अस्पताल से ! बेला···।"

बेला अपने चेहरे पर के बिखरे बालों को सँभालती हुई बोली—"जी हाँ, मैं अस्पताल गई थी।"

"क्यों"—मि० चटर्जी और मि० सेन एक साथ ही बोल उठे। बेला कुर्सी पर बैठती हुई बोली—"विमल भइया को देखने गई थी।"

मि० चटर्जी की ओर स्थिर दृष्टि जमाकर मि० सेन ने बेला से कहा—"विमल ? कौन विमल ! वही, जिसे हड़तालियों को भड़काते समय गोली लगी थी—ऐसे खतरनाक व्यक्ति के सम्पर्क मे तुम्हें नहीं आना चाहिए, बेला देवी।"

मि० चटर्जी ने अपनी दोनों गोल-गोल आँखों को ललाट पर चढ़ाकर कहा—"बिलकुल ठीक कह रहे हो सेन ! मै ऐसी बातों को कभी भी पसन्द नही करता।"

बेला का दुःखित हृदय झल्ला उठा। वह तेज आवाज में बोली—"मि० सेन, क्या विमल आपसे भी अधिक खतरनाक है ? और पप्पा ! आपको इन जैसे नालायक व्यक्तियों के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए—मैं भी ऐसी बातों को पसन्द नहीं करती।"

मि० सेन का चेहरा फक् पड़ गया। बेला से ऐसे अप्रत्याशित व्यवहार की आशा उन्हें न थी। अपनी आशा के प्रतिकूल बेला के मुँह से उन्हें जो बात सुननी पड़ी उसने सेन को मर्माहत कर दिया। मि० चटर्जी मेज पर जलता हुआ सिगार रखकर, घबराये-से, बेला के तमतमाये हुए चेहरे को विस्मय-विस्फारित आँखों से देखते रह गये।

मि० सेन ने चटर्जी साहब को लक्ष्य करके कहा—"महाशय, आप सुन रहे हैं, बेला देवी मेरा अपमान कर रही हैं।"

मि० चटर्जी चौंककर बोले—"कानूनी दृष्टि से यह अपमान तो नहीं हुआ, बेला के शब्द कुछ कठोर अवश्य थे जिसके लिए वह आप से माफी माँग लेगी।"

उदास होकर मि० सेन ने कहा—"महाशय, आपने भी हद कर दी। माफी माँगने से क्या होगा—इन्होंने मेरे व्यक्तित्व पर जो हमला किया है।"

मि० चटर्जी विशेष रूप से सजग होकर बोले—"इस मामले को यहीं दबा देना अच्छा होगा······।"

रुआसे से होकर मि० सेन ने कहा—"तो क्या मैं दावा करने जा रहा

हूँ, महोदय, आप जरा सहानुभूतिपूर्वक विचार तो कीजिए कि मैंने ··।"

बेला बोली—"आपको कोई अधिकार नहीं है कि मेरे व्यक्तिगत मामलों में अपनी गन्दी टाँग अड़ावे। मैं विमल के निकट जाऊँगी या नरक में जाऊँगी; आप होते कौन हैं, मेरी भद्दी और सन्देह पैदा करनेवाली आलोचना करने वाले !"

मि० सेन जब तक कुछ बोलें, बीच ही में मि० चटर्जी बोल उठे—"बेला ठीक ही तो पूछ रही है तुमसे। विलायत में ऐसा नियम नहीं है कि किसी अरक्षणीया कुमारी के व्यक्तिगत आचरण के सम्बन्ध में उसका मित्र कुछ भी ···।"

"आग लगे विलायत की इन बातों मे"—मि० सेन कुढकर बोले—"आपने भी कहाँ का नजीर लाकर यहाँ पेश कर दिया, महाशय ।"

मि० चटर्जी बोले—"तो क्या हिन्दुस्तान जैसे जङ्गली देश मे भी ऐसा बल है, जो वह अपनी विशेषताओं के कारण दूसरे देशों मे नजीर का रूप ग्रहण करे ! कभी नहीं, मि० सेन ! मैं ठीक ही कह रहा हूँ। बिना एक शब्द बोले जलती हुई आँखों से दोनों—पिता और पुत्री—को देखते हुए मि० सेन चले गये और यह बड़बड़ाते हुए अपनी गाड़ी पर बैठे —"ये दोनों ठग हैं, इनकी खुशामद मे मेरे बासों हजार रुपयों पर पानी फिर चुका··· · अब छोकरी सीधी तरह बात भी नहीं करती ····ऐसी का मुँह काला।"

सेन के जाने के बाद दीर्घ श्वास लेकर बेला बोली—"पप्पा, विमल भैया अब नहीं बचेंगे। उनका एक पैर तो पहले ही काट डाला गया है, पर अब तो खून में जहर भी फैल गया है।"

चटर्जी ने रूखे स्वर में कहा—"कौन है विमल ? मैं नहीं जानता।"

बेला कहने लगी—"तुम बहुत भूलते हो पप्पा ! वही हैं विमल, जिन्हें उस रात को गोली लगी थी, जब मिल में हड़तालियों ने तथाकथित उपद्रव कर दिया था।"

"ठीक है"—मि० चटर्जी बच्चों की तरह प्रसन्न होकर बोले—"याद आया। यह तो बुरा हुआ बेटी, यदि कोई हर्जाने का दावा करे तो

मिलवालो को मोटी रकम भरे बिना छुटकारा नहीं है—कानून विमल के पक्ष में है।"

बेला ने पिता के सारवान वक्तव्य की ओर कतई ध्यान नहीं दिया। वह फिर कुछ सोचकर बोली—"पप्पा, आप किशोर बाबू को पहचानते हैं, वे प्रायः हमारे यहाँ आते-जाते थे।"

"कौन किशोर बाबू?"—मि० चटर्जी सोचकर बोले—"बम्बई के जौहरी?"

"नहीं पप्पा"—बेला बोली—"तुम भूल रहे हो, वे हमारे यहाँ नित्य आते थे।"

"ओ, ठीक है बेटी"—"मि० चटर्जी ने ऐसे स्वर मे कहा, मानो कोई बहुत ही मूल्यवान बात उन्हें ठीक अवसर पर याद आगई—"श्रीरामपुर के जमीन्दार किशोरचन्द्र गुप्त—जैसोर के रहनेवाले, ठीक है न!"

बेला ने खिन्नस्वर में कहा—"पप्पा, तुम बम्बई के लखपती जौहरी, श्री रामपुर के राजा या किसी बड़े मिल ओनर से निम्न स्थिति के व्यक्ति की कल्पना भी नहीं कर सकते। किशोर तो एक साधारण व्यक्ति थे—मेरे सहपाठी।"

चटर्जी झल्लाकर बोले—"मै किसी ऐरे-गैरे को नहीं जानता। तू क्या क्या कहना चाहती है, साफ-साफ बोल?"

बेला ने अपनी झल्लाहट को किसी तरह रोककर कहा—"पप्पा, क्या यह दुनिया जौहरियों और जन्मीदारो की ही है? साधारण जन भी तो स्वच्छन्दतापूर्वक इस वसुधा के कोने-कोने मं बसे हुए हैं! जिन किशोर बाबू की चर्चा मैं कर रही हूँ, वे एक साधारण व्यक्ति थे और थे हमारे बहुत ही अकृत्रिम मित्र। आज-कल वे जेल में हैं—उन्हें फाँसी की सजा हो गई है, सुना तो ऐसा ही है।"

"फाँसी"—मि० चटर्जी चीख उठे—"ऐसे व्यक्ति को मैं जानना भी नहीं चाहता, बेला।"

बेला स्थिर स्वर मे बोली—"पप्पा, घबराने से काम नहीं चलेगा, मुकदमे

के दौरान में तुमने कितने ही फाँसी पड़ने वालों का साथ किया होगा। इस बार किशोर का साथ दो।"

अत्यधिक विकल होकर मि० चटर्जी बोले—"भला यह कैसे हो सकता है। मैं तो उसके मुकदमे के विषय में कुछ भी नहीं जानता और फीस ·।"

बेला ने कहा—"फीस तो मै दूँगी और अदालत मे उनके मुकदमे की पूरी फाइल होगी। तुम इतने बड़े बैरिस्टर हो, फिर मैं तुम्हें क्या बतलाऊँ।"

"नही बेटी"—मि० चटर्जी ने रुक्षस्वर में कहा—"मैं क्यों ऐसे मामलों में समय नष्ट करूँ।"

बेला का मन घृणा और खिन्नता से भर गया। वह बोली—"मै आग्रह करती हूँ पप्पा! मैने कभी भी कुछ तुमसे नहीं माँगा—क्या यह अन्तिम भीख भी तुम नही दोगे?"

मि० चटर्जी का हृदय उमड़ आया। वे अपनी कन्या की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले—"बेटी, मैंने कब तुम्हारा आग्रह टाला, पर जिस मुकदमे के विषय मे मैं कुछ भी नहीं जानता उसमे · ···।"

बेला बोली—"अपने मुन्शी को हुक्म दे दो, वह पूरी जानकारी प्राप्त करके तुम्हें बतला देगा। आवश्यक कागज-पत्र अदालत देगी ही—अब देर न करो पप्पा!"

मि० चटर्जी ने बेला की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया, पर जब उनके मुन्शी ने यह रिपोर्ट दी कि किशोर एक दारोगा की हत्या करने के अपराध में फाँसा गया है, बैरिस्टर साहब, बैरिस्टर की तरह बोले—"मै केवल 'हत्या' जानता हूँ, यह नहीं जानता कि हत्या मेढक की हुई है या हाथी की।"

ठीक समय पर हाईकोर्ट मे अपील दायर करके मि० चटर्जी ने बेला से कहा—"बेटी, किशोर का उद्धार असम्भव है, पर मै पूरा जोर लगाऊँगा! अगर फाँसी के बदले कालेपानी की सजा भी बदलवा सका तो मै इसे अपनी चरम सफलता ही समझूँगा। मुकदमा बिलकुल एकतरफा ही हुआ है—भगवान मालिक हैं।"

बेला रुआसी-सी होकर बोली—"पप्पा, उन्हें किसी तरह बचा लो।"

मि० चटर्जी ने कहा—"मेरी रानी बेटी, मारने और बचानेवाला कोई दूसरा ही है।"

यद्यपि बेला कभी भी किसी अदृश्य शक्ति पर विश्वास नहीं करती थी, पर पिता के मुँह से ईश्वर का सकेत मिलते ही उसका सारा अन्तःकरण किसी अनिवर्चनीय पुलक से भर गया। वह समझ नहीं सकी कि उसका मानसिक धरातल क्यों और कैसे हठात् बदल गया। उसने अपने पिता से साग्रह पूछा—"पप्पा, क्या मारने और बचानेवाला कोई दूसरा ही है, जो कानूनी-शक्ति से परे है।"

चटर्जी ने कहा—"हाँ बेटी, वह परमात्मा है जिसे सर्वशक्तिमान कहा जाता है। हम उस 'अद्वितीय' को नहीं जानते—यही मानव की सबसे बड़ी कमजोरी, कमी और कृतघ्नता है।"

बेला ने कुछ भी नहीं सुना। उसकी चेतना बाहर से सिमटकर उसके अन्तर मे प्रवेश कर रही थी—वह डगमगाते पावों से अपने कमरे की ओर चली। कमरे मे पहुँचकर वह एक कुर्सी पर बैठ गई और इस नूतन-तत्व की चिन्ता मे डूबने-उतराने लगी। उसने सोचा, यह सर्वशक्तिमान कौन है जो ससार के हिताहित का सचालन स्वच्छन्दभाव से करता है? क्या वह किशोर की रक्षा कर सकेगा? क्या वह उसके अन्तःकरण को अपने स्पर्श से पवित्र बना सकेगा? क्या वह उसके दामन के अनगिनत दागो को अपने करुणा के जल से धो सकेगा? बेला सोचने लगी—मै उसे कैसे पुकारूँ? उसकी दया' को अपने पक्ष मे कैसे सजग करूँ? वह कठोर न्यायी है, पर उसकी यह कठोरता भी निश्चय ही परिणाम मे दयापूर्ण और चिरसुखदायिनी होगी। ज्यों-ज्यों बेला विचार करती, उसका हृदय हलका होता जाता। सोचते-सोचते वह मानों अतल सागर मे डुबकियाँ लेने लगी। उसने अपने को भार-मुक्त और अत्यन्त पारदर्शी देखा। उसे ऐसा जान पड़ा कि एकाएक वह ऐसे प्रकाश मे पहुँच गई जिसमे पत्थर और लोहा भी पारदर्शी बन जाता है। उसने मुड़कर अपने अतीत को देखा, वर्तमान को हस्तामलकवत् देखा और भविष्य को उसी दयामय के भरोसे छोड़ दिया। बेला को यह समझते देर नही लगी कि वह कितने गन्दे रास्तो से होकर विनाश की ओर बढ रही थी। वह सिहर

उठी, उसकी आँखों से आँसू की दो-चार बड़ी बड़ी बूँदे टपक पड़ीं। उसने अनुभव किया कि जिस मल को सातों सागर का जल धोने में अक्षम है, उसको आँखों के दो-चार बूँद जल से धो डालना संभव है। बेला ने भावविह्वल-सी होकर उस सर्वशक्तिमान को पुकारा, जिसे भूलकर वह अपने को और चिरसत्य को भूल बैठी थी।

---

(३६)

जब हाईकोर्ट मे किशोर के मुकदमे की सुनवाई हुई तो मि० चटर्जी ने अपना पूरा जोर लगा दिया। वे अपने प्रान्त के सर्वश्रेष्ठ बैरिस्टर थे। उन्होंने बहस की आँधी उठाकर जजों के दिमाग को अस्त-व्यस्त कर दिया। सारे के सारे मुकदमे की धज्जियाँ उड़ाकर कुशल बैरिस्टर ने यह सिद्धकर दिया कि दारोगा ने आत्म-हत्या की थी, क्योंकि उसने एक मोटी रकम अनुचित रीति से डकार लेने के बाद कानून को धोखा देना चाहा था। किशोर अकारण पकड़ा गया और थाने मे आग लगाने की और उस आग मे दारोगा के मृत शरीर को झोंक देने की बात एक खतरनाक, मनगढन्त किस्सा है, जिसका आदि और अन्त असत्य, चालबाजी और व्यक्तिगत शत्रुता पर निर्भर करता है। दारोगा मजहरअली का चार्ज लेने मृत दारोगा आया था और अपने पापो को पचाने के लिए ही खुद मजहरअली ने यह नाटक खड़ा कर दिया।

मुकदमे के दौरान मे बेला हाईकोर्ट की अदालत मे बैठी रही। वह कभी मन ही मन हँसती और कभी रोती। मुकदमा समाप्त हो जाने के बाद मि० चटर्जी ने बेला से कहा—"बेटी, परिणाम के प्रति विशेष आशावान होना मूर्खता होगा। मै शायद अपने प्रयत्न मे विफल होऊँगा।"

बेला पूर्ण आत्मतोष से बोली—"क्या जेल में जाकर किशोर से मुलाकात कर सकती हूँ? तुम ऐसा प्रबन्ध कर दो; यह मेरी अन्तिम अभिलाषा है पप्पा, दया करो।"

बैरिस्टर साहब ने सारी व्यवस्था कर दी—क्योंकि वे अपनी निराश पुत्री को सतोष देना चाहते थे।

× × ×

विशाल फाटक, सतरी के भारी जूतो की कर्कश आवाज ! बेला ने धड़कते हुए हृदय से जेल में प्रवेश किया। वह एक ऐसे वातावरण मे पहुँचकर काँप उठी, जिसमे मूक पीड़ितो की आह भरी हुई थी, वह ऐसी जमीन पर चलकर सिहर उठी, जिसमे न जाने कितने आँसू सूखे होंगे। सर्वत्र आतक का राज था और पाले हुए पशुओं की तरह सैकड़ों कैदी जीवन के दिन अपमान, घृणा, झुँझलाहट, लाचारी और कठोरता के साथ व्यतीत कर रहे थे। बेला की समझ मे यह बात नही आई कि मानव ने मानव के लिए इतना विशाल यमलोक का निर्माण किस उद्देश्य से किया है, मानव के प्रति मानव इतना बर्बर और निष्ठुर क्यों होगया !

आगे आगे वार्डर चल रहा था और पीछे-पीछे बेला अपने काँपते पैरों से जा रही थी। वह ज्यों-ज्यों जेल के भीतर घुसती जाती, उसका हृदय धड़कता जाता। वह स्वप्नाविष्ट-सी चुपचाप चल रही थी और कैदी अवाक् होकर उसकी ओर देख रहे थे। एक बड़ी सी इमारत के भीतर वह घुसी और कई कमरों को पार करके एक अन्धकारपूर्ण गदी कोठरी के सामने खड़ी होगई। यह कोठरी एक बड़ी इमारत के भीतर थी, जहाँ प्रकाश और धूप का पूरा अभाव था। वार्डर ने कहा—"इसी कोठरी मे वह कैदी है।" बेला ने सिहरकर देखा, उस कोठरी के दरवाजे के ऊपर एक तख्ती लगी हुई है, जिस पर लिखा हुआ है "फाँसी"। इन दोनों अक्षरों ने दुनाली के दोनो मुँह से निकलनेवाली दो भयानक गोलियो का काम किया। बेला धड़कते हुए हृदय से कोठरी के सामने खड़ी होगई—भीतर अन्धकार था। वह आँख गड़ाकर देखने लगी। झनझन आवाज के साथ किशोर दरवाजे के निकट आकर खड़ा होगया। बेला किशोर को देखते ही अपने दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर रोने लगी।

सहज शान्तस्वर मे किशोर बोला—"बेला, रोती हो ? तुमने रोना कब सीखा, बेला ?"

बेला रोते-रोते बोली—"तो क्या यह हँसने की जगह है, किशोर! हाय, मैं नहीं जानती थी कि तुम अपने आपको मिटा दोगे।"

किशोर बोला—"देवी, मेरा प्रत्येक क्षण बहुत ही विकलता से व्यतीत हो रहा है। मै नाना प्रकार के कामों मे फँसाकर अपने आपको भूला रहता था—अब तो यहाँ कोई काम रहा नहीं। मेरा अतीत मुझे बहुत ही सता रहा है, बेला!"

बेला की रुलाई उसकी छाती फाड़कर निकलना चाहती थी, पर उसने पूरा बल लगाकर अपने को रोका और वहीं जमीन पर बैठ गयी। किशोर फिर बोला—"बेला, तुम मेरा तड़पना देखने यहाँ भी आगई। मेरी पीड़ा की रही सही कसर भी पूरी हो गई, बेला रानी। मेरे पापों का प्रायश्चित्त आज पूरा होगया।"

बेला अपराधिनी की तरह बोली—"मै क्या करूँ मेरे किशोर, जिससे तुम्हें शान्ति और सुख प्राप्त हो। मै जानती हूँ, तुम्हारे इस विनाश का सारा दायित्व मेरी कुबुद्धि पर है। मैंने तुम्हें पहचाना नहीं, हाय अब क्या करूँ?"

किशोर ने कहा—"मैंने कोई भी अपराध नहीं किया, पर केवल इसी आशा से कि मुझे जल्दी फाँसी दे दी जायगी, मैंने झूठमूठ अपराध स्वीकार कर लिया, पर देखता हूँ कि दुर्भाग्य भी मुझसे घिनाता है। फाँसी की डरावनी रस्सी भी मुझे दूर से ही ललचा रही है, तरसा रही है। मै मरना चाहता था बेला रानी, पर मेरी दूसरी सभी इच्छाओं की तरह यह इच्छा भी मुझे धोखा दे रही हैं।"

बेला आवेश मे आकर अपने सिर के खुले हुए बालो को अपनी दोनों मुट्ठियों से कसकर पकड़ती हुई बोली—"हे भगवान्, मै क्या करूँ, मै कैसे तुम्हे तोष दूँ?"

किशोर ने मुस्करा कर कहा—"देवि, जो होना था होगया। अब अपने पिता जी से कहो कि वे शीघ्र मुझे फाँसी पर चढ़ा देने की पैरवी कर दें—यह मेरे लिए बड़ा ही उपकार होगा। मैं अपनी साँसों के भार से तग आगया। मेरा अतीत सारी रात सारा दिन मेरे सामने खड़ा होकर मुझे

रुलाता और तड़पाता रहता है। अवस्था विशेष में जीवन से मृत्यु प्यारी हो जाती है।"

वेला बोली—"मैं तुमसे एक भीख चाहती हूँ।"

बेला आँचल पसारकर खड़ी होगई और रोती हुई किशोर की ओर देखने लगी।

किशोर कराहकर बोला—"मै क्या दे सकता हूँ रानी! जीवन और मृत्यु के पथ का एक आशाहीन पथिक मात्र हूँ। तो ससार से क्षमा की भीख माँग रहा हूँ—किसी को कुछ देने की स्थिति मे न तो मैं पहले था और न आज हूँ। परमात्मा ने मेरी नाना लालसाओं को मिट्टी मे मिलाकर यद्यपि मेरे सार जीवन को ही हाहाकार से भर दिया था, पर उनकी इस कठार कृपा के अनगिनत चिन्ह मेरी सांस-साँस पर मौजूद हैं—मै अपने समस्त जीवन को ईश्वर के प्रहारों से भरा हुआ पाता हूँ। यही मेरे सुख का, सतोष का विषय है कि प्रभु की ही प्रत्येक इच्छा पूरी हुई, मेरी एक भी लालसा फल-फूल न सकी।"

बेला बोली—"मै भिखारिन बनकर आई हूँ। तुमने जब अपने प्राणों का भी दान कर दिया तो दूसरी ऐसी कौन सी वस्तु है, जो तुम्हारे लिए अदेय हो सकती है—सोचो तो सही।"

किशोर गम्भीर होकर बोला—"अपने इस प्रश्न का स्वयम् उत्तर दो, बेला, और अपने इस आँचल को भी स्वयम् ही भरो। मै क्या कहूँ, मुझे भी बतला दो!"

बेला किशोर के पैरों पर गिरने का प्रयत्न करने लगी पर मोटे-मोटे सींखचों ने उसे रोका और वार्डर ने-बढकर कहा—"पाँच मिनट समाप्त हो गया।"

बेला रोती हुई बोली—"हाय रे पाँच मिनट! समय का मूल्य आज मैंने जाना। यदि यह ज्ञान पहले होता तो तुम्हें सींखचों के भीतर न देखकर अपने हाथ की चूरियों के रूप में, अपने माँग के सिन्दूर के रूप में देखती।"

किशोर ने कोई उत्तर नहीं दिया। बेला मुड़ी और चली गई। चलते-

चलते वह बोली—"मैंने तुम्हारे शरीर को खो दिया, पर तुम्हारे यशःशरीर को अपनाकर ही रहूँगी।"

बेला कोठी पर पहुँची। हाईकोर्ट से लौटकर मि० चटर्जी ने बेला को यह सम्वाद सुनाया कि उनका प्रयत्न मिट्टी में मिल गया। यह संवाद सुनते ही बेला खिलखिलाकर हँसी और बोली—"पप्पा, मैं किशोर को छुड़ा लूँगी। तुम चिन्ता मत करो। परमात्मा की महिमा अनन्त होती है—मैं उसे जान गई। उसकी कठोरता के भीतर उसका करुणा-सागर हिलोरें लेता रहता है—अब मैं भुलाई नहीं जा सकती।"

मि० चटर्जी हक्के-बक्के से अपनी पुत्री के हास्योत्फुल्ल मुँह की ओर देखने लगे तो बेला बोली—"एक बार मैं फिर किशोर से मिलना चाहती हूँ, तुम फिर मेरे लिए आदेश प्राप्त कर दो—बस, अन्तिम बार।"

घबराकर मि० चटर्जी ने कहा—"मैं प्रयत्न करूँगा, बेटी।"

दिन शेष हो गया था। बेला बाजार की ओर चली। उसने अपने लिए एक कीमती लाल रङ्ग की सारी खरीदी और कुछ और सामान खरीदे। जब वह लौट रही थी तो अचानक मि० सेन रास्ते मे मिले। गाड़ी रोककर बेला बोली—"अगले सप्ताह मेरे यहाँ प्रीतिभोज होगा। आप अवश्य पधारिएगा।"

घबराकर सेन ने पूछा—"किस दिन? बात क्या है?"

बेला बोली—"मैं फोन से सूचनाएँ दूँगी—अवश्य आइएगा।"

---

(३६)

जीवन की नौका अचानक चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जाती है—"इस परम और चरम सत्य को प्रत्येक मानव जानता है, पर जानकर भी इसे भूल जाने में ही में वह सुखानुभव करता है। करीब एक वर्ष तक जेल की भयङ्करता में पैठकर अपने हृदय की धड़कन गिनता-गिनता जब किशोर ऊब उठा तो उसे जीवन से मृत्यु अधिक प्यारी जान पड़ी। उसने यद्यपि

अपनी जीवन नौका को जानबूझकर चट्टान के सामने, टकराने के लिए, छोड़ दिया था, पर लहरों ने निष्ठुर विनोद का जो प्रदर्शन किया, उससे किशोर का हृदय रो उठा। वह चाहता था कि जल्दी से जल्दी जो कुछ होना हो हो जाय, पर लहरे कभी नौका को उछालती हुई इस ओर ले जाती तो कभी उस ओर। किशोर ने सदा से मृत्यु को एक सस्ता खेल समझा था, पर अवसर आने पर मृत्यु भी उसका साथ छोड़ देगी, ऐसी आशा उसे न थी।"

एक दिन जेलर बहुत ही स्नेह-मिश्रित स्वर में बोले—"मि० किशोर, अब आप·····।"

किशोर बोला—"क्या मेरे छुटकारे की घड़ी आगई—मैं प्रतीक्षा कर रहा था।"

जेलर बोला—"हाईकोर्ट ने अपील को नामजूर कर दिया—मुझे बड़ा दुःख है।"

किशोर बहुत दिनो पर खुलकर हँसा, हँसता हुआ बोला—"भाई, मेरी तपस्या इतनी देर करके फलेगी, ऐसी आशा न थी। अच्छा, अब आप यह बतलाएँ कि किस दिन मैं इस बोझ को आप लोगों के कन्धों पर डालकर आराम की साँस लूँगा।"

जेलर बोला—"शायद परसो····।"

किशोर उमङ्ग मे आकर बोला—"सच कहते हैं आप ! विश्वास नही होता—आप धोखा तो नहीं दे रहे हैं ?"

जेलर हक्का-बक्का-सा होकर बोला—"आपकी तरह व्यक्ति आज तक मैने नही देखा फाँसी आपके लिए मानो अलभ्य लाभ है।"

किशोर बोला—"मित्र, जीवन का याने जीवित रहने का तो कोई उद्देश्य होना चाहिए। उद्देश्यहीन जीवन जीवन नही, जीवन की विभीषिका मात्र है। मेरे जीवन की सार्थकता शेष हो गई—मैं अब आगे बढ़ जाना पसन्द करूँगा।"

जेलर की समझ में किशोर की बाते नहीं आईं। वह चुपचाप सीखचों और दीवारो की जाँच करके चलता बना। फिर वही सन्नाटा। दीर्घ श्वास

लेकर किशोर अपने कम्बल पर लेट गया। छोटी-सी कोठरी और ऊँची-ऊँची दीवारों पर एक मैला छत। छड़ों के पार भी दीवार ही नजर आती है, जरा-सा भी आकाश दिखलाई नहीं पड़ता।

जेलर के जाने के बाद किशोर फिर एकाकीपन से घिर गया—कुछ क्षण के लिए घटाएँ हट गईं। चन्द्र-ज्योत्स्ना क्षण भर के लिए अतृप्त पृथिवी पर गिरी, पर तत्काल फिर कालमेघ ने आकर उस फाँक को भर दिया, जिससे होकर डरती-सी चान्द्रिका झाँक रही थी। इधर-उधर मन को दौड़ाते-दौड़ाते किशोर थक-सा गया। उसने बहुत दिनों से आकाश नहीं देखा था। तारात्रों से भरी रात नहीं देखी थी। ऊषा और सन्ध्या भी वह अभागा नवयुवक नहीं देख सका था। पक्षियों में वह केवल कौवों की आवाज ही सुन पाता था। महीनों एक ही तङ्ग कोठरी में बन्द रहने से उसके भीतर जितना भी रस था या 'रसानुभूति' की शक्ति थी, उसका दुःखमय अन्त हो गया था। वह अपनी धुँधली मनहूस कोठरी की ईंट-इंट को बुरी तरह पहचान गया था। वह दरवाजे में लगे हुए प्रत्येक छड़ को पहचान गया था—कोठरी में जो नमी की गन्ध थी, वह भी किशोर की प्राण-शक्ति से पूर्ण परिचित हो गई थी। सन्तरी के जूतों की भारी चर्रमर्र आवाज और जेल की घटा-ध्वनि रात-दिन सुनता-सुनता वह ऊब उठा था। वह प्रयत्न करता था कि इन भद्दी आवाजों को वह न सुने पर बलपूर्वक उसके कानों में इन शब्दों का प्रवेश होता ही रहता था।

भोजन के लिए जो जली काली रोटियाँ, बथुआ का साग और तीव्र खट्टी इमली की चटनी आती वह किशोर की जीभ को उबा चुकी थी। एक ही गन्ध, एक ही रस और एक ही अनुपात में महीनों से वह अपने भोजन को देख और चख रहा था। जेल की और-और पीड़ाओं से यह एकरसता उसे बहुत ही थका चुकी थी—उसकी मानसिक अचलता उसे बहुत ही खलती थी, पर अनन्योपाय होकर सब कुछ उसे सहना पड़ रहा था।

स्वभावतः कठोर, गम्भीर और सयमीवृत्ति का होने के कारण किशोर ने बहुत कुछ बहुत ही धैर्य से सहा, पर कभी-कभी उसका जी बेतरह ऊब उठता। उसने पौन वर्ष के भीतर एक भी कागज का टुकड़ा नहीं देखा, न एक

बार भी कलम छूने का ही उसे अवसर मिला। रातदिन स्वाध्याय और लिखते रहने के अभ्यासी होने के कारण किशोर का दुर्दान्त मन बड़े वेग से कुछ पढ़ने या लिखने की ओर दौड़ता था, पर उसको वह किसी न किसी तरह रोक-थामकर समझा लेता था। मन की यह दौड़ केवल हानिकारक ही नही थी; उसे कुछ लाभ भी था; यदि उसका मन बीच बीच में उभड़कर उसकी एकरसता के ऊमस को कम न करता तो उसका जेल जीवन और भी दूभर हो जाता। वह अपने उछल-कूद मचानेवाले मन से उलझ पड़ता, उसे समझाता और अपनी विकलता से ही जी बहलाता।

किशोर उँगलियों पर दिन गिनता-गिनता जब बुरी तरह छटपटा उठा तो एक दिन जेलर ने आकर उसकी चरम-निष्कृति का शुभ-सम्वाद सुनाया।"

जेलर के जाने के थोड़ी देर बाद बेला ने प्रवेश किया।

किशोर ने बेला को देखा और आनन्दातिरेक से उछलकर वह दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। बेला ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, जैसा कि उसने कभी नही किया था। किशोर बोला—"बेला, एक शुभ-सवाद सुनाऊँ ?"

बेला का हृदय आनन्द, विषाद और आशङ्का के आघातो से धड़क उठा। वह कुछ बोल न सकी तो किशोर धीरे से बोला—"सो गई क्या बेला ?"

इस रहस्यपूर्ण परिहास से बेला के हृदय मे लज्जामिश्रित आनन्द की एक हलकी लहर पलभर के लिए दौड़कर वहाँ विलीन हो गई इसका पता बेला को भी न चला। वह बोली—"किशोर, एक बार और कहो—सो गई क्या बेला। मै चाहती हूँ कि यही बात तुम्हारे मुँह से बार-बार सुनूँ। तुम्हारे इस मधुर-परिहास के भीतर किसी भी · क्या · कहूँ किशोर, मेरी स्थिति की किसी भी, स्त्री के लिए कितना लुभावना चित्र छिपा हुआ है, यह मै समझ रहे हूँ।"

किशोर दीर्घ निश्वास लेकर बोला—"बेला, तुम जीवन के प्रति मेरे हृदय मे मोह मत उत्पन्न करो। मै अपनी साँसो की को गिन रहा हूँ—मोह मेरे लिए अभिशाप होगा।"

बेला ने विनयभरे स्वर में कहा—"मेरा यह अन्तिम सुख भी तुम मत छीनो। एक बार कह दो कि जान-बूझकर ही मैंने कहा था—"बेला, सो गई क्या?"

किशोर चुप लगा गया। वह विकल होकर वहीं, जहाँ खड़ा था, हताश-सा बैठ गया। कुछ क्षण चिन्तामग्न रहकर वह बोला—"बेला, तुमने बड़ा बुरा किया। मैं अपने प्रति निष्ठुर और उदासीन हो गया था। बातो ही बातों में तुमने मेरी उस सचित निष्ठुरता को भाप बनाकर समाप कर दिया जिसके भरोसे ही मैं परसों सदा के लिए विदा हो जाऊँगा।"

बेला दोनों हाथों से अपने धड़कते हुए हृदय को दबाकर बोली—"हाय, यह निष्ठुर सत्य बार-बार मेरे हृदय पर प्रहार कर रहा है—मै जानती हूँ कि क्या होने जा रहा है। खैर, अब मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूँ—यह मेरा पागलपन नहीं है···।"

किशोर ने आग्रहपूर्वक पूछा—"बेला, इस समय क्या मै इस योग्य हूँ, जा किसी का हित या अनहित कर सकूँ—इच्छा और आशा-हीन अवस्था मौत से भी बुरी होती है। फिर भी बोलो—मै तुम्हारा क्या हित कर सकता हूँ, फाँसी की रस्सी मे झूलने से पहले?"

बेला ने अपने सूखे होठों को चाटकर कहा—"कहा नहीं जाता, पर कहूँगी, क्योंकि सकोचशीलता के चलते ही यह दिन देखना पड़ा—अब सकोच करूँगी तो मेरी क्या गति होगी, यह भगवान ही जाने। मै चाहती हूँ किशोर······।"

"क्या चाहती हो बेला?"—किशोर खड़ा होकर साग्रह बोला—"मै प्रार्थना करती हूँ, साफ-साफ बोलो, समय नही है। जीवन नैया अब काल-चट्टान से टकराना ही चाहती है। जो कुछ कहना चाहो कह लो। जो कुछ सुनना चाहो, दिल थामकर सुन लो।"

बेला ने काँपते हुए स्वर मे कहा—"मैं··कह··रही हूँ। कहती··हूँ। मै··चाहती हूँ··तुम मेरा उद्धार··कर दो। चरणों मे··स्थान··दो।"

बेला ने किशोर के पैर पकड़ने के लिए अपने काँपते हुए हाथ बढ़ाये, पर सघन सीखचों ने बीच मे ही रोक दिया।

किशोर पागल की तरह बोला—"हाय, मैं क्या उत्तर दूँ इस पगली को !"

बेला हाथ जोड़कर रोती हुई बोली—"हाँ, बोलो, मेरे देवता। केवल तुम्हारी स्वीकृति ही काफी है। इस पवित्र अनुष्ठान के साक्षी सर्वव्यापी प्रभु हैं।"

किशोर ने कहा—"पगली, तुम अपने जीवन के साथ निष्ठुर परिहास कर रही हो। यह याद रहे, मैं परसों फाँसी पर चढ़ा दिया जाऊँगा।"

बेला बोली—"देवता, तुम चिर अमर हो। जिस पथरीले पथ पर तुम इतने दिनो तक एकाकी चलते रहे, उस पथ पर तुम्हारे चरण-चिन्ह भी वर्तमान हैं। उन्हें हवा मिटा नहीं सकती, धूल छिपा नहीं सकती। मै तुम्हारी कहलाकर उन चरण-चिन्हों को अपने आँचल से छिपाये रहूँगी और नासमझ तथा भूले हुए पथिकों को रोककर कहूँगी कि—इस पथ पर चलता हुआ जो हुतात्मा आगे बढा है। उसके इन पवित्र चरण-चिन्हों को आदर्श मानकर ही तुम सत्य को प्राप्त कर सकते हो—मैं अपना समस्त जीवन इसी सत्य धरोहर को हृदय से लगाकर सुखपूर्वक व्यतीत कर दूँगी। मुझे यह भीख दो मेरे आराध्यदेव ! मुझ अभागी को इस अमर अभिशाप का वरदान दो।

हठात् किशोर सीधा तनकर खड़ा हो गया और भावावेश में आकर किसी देवदूत की तरह बोला—"बेला, तथास्तु ! तुम्हारा यह आत्म-विसर्जन सफल हो। इस बुझे हुए प्रदीप में झुलसकर तुम मरीं—धन्य तुम्हारी साधना। बेला ने भूमि में सिर लगाकर प्रणाम किया और सींखचों के भीतर उङ्गलियाँ डालकर किशोर का चरण-स्पर्श कर लिया।

जिस समय बेला किशोर से अमर सोहाग का वरदान लेकर लौट रही थी उसी समय एक व्यक्ति जेलर के सामने हाँफता हुआ उपस्थित हुआ। उसके शरीर पर मैले चीथड़े झूल रहे थे। दाढी और मूछें बेहद बढ़ी हुई थीं, सिर के बाल मैले और उलझे हुए थे। उस व्यक्ति की छाती बेहद दबी हुई थी और फटे कुर्ते के भीतर से मोटी मोटी हड्डियाँ दयनीय रूप में झाँक रही थीं। उसके दोनो पैर बेतरह सूजे हुए थे, मानों बहुत दूर से पैदल ही चलकर

आया हो या जीवन भर बिना एक क्षण रुके चलता ही रहा हो। घुटने तक धूल और मैल की मोटी पर्तें जम गई थीं।

जेलर ने घृणा से उसके ही फर्श पर थूकते हुए पूछा--"क्या काम है?"

वृद्ध हाथ की लकड़ी पर भार देकर अपनी उखड़ती हुई साँसों को संभाल रहा था। उसने कातर और आँसुओं से भरी हुई धुँधली आँखे मानो बड़े प्रयत्न से ऊपर उठाकर जेलर की ओर देखा और शुद्ध अंग्रेजी मे कहा—"मैं किशोर सिंह ···के विषय मे ·· जानना ·· चाहता हूँ····· उसे परसों ·····किस समय ·····फाँसी··· होगी?"

बङ्गाली जेलर अंग्रेजों की तरह हिन्दी मे बोला—"तुम्हे इन बातों से मतलब?"

वृद्ध ने कहा—"जी, कुछ भी नहीं··· अब तो कोई मतलब नही रहा।"

जेलर फिर घृणापूर्ण स्वर मे बोला—"तुम उसके कोई हो?"

वृद्ध मानों भीतर ही भीतर छटपटा उठा। वह अपने विकल हृदय को दोनों हाथों से कसकर पकड़ने का प्रयत्न करता हुआ बोला—"जी, कोई··· नहीं। अब ··· तो कोई नही ···रहा। सच·· मुच मैं उसका····· कौन हूँ?"

इतना बोलकर वृद्ध अचानक मुड़ा और बड़बड़ाता हुआ फाटक के पार हो गया।

जेलर फिर से जमीन पर थूक कर बोला—"गन्दे हिन्दुस्तानी—!!!